बिहार सरकार

एस.सी.ई.आर.टी., बिहार
द्वारा विकसित

F4

दो वर्षीय सेवापूर्व डिप्लोमा इन एलिमेन्ट्री एजुकेशन

विद्यालय संस्कृति, परिवर्तन और शिक्षक विकास

भाग–1 (प्राथमिक स्तर)

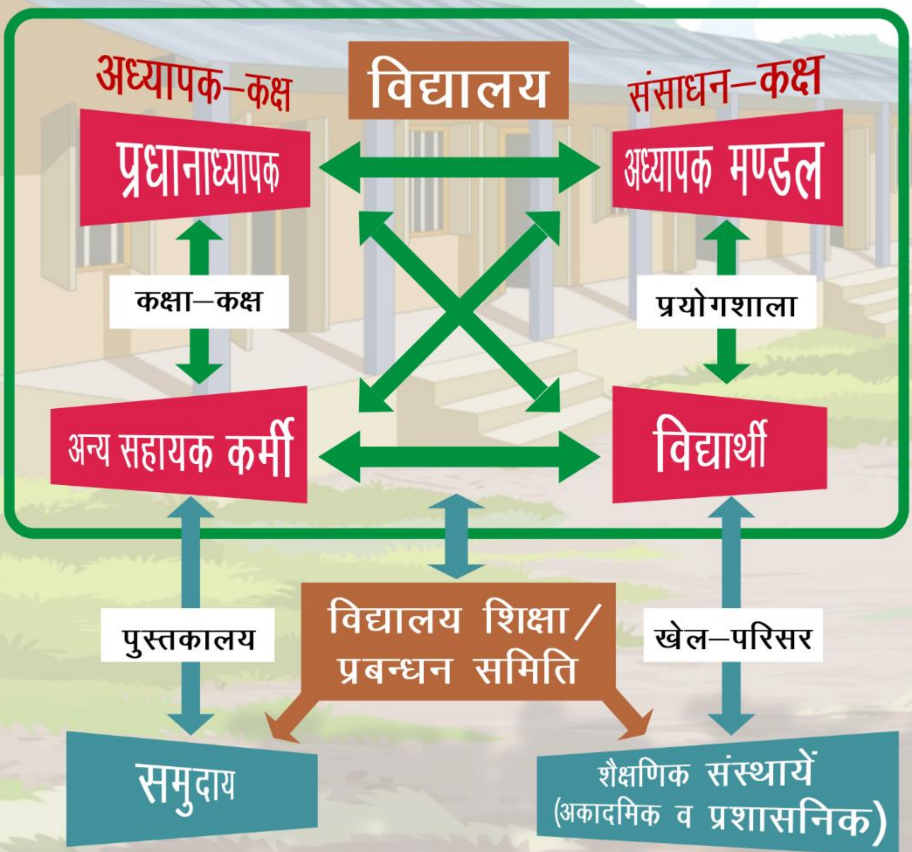

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् (एस.सी.ई.आर.टी.),
महेन्द्रू, पटना, बिहार

बिहार सरकार

एस.सी.ई.आर.टी., बिहार द्वारा विकसित

दो वर्षीय सेवापूर्व
डिप्लोमा इन एलिमेण्ट्री एजुकेशन

विद्यालय संस्कृति, परिवर्तन और शिक्षक विकास - 1

F-4

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् (एस.सी.ई.आर.टी.), महेन्द्रू, पटना, बिहार – 800006

तकनीकी सहायता: Implementation Support Agency, SCERT Bihar

प्रकाशक

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्
(एस.सी.ई.आर.टी.), महेन्द्रू, पटना, बिहार

© एस.सी.ई.आर.टी., बिहार

विश्व बैंक सम्पोषित परियोजना के अन्तर्गत

डी.एल.एड. (फेस–टू–फेस) के साधनसेवियों एवं प्रशिक्षुओं हेतु

आमुख

बच्चों के संपूर्ण विकास में विद्यालय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विद्यालय समाज का महत्वपूर्ण अंग है। बच्चों का सीखना घर से प्रारंभ होता है और समाज में भी होता है। यह शिक्षा अनौपचारिक होता है। विद्यालय सुनियोजित ढ़ंग से बच्चों को सीखने में व्यस्त रखता है अर्थात, बच्चों की औपचारिक शिक्षा विद्यालय तय करती है। अतः विद्यालय के विषय में व्यापक समझ बनाने के लिए इस अध्ययन सामग्री में विद्यालय से संबंधित विभिन्न महत्त्वपूर्ण कारकों व प्रक्रियाओं की चर्चा अलग–अलग इकाईयों के अंतर्गत की गयी हैं। इन इकाईयों के विषय में एक संक्षिप्त परिचय यहाँ अपेक्षित है ताकि इन्हें समझने का दृष्टिकोण पाठकों को मिल सके।

विद्यालय संस्कृति और प्रबंधन इकाई 1 में विद्यालय संगठन की अवधारणा, संरचना, इसके विविध संसाधनों एवं कार्य–योजना इत्यादि की चर्चा की गयी है। इस इकाई में विद्यालय की संरचनात्मक और क्रियात्मक पक्षों के बारे में बताया गया है। अतः यह आवश्यक है कि प्रत्येक शिक्षक एवं प्रशिक्षु को विद्यालय का वातावरण, संगठन तथा विद्यालय प्रबंधन के विभिन्न आयामों की समझ हो। साथ–ही विद्यालय को सुचारू रूप से तथा व्यवस्थित ढ़ंग से संचालित करने के लिए विद्यालयी अभिलेखों के बारे में विस्तृत रूप से चर्चा की गई है।

इकाई 2 में विद्यालय में समय के साथ होने वाले परिवर्तन के बारे में बताया गया है। स्वाभाविक है कि राष्ट्र और राज्य शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने हेतु समय के साथ लक्ष्य और उद्देश्य का निर्धारण करते हुए नीति–निर्धारण कर कार्यक्रम और योजना बनाती हैं जिसका क्रियान्वयन विद्यालय में ही होता है। इस तरह से विद्यालय को समय के साथ शैक्षणिक कार्य में तथा इससे संबंधित अन्य कार्य में परिवर्तन करना पड़ता है। अतः शिक्षक एवं प्रशिक्षु को क्रियान्वित करने संबंधी प्रत्येक मामले की जानकारी और समझ को अद्यतन करना उनके लिए आवश्यक है।

इकाई 3 के अंतर्गत कक्षा–कक्ष प्रक्रियाओं की समझ व प्रबंधन एवं आकलन व मूल्यांकन की समझ में यह कहा गया है कि सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में आकलन एवं मूल्यांकन आंतरिक हिस्सा है। प्रभावपूर्ण कक्षायी प्रक्रिया में बाल–केन्द्रित व लोकतांत्रिक कक्षा की संकल्पना की गयी है। इसके साथ–ही आकलन एवं मूल्यांकन की व्यापक समझ ज़रूरी है क्योंकि यह शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों को बेहतर प्रदर्शन के लिए प्रोत्साहित एवं तैयार करने के लिये योजना बनाने एवं उसे क्रियांवित करने का दृढ़ आधार प्रदान करता है।

इकाई 4 के अंतर्गत शिक्षक वृत्तिक विकास के बारे में इस बात को समझने का प्रयास किया गया है कि वर्तमान शिक्षा–प्रणाली जटिल और व्यापक हो गया है। प्राचीन काल में शिक्षा ग्रहण की गुरू–शिष्य परंपरा थी। शिष्यों की संख्या कम होती थी तथा शिक्षा प्रदान करने में गुरू की व्यक्तिगत मौखिक पाठ्यचर्या होती थी। किन्तु धीरे–धीरे शिक्षा व्यवस्था में व्यापकता और विद्यार्थियों की संख्या बढ़ जाने से कक्षायी शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए शिक्षकों में कौशल सीखने की आवश्यकता है तथा नये–नये कौशल से उन्हें अद्यतन होने की आवश्यकता है। इस इकाई में वस्तुतः शिक्षक वृत्तिक विकास के संदर्भ में बहुआयामी चर्चा की गई है।

इकाई 5 में शैक्षणिक संस्थाएं, प्रशिक्षण केन्द्र व सरकारी योजनाओं की समीक्षा की समझ की चर्चा की गई है। देश भर में कई ऐसी केन्द्रीय संस्थायें हैं जो विद्यालयी शिक्षा को प्रभावित करने वाली नीतियाँ एवं मार्गदशक दस्तावेज तैयार करती हैं। इनके अतिरिक्त राज्यों में भी शिक्षा संबंधी नीतियों के निर्माण एवं क्रियान्वयन हेतु कई संस्थायें कार्यरत हैं। अतः विद्यालय की संपूर्णता में समझ के लिए इन संस्थाओं तथा योजनाओं के विषय में जानकारी आवश्यक है।

उपरोक्त सभी इकाईयों पर व्यापक समझ बनाने के लिए इस पाठ्यपुस्तक में उपर्युक्त विषय–वस्तुओं का समावेश करने का प्रयास किया गया है। आशा है कि आप इस पाठ्य–सामग्री के माध्यम से शिक्षा की समकालीन आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील हो सकेंगे। पाठ्यपुस्तक को और सवंर्धित करने के लिए आपके सुझाव सदैव आमंत्रित हैं।

निदेशक

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, बिहार, पटना

पाठ्य पुस्तक विकास समूह
पत्र–F-4
(विद्यालय संस्कृति, परिवर्तन और शिक्षक विकास)

दिशाबोध	श्री दीपक कुमार सिंह, भा.प्र.से., अपर मुख्य सचिव, शिक्षा विभाग, बिहार, पटना श्री सज्जन राजसेकर, भा.प्र.से., निदेशक, राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, महेन्द्रू, पटना, बिहार डॉ० एस.पी.सिन्हा, सलाहकार, शिक्षा विभाग, बिहार, पटना
समन्वयक	डॉ० राधे रमण प्रसाद, विभाग प्रभारी, एस.सी.ई.आर.टी., पटना
लेखक समूह	डा० रत्नेश पटेल, प्रभारी प्रधानाध्यापक, रंगराज कृष्णा उच्च माध्यमिक विद्यालय हाजीपुर, वैशाली
	श्रीमती रीना कुमारी, डायट हाजीपुर, वैशाली
समीक्षक	मो० मोबस्सर जावेद, व्यख्याता, राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद बिहार पटना
	श्री मुन्ना गुप्ता, प्रभारी प्राचार्य, पी०टी०ई०सी शाहपुर, औरंगाबाद
	श्रीमती पूनम राय, व्याख्याता, एस.सी.ई.आर.टी., पटना
	श्री पप्पु हरिजन, व्याख्याता, पी०टी०ई०सी हवेली खड़गपुर, मुंगेर

पाठ–सूची

इकाई	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
1	विद्यालय संस्कृति और प्रबंधन	8-64
2	विद्यालय में परिवर्तन	65- 84
3	विद्यालयी शिक्षण की व्यवस्थाएँ	85- 132
4	शिक्षक वृत्तिक विकास के आयाम	133-148
5	महत्वपूर्ण शैक्षणिक संस्थाएं, प्रशिक्षण केन्द्र व सरकारी योजनाओं की समीक्षात्मक समझ	149-175
6	संदर्भ सूची	176

इकाई 1

विद्यालय संस्कृति और प्रबंधन

- परिचय
- उद्देश्य
- विद्यालय संगठन
    - विद्यालय संगठन की अवधारणा
    - विद्यालय संगठन की संरचना
    - विद्यालय संगठन के विविध रूप व प्रकार
- विद्यालय विकास योजना के विभिन्न आयाम
    - भौतिक संसाधन
    - मानव संसाधन
    - वित्त संसाधन
    - निर्धारित मानकों की समझ
    - घटकों की आलोचनात्मक समझ
- विद्यालय में समुदाय की सहभागिता
    - विद्यालय शिक्षा समिति
    - अभिभावक शिक्षक संघ
    - शिक्षा और पंचायती राज संस्थाओं की भागीदारी
- एक विद्यालय का प्रसंग
- विद्यालय प्रबंधन की व्यवस्था और अंतर्निहित मान्यताएँ
  - कार्य संस्कृति
  - अनुशासन

- समय प्रबंधन
- आपदा प्रबंधन

विद्यालय अभिलेखों की समझ

- परिचय
- सीखने के उद्देश्य
- विद्यालयी अभिलेख
  - विभिन्न अभिलेख की आवश्यकता
  - विद्यालयी अभिलेखों और सामग्रियों का संकलन एवं रख रखाव
- विभिन्न अभिलेखों का अध्ययन
  - विद्यालय वार्षिक विवरणी
  - नामांकन पंजी
  - पाठ्यपुस्तक पंजी
  - मध्याह्न भोजन से संबंधित पंजियाँ
  - स्थानांतरण प्रमाण पत्र
  - उपस्थिति से संबंधित पंजियाँ
  - सूचना पंजी
  - आकस्मिक अवकाश पंजी
  - रोकड़ पंजी
  - मदवार आय व्यय विवरणी पंजी
  - परीक्षाफल पंजी
  - शिक्षक प्रगति–पत्रक
  - अन्य पंजियाँ
- शिक्षक डायरी व विद्यार्थी प्रोफाइल
  - शिक्षक डायरी
  - विद्यालयी रिकार्डों की सीमाएँ
- विद्यालय में दिन की शुरुआत व चेतना सत्र की समझ
  - चेतना सत्र की समझ
  - गुरू वंदना
- विद्यालय में दिन की शुरुआत गाँधी कथावाचन के साथ
- शैक्षणिक नेतृत्व की प्रेरक कहानियाँ
- समेकन
- निष्कर्ष

- मूल्यांकन के लिए प्रश्न
- उपयोगी पाठ्यसामग्रियों की सूची

विद्यालय संस्कृति और प्रबंधन

परिचय

आपने आस–पास के कई विद्यालयों को देखा होगा। यह समाज का औपचारिक अधिगम केन्द्र है जहाँ बच्चों को एक निर्धारित पाठ्यचर्या के अंतर्गत शैक्षणिक माहौल में सीखने–सिखाने का निरन्तर कार्य चलता रहता है। अपने औपचारिक स्वरूप एवं विविध शैक्षणिक व सामाजिक क्रियाकलापों के ताने–बाने में विद्यालय एक जटिल संरचना है, जिसमें बच्चों से लेकर समाज के कई अधिकर्ता शामिल होते हैं। विद्यालय के बाहर भी समाज के कई वृत्त हैं, जैसे, परिवार, समुदाय, वर्ग–जातियों में बँटा समाज, राष्ट्र, अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थाएं इत्यादि। ये सब किसी–न–किसी प्रकार से विद्यालयी प्रक्रिया में हस्तक्षेप करते हैं। इन सभी के बीच विकसित होने वाले आपसी संबंधों एवं प्रक्रियाओं से अवगत होना एक शिक्षक के लिए महत्वपूर्ण है ताकि विद्यालय संगठन पर पड़नेवाले इनके प्रभावों के प्रति वह सजग बन सके। इसलिए यह अपेक्षा की जाती है कि प्रशिक्षु इस इकाई को व्यापक संदर्भों में खुले तथा आलोचनात्मक दृष्टिकोण से समझने की कोशिश करें।

साथ–ही, शिक्षक प्रशिक्षण में होनेवाले नवाचारी प्रयासों एवं नवीन शैक्षणिक परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में विद्यालय संगठन का परिप्रेक्ष्य पहले की तुलना में काफी व्यापक हो गया है। वर्तमान परिदृश्य में यह अध्ययन केवल मात्र विद्यालय के दिन–प्रतिदिन के कार्यों, विद्यालय निर्माण की प्रक्रिया, विद्यालय के भौतिक ढाँचे तथा शिक्षक–शिक्षिकाओं एवं बच्चों के आपसी संबंधों तक सीमित नहीं रहा बल्कि, अब इसे लोगों से जुड़े व्यापक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है। अन्य शब्दों में, इसका अर्थ है कि विद्यालय से जुड़े ढ़ाँचो एवं परिक्रियाओं को पृथकता में नहीं समझा जा सकता, बल्कि इसे विद्यालय को प्रभावित करने वाले सभी कारकों के संदर्भ मे विश्लेषित किया जाना चाहिए।

उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से आप विद्यालय संगठन की अवधारणा, संरचना, इसके विविध संसाधनों, कार्य–योजना इत्यादि का अध्ययन करेंगे। साथ–ही, विद्यालय को समझने के लिए इसके विभिन्न सामाजिक संस्थाओं जैसे समुदाय, सरकार, पंचायत इत्यादि के मध्य के संबंधों को भी जानेंगे। इस इकाई में विद्यालय से जुड़े उन कारकों की भी चर्चा की जाएगी जो परोक्ष रूप से विद्यालय में चलनेवाली सीखने–सिखाने की प्रक्रिया को निरन्तर प्रभावित

करते रहते हैं। इकाई के अंतर्गत विस्तृत चर्चा, आलोचनात्मक चिंतन एवं स्वानुभव की मदद से आप इन प्रभावों को समझ व परख पाएंगे।

विद्यालय संगठन

विद्यालय एक संगठन के रूप में किस तरह से है, इसे समझने से पहले हमें 'संगठन' की सामान्य अवधारणा को जानना होगा, तभी हम विद्यालय की विभिन्न विशेषताओं का विश्लेषण करते हुए उसके संगठनात्मक स्वरूप को समझ पाएंगे। संगठन की सामान्य अवधारणा मुख्य रूप से प्रबंधन के विषय से ली गई है। इसका उद्देश्य विभिन्न प्रतिष्ठानों व अन्य बड़े कार्य स्थलों पर कार्य को व्यवस्थित ढंग से करना तथा किसी भी संस्था को सुचारू रूप से चलाना है। आधुनिक युग की नई आर्थिक–राजनीतिक–सामाजिक परिदृश्य में मानवीय जीवन के सभी क्षेत्रों में कुशल प्रबंधन की आवश्यकता महसूस की गई, जिसके कारण संगठन की अवधारणा का विकास हुआ। आगे दी गयी गतिविधि से शुरूआत करते हैं और सबसे पहले 'संगठन' की मूलभूत विशेषताओं को समझते हैं।

अपने आस–पास के कुछ शैक्षणिक संगठनों व संस्थाओं की सूची बनाये तथा उनके विषय में विस्तृत जानकारी इकट्ठा करें। उदाहरण के लिए, नीचे दी गई तालिका में कुछ सामान्य संगठनों व संस्थाओं के विषय में उल्लेख है। अपने स्थानीय संदर्भ के अनुसार आप अन्य संगठनों व संस्थाओं को भी इस तालिका में शामिल करें तथा जो कॉलम खाली हैं, उनके विषय में विस्तृत जानकारी इकट्ठा करें और उन कॉलमों को भरें। अपेक्षित जानकारी को प्राप्त करने के लिए आप कौन–कौन से तरीके अपनायेंगे, इसके लिए एक कार्ययोजना बनाये और फिर उसके अनुसार काम करें।

क्र. सं.	संगठन/संस्था	उद्देश्य	संरचना		कार्य
			भौतिक संसाधन	मानव संसाधन	
1.	जिला स्कूल				
2.	बुनियादी विद्यालय				
3.	केन्द्रीय विद्यालय				
4.	नवोदय विद्यालय				
5.	कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय				
6.	जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान				
7.	प्रखंड संसाधन केन्द्र				
8.					
9.					

10.					

अतः प्रत्येक संगठन के लिए अपने उद्देश्यों का होना एक महत्वपूर्ण विशेषता है। इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए वह निरन्तर कार्य करता है। उद्देश्यों के बिना कोई भी संगठन निरर्थक है। दूसरा, संगठन की अपनी एक निश्चित संरचना होती है। इस संरचना के अंतर्गत विभिन्न अंग होते हैं जो अपने उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिए व्यवस्थानुरूप अपने अपने कार्यों को करते हैं। अतः, किसी भी संगठन की अपनी एक विशेष संरचना होती है। तीसरा, प्रत्येक संगठन का एक निश्चित सदस्य समूह होता है जो इसके उद्देश्यों को लेकर सदा कार्यरत रहते हैं। ये सदस्य ही किसी संगठन के विकास के लिए निरन्तर नयी योजनाओं व व्यवस्था परिवर्तनों में लगे रहते हैं।

1. विद्यालय संगठन की अवधारणा

विद्यालय एक उद्देश्यपूर्ण संस्था है। इसके उद्देश्यों की उत्पत्ति शिक्षा और समाज के मध्य बने सम्बंध से होती है जहाँ समाज अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप व्यक्ति का निर्माण करना चाहता है। वहीं शिक्षा से यह भी अपेक्षा है कि वह ऐसे व्यक्ति का निर्माण करे जो आदर्श समाज को गढ़े। अतः शिक्षा और समाज के अन्तर्सम्बन्ध से उत्पन्न विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विद्यालय के रूप में औपचारिक संस्था को गठित किया गया।

आज लगभग हर समाज के लिए विद्यालय न सिर्फ औपचारिक शिक्षा देने का केन्द्र है बल्कि उस समाज के विकास को प्रशस्त करने का भी एक प्रमुख माध्यम है। ज्ञान अर्जन के उद्देश्य प्राप्ति व मान्यताओं को लेकर भी इस संगठन में विकासात्मक रूप से कई परिवर्तन हुए हैं, उदाहरणार्थ धार्मिक शिक्षा से लेकर धर्मनिरपेक्ष शिक्षा, वर्ग विशेष शिक्षा से सर्वजन शिक्षा, देशज शिक्षा से औपनिवेशिक शिक्षा इत्यादि। यदि आज के विद्यालयों को देखें तो वे भी किसी मूलभूत उद्देश्यों से प्रेरित होकर ही अपने गतिविधियों एवं पाठ्यचर्या को संचालित करते हैं। आवश्यक नहीं है कि वे उद्देश्य प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगत हो, लेकिन उस विद्यालय के प्रक्रियाओं के सूक्ष्म अवलोकन से उन उद्देश्यों को समझा जा सकता है।

विद्यालय संगठन की अपनी एक विशेष संरचना है, जिसके अंतर्गत विभिन्न अंग हैं। विद्यालय संगठन की संरचना के विभिन्न अवयवों या अंगों में प्रधानाध्यापक, शिक्षकगण, विद्यार्थीगण, विद्यालय प्रबंध समिति, समुदाय इत्यादि प्रमुख हैं। इन विभिन्न अंगों की एक निश्चित भूमिका होती है जो अपने कार्यों द्वारा पूरे संगठन के सुचारू संचालन में योगदान देते हैं। यहाँ, यह भी समझना अति आवश्यक है कि संगठन के सभी अंगों का समान महत्त्व होता है, क्योंकि उन सारे अंगों के द्वारा किये जानेवाले कार्य एक दूसरे के पूरक हैं। अतः किसी भी अंग में आयी समस्या से पूरी संरचना प्रभावित होती है। इन अवयवों की भूमिका के विषय में व्यापक चर्चा आगे की गयी है।

विद्यालय संगठन की अपनी कार्य प्रणाली होती है जो विभिन्न नियमों के अनुसार चलती है। जैसे, विद्यालयी समूह का एक पूरा भाग शिक्षण कार्य से सम्बंधित है, अर्थात शिक्षकगण, जिनकी अपेक्षित योग्यतायें उन्हें इस समूह का सदस्य बनाती हैं। उसी प्रकार विद्यार्थीगण भी इस समूह के अभिन्न सदस्य है जिनकी सदस्यता भी कई योग्यताओं के आधार पर निर्धारित होती है जैसे उम्र के आधार पर विद्यार्थियों को अलग अलग वर्गों में रखना। गौर से देखा जाय तो हम पाएंगे कि इन योग्यताओं के सामाजिक–आर्थिक–सांस्कृतिक व धार्मिक पक्ष भी हो सकते हैं, जो विद्यालय में सदस्यता को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार विद्यालय की समूह व्यवस्था एक अति

जटिल व्यवस्था है, जिसमें विभिन्न समूहों की प्रकृति विद्यालयी प्रक्रिया को निरन्तर प्रभावित करते रहते हैं। विद्यालय संगठन की कार्य प्रणाली में प्रबन्धन भी निहित है, क्योंकि बिना प्रबन्धन के कोई भी संगठन विकसित नहीं हो सकता।

साथ–ही हमें यह भी समझना होगा कि विद्यालय एक परिवर्तनशील संस्था है, जो बदलते शैक्षणिक लक्ष्यों के अनुरूप अपने संगठन की प्रक्रियाओं में भी परिवर्तन लाती रहती है। स्वयं को स्थापित रखने के लिए इसमें ज्ञान का अद्यतन किये जाने का विशेष महत्त्व है, क्योंकि, इसके बिना एक विद्यालय की समकालीन भूमिका अप्रासंगिक हो जाती है। अतः नवीन पाठ्यचर्याओं, नवाचारी शिक्षण–अधिगम उपागम व तकनीकों को अपनाने की अपेक्षा एक विद्यालय से सदैव लगी रहती है। समाज के द्वारा भी विद्यालय पर परिवर्तन व योजनाओं के निर्माण सम्बंधी कई दबाव रहते हैं। साथ–ही, कई संस्थाओं का हस्तक्षेप भी विद्यालय पर प्रभावी रहता है। इन सब की गहन पड़ताल से एक शिक्षक स्वयं को विद्यालय संगठन के परिवर्तनशील व्यवस्था में स्थापित कर सकता है।

2. विद्यालय संगठन की संरचना

विद्यालय संगठन को समझने के लिए इसकी व्यापक संरचना की पड़ताल आवश्यक है, जिसका विस्तार कई स्तरों पर है। भारत के संविधान के अनुसार शिक्षा समवर्ती सूची का विषय है जिसका अर्थ है कि शिक्षा के विषय में भारत के केन्द्रीय सरकार व राज्य सरकार दोनों कानून बना सकते हैं। इसके कारण भी विद्यालय के संगठनात्मक संरचना पर कई प्रभाव पड़ते हैं। राज्य स्तर पर प्रबंधात्मक संरचना को देखें तो हम पाएंगे कि कई विभागों में से एक शिक्षा विभाग है। इसके साथ–साथ, जिला व प्रखण्ड स्तर पर भी शिक्षा प्रबंधन से जुड़ी कई संस्थाएं हैं, जो अलग–अलग तरीके से विद्यालय को सहयोग प्रदान करती हैं। ये सभी विद्यालय संगठन के अंग हैं।

विद्यालय संगठन की संरचना

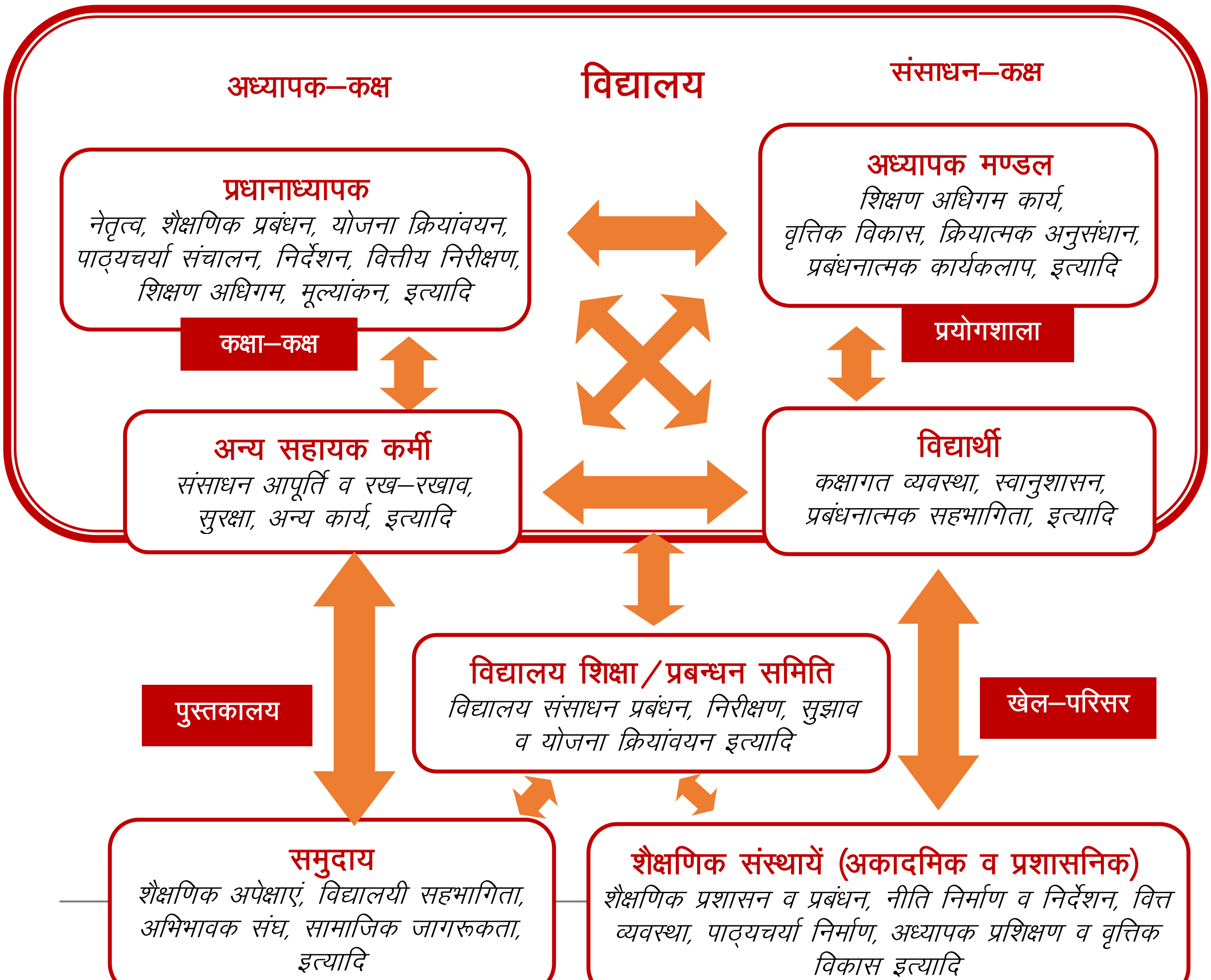

विद्यालय एक सामाजिक संस्था है, जिसे समाज ने शिक्षा प्रदान करने का दायित्व सौंपा है। जिन समस्याओं का समाज को सामना करना पड़ता है, वे समस्याएं कुछ हद तक विद्यालयों में भी दिखाई देती है जिनसे जुझना विद्यालय का मुख्य कार्य है। विद्यालय से जुड़ी बहुत–सी समस्याएं ऐसी हैं जो विद्यालयी ढांचे की संरचना से संबंधित है जिनके समाधान के लिए विद्यालय संगठन के संरचना में ही बदलाव की आवश्यकता है। इन समस्याओं को विश्लेषण करना शिक्षकों की समझ तथा अपने कार्यों को सही ढंग से करने के लिए जरूरी है। उदाहरण के तौर पर, विद्यालयों का खण्डित और पिरामिड ढांचा। भारत के सभी राज्यों में सभी लोगों तक शिक्षा पहुंचाना एक चुनौतीपूर्ण कार्य था। शिक्षा विभागों के पास संसाधन बहुत सीमित थे और उनसे अपेक्षा थी कि भारत की विविधतापूर्ण आबादी को पूर्णतः शिक्षा के दायरे में लाए। इस कारण शिक्षा विभागों ने शुरू में हर एक गाँव मोहल्ले में न्यूनतम प्राथमिक शिक्षा वाले विद्यालयों को जोड़ने पर बल दिया। इसके बाद माध्यमिक विद्यालय तथा इसके बाद उच्च माध्यमिक विद्यालय खोले गए। ऐसा ढाँचा इस अपेक्षा के साथ बनाया गया कि माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ाई के लिए बच्चे अधिक दूरी तक जा सकते हैं। विद्यालयों के ऐसे ढांचे बनाने का परिणाम यह निकला कि राज्य के विद्यालय अलग–अलग संस्थाओं के रूप में खण्डित रह गए।

3. विद्यालय संगठन के विविध रूप व प्रकार

अब तक आप विद्यालय संगठन की अवधारणा और इसके अवयवों के विषय में जान चुके हैं। आप यह जानते हैं कि हमारे देश में विभिन्न प्रकार के विद्यालय हैं जो कई दृष्टियों से एक दूसरे से अलग हैं। आप अपने क्षेत्र में भी कई प्रकार के विद्यालयों को देखते होंगे। आइये अब इस पर विचार करते हैं कि क्या इन सभी विद्यालयों में विद्यालय संगठन का स्वरूप एक ही जैसा है या विद्यालय विशेष की प्रकृति के अनुरूप उनमें काफी भिन्नता है। नीचे दिए गए गतिविधि के माध्यम से इसको समझते हैं।

अपने जिले में स्थापित विभिन्न प्रकार के विद्यालयों की एक सूची बनायें तथा उनमें से कम–से–कम तीन विद्यालयों के संगठनात्मक स्वरूप के विषय में विस्तृत जानकारी एकत्रित करें। आप उन विद्यालयों में जायें और विद्यालय में हो रहे विभिन्न क्रियाकलापों का अवलोकन करें और विद्यालय के शैक्षणिक प्रबंधन के बारे में जानकारी प्राप्त करें। जानकारी एकत्र करने के लिए आप उन विद्यालयों के प्रधानाध्यापक, शिक्षकों व अन्य कर्मियों से बातचीत करें तथा विद्यालय के विभिन्न दस्तावेजों को देखें। इसके उपरान्त आप उन विद्यालयों के संगठनात्मक स्वरूप का तुलनात्मक विश्लेषण अभ्यास विद्यालय के संदर्भ मे करें। इस गतिविधि को आगे दिए गए उदाहरण के अनुसार व्यवस्थित रूप में लिखें। कुछ विश्लेषण बिन्दु व उनके विषय में पहले से दिया गया हैं। आप अपने संदर्भ अनुसार अन्य विश्लेषण बिन्दुओं को जोड़ सकते हैं।

विद्यालय विकास योजना के विभिन्न आयाम

मानवीय जीवन शैली एक तरह से योजना प्रणाली है जिसमें कई स्तरों एवं अवधियों में योजनाओं का निर्माण होता रहता है। ठीक उसी प्रकार, विद्यालय के संदर्भ में भी विभिन्न प्रकार की दैनिक व वार्षिक योजनाओं का निर्माण सदैव चलता रहता है। विद्यालय की योजना बनाने के समय उसके लक्ष्य को विशेष रूप से ध्यान में रखना होता है, ताकि उसके अनुसार संसाधनों को जुटाकर कार्य में प्रगति की जा सके।

किसी भी कार्य को करने के लिए विभिन्न संसाधनों की आवश्यकता होती है। अपने दैनिक जीवन में आप तरह–तरह के संसाधनों का उपयोग करते हैं। उदाहरणस्वरूप, आप अपने घर परिवार को ही लीजिये। परिवार के जीवन निर्वाह के लिए घर में विभिन्न प्रकार के संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित की जाती है। ठीक इसी तरह विभिन्न संगठन अपनी आवश्यकताओं के अनुसार संसाधनों का विकास व उपयोग करते हैं। विद्यालय के संचालन के लिए भी विभिन्न संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है, जिनके बिना विद्यालय मे पठन–पाठन का कार्य सूचारू रूप से नही चल सकता। आप स्वयं उन संसाधनों में से एक हैं तथा कई अन्य संसाधन हैं, जिनका आप प्रयोग करते हैं। नीचे तालिका में दिए गए कोटियों के अंतर्गत उन संसाधनों को वर्गीकृत करें। उदाहरण के तौर पर कुछ संसाधनों को निम्न तालिका में दिया गया है। आप अपने विद्यालय के संदर्भ में अन्य संसाधनों को इसमें जोड़ें।

भौतिक संसाधन	मानव संसाधन	वित्तीय संसाधन
विद्यालय भवन	प्रधानाध्यापक	विद्यालय विकास राशि
कक्षाकक्ष	शिक्षकगण	रख रखाव एवं मरम्मत राशि
पुस्तकालय	विद्यार्थीगण	शिक्षण–अधिगम सामग्री राशि
पुस्तकें	रसोईया	मध्याह्न भोजन सम्बंधित राशि
फर्नीचर	अभिभावक	निमार्ण कार्य सम्बंधित राशि
अलमीरा	पदाधिकारीगण	पुस्तक क्रय राशि
खेल परिसर		

अब आपके पास विद्यालय से संबंधित विभिन्न संसाधनों की एक विस्तृत सूची है। उनको ध्यान में रखते हुए ज़रा आगे दिए गए प्रश्नों पर विचार करें।

- क्या विद्यालय के संसाधनों को दिए गए तीन कोटियों के अलावा भी अन्य कोटियों में बाँटा जा सकता है? उन कोटियों के नाम सुझायें।
- क्या इन सभी संसाधनों को एक ही स्रोत से पाया जा सकता है या ये विविध स्रोतों से प्राप्त होते हैं?
- क्या किसी एक संसाधन के द्वारा विद्यालय को सुचारू रूप से चलाया जा सकता है?
- क्या सभी संसाधन अलग–अलग कार्य करते हैं या उनके बीच ताल–मेल भी अपेक्षित है?

ऊपर के प्रश्नों पर आप विचार करने से पायेंगे कि विद्यालय में जाने अनजाने आप अनेक प्रकार के संसाधनों का प्रयोग करते हैं। आप अलग अलग विद्यालयों में इन संसाधनों में विविधता भी देख सकते हैं। साथ–ही, इन संसाधनों को उपयोगिता एवं वित्तीय स्त्रोत एवं संधारण की प्रक्रिया का अवलोकन कर सकते हैं। इन संसाधनों के स्रातों का भी विविध स्वरूप और संदर्भ है। उदाहरण के तौर पर, विद्यालय में राशि कहीं और से आती है तो पुस्तकें कहीं और से। पर यह स्पष्ट है कि स्वयं में ये संसाधन विद्यालय को निर्मित करने

में अकेले सक्षम नहीं हैं। उनको एकसाथ सार्थक रूप से उपयोग करने से ही विद्यालय का निर्माण तथा नियमित संचालन होता हैं। आगे आप विद्यालय विकास योजना के लिए जरूरी विभिन्न भौतिक, मानव व वित्तीय संसाधनों की भूमिका के विषय में समझेंगे।

1. भौतिक संसाधन

विद्यालयों में प्रभावी शिक्षण कार्य तभी संभव है जब कुछ अपेक्षित भौतिक संसाधन तथा कक्षा–कक्ष सुविधाएँ उपलब्ध हों। इन भौतिक संसाधनों में विद्यालय भवन, कक्षाकक्ष, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, खेल परिसर व विभिन्न उपस्कर महत्वपूर्ण हैं। विद्यालय विकास योजना के लिए इन सभी संसाधनों की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। इन संसाधनों में से ज्यादातर संसाधन अचल व स्थायी हैं, जिनकी उपयोगिता दीर्घकालिक होती है। आइये इन संसाधनों की आवश्यकता व उपयोगिता के विषय में जानते हैं।

विद्यालय स्थापित करने से पूर्व उसके लिए भवन की स्थिति तथा बनावट पर ध्यान देना नितान्त आवश्यक है। यदि विद्यालयों की स्थिति देखी जाऐ तो मालूम होगा कि इनमें से कई विद्यालय ऐसी जगह बने हुए हैं जहाँ दूषित वातावरण है। कुछ विद्यालयों की स्थिति मुख्य सड़कों के पास होने के कारण, ध्वनि एवं वायु–प्रदूषण की समस्या वहाँ हमेशा बनी रहती है। इन सब का प्रभाव विद्यार्थियों की शिक्षा पर पड़ता है।

साथ–ही वर्गकक्ष का भौतिक खाका भी बदला जाना चाहिए, जिससे बच्चे छोटे समूहों में बैठ पाएँ, या बड़े घेरे में बैठ कहानी सुन सकें, या अपना व्यक्तिगत लेखन या पठन का काम कर सकें, या रेडियो या टी.वी. पर प्रसारित कार्यक्रम के लिए एक समूह में एकत्र हो पाएँ। विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की ज़रूरतों के अनुसार भी बैठने की व्यवस्था को बदला या रूपान्तरित किया जाना चाहिए। परंतु अभी भी अधिकांश विद्यालय भारी–भरकम लोहे की बेंचों व बड़ी मेज़ों पर खर्च करते हैं जो केवल एक कतार में ही लगाई जा सकती हैं और जो शिक्षक और श्यामपठ–केंद्रित सीखने की प्रणाली को बढ़ावा देती हैं। इससे भी गम्भीर बात यह है कि इनमें बच्चों की किताबें व अन्य सामान रखने के लिए उपयुक्त जगह नहीं होती, न ही ये इतने चौड़े होते हैं, कि टेक लगा कर बच्चा आराम से बैठ पाए।

पाठ्यपुस्तकों के अलावा अन्य पाठ्योपयोगी पुस्तकों के अध्ययन के लिए विद्यालय का पुस्तकालय एक आनन्ददायी स्थान के रूप में होना चाहिए। पुस्तकालय की पाठ्य–सामग्री, सन्दर्भ पुस्तकें तथा बाल साहित्य इत्यादि की उपलब्धता हो और साथ–ही, विद्यार्थियों की उन तक पहुँच हो। अक्सर, हम विद्यालयों में पठन–पाठन के संदर्भ में पुस्तकालयो की भूमिका को नगण्य देखते हैं। पुस्तकालयों की इस स्थिति को शिक्षकों के माध्यम से ही बदला जा सकता है। अतः विद्यालय विकास योजना में पुस्तकालयों की स्थिति को लेकर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

प्रयोगशालाएँ भी विद्यालय का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसका महत्त्व इसलिए भी है कि विद्यार्थी यहाँ स्वयं प्रयोग करके सीखते हैं। विभिन्न विषयों में पढ़ाये जाने वाले सिद्धान्तों का विद्यार्थी प्रयोगशालाओं में व्यावहारिक पुष्टि करते हैं। इस तरह प्रयोगशालाएँ विद्यार्थियों को 'करके सीखने' तथा 'अनुभव द्वारा सीखने' के अवसर प्रदान करती हैं। विज्ञान के अलावा भाषा व समाजिक विज्ञान जैसे महत्वपूर्ण विषयों में भी शिक्षण के दृष्टिकोण से प्रयोगशालाओं का महत्त्व समझा जा रहा है। प्रयोगशालाओं में बुलेटिन बोर्ड, चार्ट, मानचित्र,

रेखाचित्र, फिल्म, स्ट्रिप्स, कैसेट, परीक्षण तथा विभिन्न यन्त्रों, को सुरक्षित व व्यवस्थित रखने की व्यवस्था करनी पड़ती है।

विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए खेलों का स्थान पाठ्य सहगामी क्रियाओं में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अतः विद्यालय में खेलों के प्रति भी एक संवेदनशील नजरिया होना चाहिए। यह नजरिया तभी बनेगा जब हम विद्यालय में खेलों को प्रोत्साहित करेंगे। प्रायः खेलों को विभिन्न विषयों की तुलना में काफी कम महत्व दिया जाता है। ऐसा होने से बच्चों में खेलों के प्रति रूचि भी घटती जाती है, जिसका उनके सर्वांगीण विकास पर गलत प्रभाव पड़ता है।

नीचे दिए गए तालिका के अनुसार अपने आस पास के तीन भिन्न प्रकार के विद्यालयों का अध्ययन करें जिसमें आप अपने अभ्यास विद्यालय को भी शामिल करें तथा अपेक्षित सूचनाओं का संग्रह करें। विद्यालयों में भिन्नता के आधार को भी स्पष्ट करें जैसे स्तर (प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक विद्यालय)। इसमें प्राईवेट और सरकारी दोनों प्रकार के विद्यालय को शामिल कर सकते हैं।

क्र.सं.	विद्यालय के प्रकार	विद्यालय का नाम	भौतिक संसाधन		
			आधारभूत संरचना	उपकरण एवं फर्नीचर सामग्री	गतिविधियों के लिए सामग्री
1					
2					
3					
4					

एकत्र किये गये सूचनाओं के आधार पर निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार करें।

- तीनों विद्यालय के संदर्भ मे कौन–कौन से भौतिक संसाधन लगभग एक–दूसरे के समान हैं? क्या सामान्य तौर पर ये भौतिक संसाधन सभी विद्यालयों में होंगी?
- प्राप्त की गयी सूचनाओं के आधार पर आप कौन से विद्यालय को सबसे अच्छा मानेंगे? साथ में कारण भी बतायें।
- अपने विद्यालय के संसाधनों की तुलना अन्य विद्यालयों के संदर्भ में करें और ऐसे संसाधनों की सूची बनायें जिनकी आवश्यकता आप अपने विद्यालय के लिए मानते हैं?

2. मानव संसाधन

मानव संसाधन के बिना विद्यालय की कल्पना नहीं की जा सकती। विद्यालय का निर्माण व विकास एक मानवीय प्रयास है जिसमें अन्य संसाधनों के समन्वय का जिम्मा भी मानव संसाधनों के ऊपर ही होता है। आपने पिछली गतिविधियों में विद्यालय में कार्य करनेवाले विभिन्न व्यक्तियों को सूचीबद्ध किया है, जिनमें प्रधानाध्यापक एवं शिक्षकगण प्रमुख हैं।

इनके अलावा भी कुछ अन्य कर्मी विद्यालय के प्रबंधात्मक कार्यों के अंग होते हैं। विद्यालय में काम करनेवाले व्यक्तियों के साथ–साथ कई अन्य संस्थाओं के व्यक्ति भी परोक्ष रूप से विद्यालय के संचालन में भूमिका निभाते हैं। उदाहरण के तौर पर, शिक्षकों को प्रशिक्षण देनेवाली संस्थाओं के प्रशिक्षक, शैक्षणिक नीतियां बनानेवाले लोग, पाठ्यपुस्तकों को बनानेवाले साधनसेवी इत्यादि भी विद्यालयी प्रक्रिया के ही अंग हैं। ये सभी विद्यालय विकास के लिए मानव संसाधन के रूप में है। यहाँ हम मुख्य रूप से विद्यालय के प्रधानाध्यापक एवं शिक्षकों की चर्चा मानव संसाधन के रूप में करेंगे। अन्य मानव संसाधनों के विषय में आप आगे की इकाईयों में जानेंगे। प्रधानाध्यापकों व शिक्षकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका को बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2008 में भी इंगित किया गया है।

प्रधानाध्यापक

विद्यालय का उत्थान व विकास प्रधानाध्यापक की क्षमता तथा योग्यता पर बहुत हद तक निर्भर करता है। विद्यालय की हर गतिविधि में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से इनकी भूमिका अवश्य होती है। प्रधानाध्यापक के कर्त्तव्यों को बहुआयामी कहा जा सकता है क्योंकि विद्यालय प्रबंधन से लेकर अध्यापन व अन्य कई कार्यों में उसकी सहभागिता सदैव अपेक्षित रहती है।

शिक्षक

विद्यालय में सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी भी पाठ्यचर्या को शिक्षकों के सक्रिय सहयोग से ही सफल बनाया जा सकता है। विद्यालय के विभिन्न संसाधनों का प्रभावी उपयोग करना भी उनका महत्वपूर्ण दायित्व है। विद्यालय में शिक्षा की गुणवता को बनाये रखने के लिए शिक्षकों से कुछ अपेक्षाएं होती हैं, जैसे कुशल नेतृत्व। इसका विद्यार्थियों पर साकारात्मक प्रभाव पड़ता है जिससे विद्यार्थियों में भी नेतृत्वगुण का विकास होता है। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों की समस्याओं को सहानुभूतिपूर्वक समझना व उचित सुझाव देना भी शिक्षकों का दायित्व है। साथ–ही, विद्यालय में शिक्षकों से यह आशा की जाती है कि वह सभी विद्यार्थियों को सीखने–सिखाने की प्रक्रिया का सक्रिय अंग माने तथा उनसे लोकतांत्रिक व्यवहार करें। एक शिक्षक के लिए सभी विद्यार्थियों का विकास महत्वपूर्ण होता है अतः उसे अपने विद्यार्थियों में जाति, वर्ग, भाषा इत्यादि के आधार पर भेद नही करना चाहिए।

3. वित्त संसाधन

विद्यालय के निर्माण से लेकर उसके दैनिक कार्यों के निर्वहन के लिए वित्त संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है। वित्त के अभाव में विद्यालय की योजनाओं को क्रियांवित नहीं किया जा सकता। भौतिक संसाधन व मानव संसाधन की उपलब्धता भी काफी हद तक वित्त व्यवस्था से ही जुड़ी हुई है। अतः विद्यालय के सुचारू संचालन के लिए पर्याप्त वित्त की उपलब्धता होनी आवश्यक है। विभिन्न प्रकार के विद्यालयों के लिए वित्त के भिन्न–भिन्न स्रोत होते हैं, जैसे, विद्यार्थियों से शुल्क लेना अथवा अन्य स्रोतों से अनुदान प्राप्त करना। साथ–ही, कई विद्यालय स्वयं राज्य के द्वारा संचालित होते हैं और उनका पूरे व्यय का वहन सरकार के द्वारा की जाती है, जैसे, राजकीय विद्यालय, केन्द्रीय विद्यालय, नवोदय विद्यालय इत्यादि। कुछ विद्यालयों के पास स्वयं के वित्त संसाधन भी होते हैं।

सरकार को कर आदि से जो आय प्राप्त होती है या फिर ऋण आदि से जो धन प्राप्त होता हैं, उसे शिक्षा व अन्य क्षेत्रों में खर्च करती है। केन्द्र सरकार आय का एक हिस्सा राज्य सरकार को देती है और इसके अलावा राज्य सरकार अपने करों आदि से आय अर्जित करती है। पिछले कुछ वर्षों से केन्द्र सरकार विशेष कर शिक्षा उपकर के माध्यम से आय अर्जित कर रही है। जिसका प्रमुख उद्देश्य है शिक्षा अधिकार कानून को लागू करने के लिए आवश्यक संसाधन जुटाना। इसका भी एक अंश राज्य सरकार को दिया जाता है। कई विद्वानों का यह आकलन है कि प्रभावी शैक्षणिक विकास के लिए देश के सकल घरेलू उत्पादन का कम–से–कम 6 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च होना चाहिए।

आप स्वयं अपने विद्यालय में विभिन्न प्रकार के वित्त व्यवस्था से जुड़े होंगे और यह जानते हैं कि विद्यालय में स्थायी खर्च और विभिन्न योजनाओं के क्रियांवयन के लिए सरकारी राशि तथा अनुदान नियमित रूप से आते रहते हैं। आप अपने आसपास के किसी विद्यालय में पिछले एक वर्ष के दौरान आये विभिन्न प्रकार के राशियों के विषय में तथा स्थाई खर्च की जानकारी एकत्र करें तथा नीचे दी गई तालिका में व्यवस्थित रूप से लिखें।

क्र.सं.	योजना का नाम	आवंटन	व्यय	उल्लेख
1.				
2.				
3.				
4.				

विद्यालय के बज़ट का विशेष महत्व है क्योंकि इसके आधार पर आप वित्तीय संसाधनो के वितरण को अच्छी तरह समझ पाएंगे।

निर्धारित मानकों की समझ

विद्यालय में शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के सफल संचालन को सुनिश्चित करने के लिए कुछ मानकों का निर्धारण किया जाता है ताकि उसके अनुरूप विद्यालय में विद्यार्थियों के लिए उचित व्यवस्था की जाए। इन मानकों का प्रभाव विद्यालय के लगभग सभी पक्षों पर पड़ता है जैसे, विद्यालय भवन का स्वरूप, विद्यालय में अनिवार्य रूप से होनेवाली सुविधायें, न्यूनतम शिक्षकों की संख्या इत्यादि। मानकों को विभिन्न संस्थाओं व विभागों द्वारा निर्धारित किया जाता है और विभिन्न आधारों के अनुरूप उनमें विविधता भी होती है। उन मानकों का पालन करनेवाले विद्यालयों को संबद्ध संस्था द्वारा मान्यता दी जाती है। विद्यालय से संबंधित मानकों के महत्व को राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 में भी रेखांकित किया है।

आप अपने किसी आसपास के विद्यालय के संदर्भ में उन मानकों की सूची बनाएं जिनका पालन करना विद्यालय के लिए अनिवार्य है तथा साथ–ही यह भी जानें कि उन मानकों को निर्धारित करने में किन–किन संस्थाओं व नीतियों की भूमिका होती है।

घटकों की आलोचनात्मक समझ

अब तक के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि विद्यालय की संस्कृति और संगठनात्मक पहलू एक जटिल काम्पलेक्स है। विभिन्न घटकों के समावेशन से ही विद्यालय मानक स्तर पर आता है और वहाँ पठन–पाठन की संस्कृति पनपती है। किसी भी घटक के अभाव या असंतुलन के कारण सम्पूर्ण संस्कृति प्रभावित हो सकती है। विद्यालयी के आवश्यक अवयवों में भवन, शिक्षक–प्राचार्य, शिक्षकेत्तरकर्मी, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, आनंददायीकक्ष, खेल सामग्री एवं मैदान इत्यादि है।

उल्लेखनीय है कि विद्यालय के संलग्न विभिन्न घटकों की अपनी–अपनी उपयोगिता है। प्राचार्य एवं उनके क्रिया–कलाप उनकी सोच सम्पूर्ण विद्यालयी कार्य संस्कृति की धुरी होती है। एक अच्छा प्राचार्य अपने सकारात्मक नजरिए से सबका सहयोग प्राप्त करता है और विद्यालय में नई ऊँचाई देता है। ठीक इसके विपरीत एक प्राचार्य अपने सहयोगियों का विश्वास खो देता है और विद्यालय में अराजक वातावरण पैदा कर देता है। ऐसे में विद्यालय के संसाधनों का न तो समुचित उपयोग हो पाता है और न ही संरक्षण। विद्यालय का विकास अच्छे नेतृत्व पर निर्भर करता है।

विद्यालय का भवन, उपस्कर, फर्नीचर इत्यादि भी विद्यालय में पठन–पाठन की संस्कृति पैदा करते हैं। इनके अभाव में एक योग्य प्राचार्य सहयोगियों का साथ लेकर भी विद्यालय को वह गति नहीं दे पाता है।

शिक्षकों का पर्याप्त समय, उनके आपसी सहयोग–समन्वय, सृजनात्मकता में विद्यालय मानक स्तर की ओर जाता है। इनके सहयोग के बिना विद्यालय में गतिविधियाँ नहीं हो पाती हैं। प्रायः शिक्षक आपस में वैमनस्य, जातिगत विद्वेष प्राचार्य के साथ सम्बन्ध, उपस्थिति, अनुपस्थिति को लेकर आपसी खीचांतानी के शिकार भी होते हैं। ऐसे में भी विद्यालय उपलब्धि स्तर से पीछे रह जाता है। अतः विद्यालय के सम्पूर्ण घटक आपसी तालमेल एवं सहयोग की मांग करते हैं।

विद्यालय में समुदाय की सहभागिता

यदि पिछले दो सौ वर्षो के शैक्षणिक इतिहास को देखें तो हम पाएंगे कि विद्यालय व समुदाय में संबंधों में भी कई बदलाव आते रहे है। देशज शिक्षा के अंतर्गत चलनेवाली पाठशालाओं, मकतबों आदि में समुदाय का विशेष योगदान होता था। आवश्यकतानुरूप, समुदाय का मंदिर, मस्जिद अथवा किसी निवासी का घर स्वतः ही पठन–पाठन के केन्द्र में तब्दील हो जाता था। ब्रिटिश काल में विद्यालय व समुदाय के बीच के ऐसे प्रगाढ़ संबंध का ह्रास होता गया। स्वतंत्रता पश्चात् भी, विद्यालय में सामुदायिक भागीदारी लगातार कम होती गयी और धीरे–धीरे समुदाय का स्थान सरकारी अथवा निजी तंत्र ने ले लिया। यदि अभी से पहले की स्थिति को देखें तो हम विद्यालय–समुदाय के अनौपचारिक संबंध ही ज्यादा पाएंगे। समुदाय के द्वारा विद्यालय का पालन–पोषण होता था तथा विद्यालय भी समुदाय के प्रति उत्तरदायी होता था। आज के विद्यालय–समुदाय सहभागिता का स्वरूप अलग है। आज के परिदृश्य में विद्यालय के ऊपर राज्य का वर्चस्व है तथा विद्यालय में समुदाय किस प्रकार सहभागिता करे, इसे भी राज्य ही निर्धारित करता है। इसी क्रम में राज्य के द्वारा बनायी गयी नीतियों से विद्यालय–समुदाय संबंधों में परिवर्तन हुए हैं। इन

नीतियों के क्रियान्वयन द्वारा कई औपचारिक संस्थाये अथवा संगठनों को बनाया गया जो आज हमारे विद्यालयों से समुदाय को जोड़ते हैं। इन संस्थाओं के विषय में हम आगे चर्चा करेंगे।

समुदाय के लोग विद्यालय में सीखने—सिखाने व प्रबंधन में अतिरिक्त संसाधन के रूप में हो सकते हैं। जब समुदाय के लोग विद्यालय के दैनिक गतिविधियों से जुड़ेगें तो उनके अंदर विद्यालय से एक लगाव भी बढ़ेगा। साथ—ही, समुदाय के लोग विद्यालय में शिक्षण—अधिगम प्रक्रिया में शिक्षकों को मदद भी कर सकते हैं। जब समुदाय की भागीदारी बढ़ेगी तो विद्यालय के महत्वपूर्ण निर्णयों में उनकी भी भूमिका होंगी और विद्यालय 'समुदाय के लिए एक संस्था' बनकर 'समुदाय की संस्था' के रूप में विकसित होगा।

वर्तमान समय में विद्यालय—समुदाय संबंध को एक अलग नजरिये से भी देखा जा सकता है, जिसके अंतर्गत विद्यालय और समुदाय को एक दूसरे के विरोध में देखा जा सकता है। यहाँ, विद्यालय और समुदाय भागीदारी के स्थान पर एक दूसरे की कटु आलोचना में ज्यादा भिड़े होते हैं। शिक्षा की बदहाली और स्कूली शिक्षण के अप्रभावी व गिरते स्तर के लिए जहाँ समुदाय विद्यालय को दोषी ठहराता है, वहीं विद्यालय के अन्दर किसी भी गतिविधि में समुदाय की रूचि को विद्यालय सहभागिता न मानकर हस्तक्षेप मानते हैं। ज्यादातर विद्यालयों में यह संबंध औपचारिकता मात्र है, जिसमें एक—दूसरे के करीब आकर मिलकर काम करने की रूचि का अभाव है। सहभागिता का अर्थ सिर्फ यह नहीं है कि समुदाय के कुछ लोग विद्यालय के कामकाज़ में भाग लें बल्कि यह सुनिश्चित करना है कि समाज में हाशिए पर रहनेवाले लोगों को भी भागीदार बनने का पूरा अवसर मिले।

आमतौर पर सामुदायिक सहभागिता के नाम से पालकों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपने बच्चों को विद्यालय नियमित रूप से भेजें। गाँव के लोगों से विद्यालय भवन निर्माण या विद्यालय के अन्य विकास के लिए संसाधन जुटाया जाता है। अभिभावकों को विशेष आयोजनों में आमंत्रित किया जाता है। कहीं—कहीं अभिभावकों से यह भी आग्रह किया जाता है कि यथासम्भव विद्यालय आकर विद्यालय का निरीक्षण करें और बच्चों के सीखने का मूल्यांकन करें। इनका महत्व यह है कि समुदाय और विद्यालय के बीच लोगों का आना—जाना बना रहता है और कुछ हद तक आत्मीयता बढ़ती है। लेकिन ये सवाल फिर भी अनुत्तरित रहते हैं कि विद्यालय में किस हद तक वंचित समुदाय के अभिभावकों व बच्चों की भूमिका बढ़ती है और किस हद तक हर समुदाय अपने बच्चों की शैक्षणिक जरूरतों को पहचानकर उन्हें विद्यालय में लागू करवा पाते है, और किस हद तक शिक्षकों की शैक्षणिक कार्य की गुणवत्ता को सुनिश्चित कर पाते हैं।

विद्यालय समुदाय सहभागिता को बढ़ाने के लिए यह अति आवश्यक है कि विद्यालय और समुदाय के बीच संपर्क माध्यमों में विविधता आये। विद्यालय अपनी क्रियाकलापों में समुदाय को सम्मिलित करें और समुदाय पठन—पाठन के अलावा अन्य कार्यो में विद्यालय को शामिल करें। आप अपने विद्यालय और आस—पास के समुदाय के बीच के संबंधों में कितनी विविधता है इस पर विचार करें। समुदाय के लोग किन—किन मुद्दों पर विद्यालय से जुड़े हुए हैं। इसके विषय में भी सोचें। आगे हम कुछ प्रमुख संस्थाओं की चर्चा कर रहे हैं जो विद्यालय और समुदाय के मध्य सहभागिता को बढ़ाने का कार्य कर रही हैं।

1. विद्यालय शिक्षा समिति

विकेन्द्रीकरण और सामुदायिक सहभागिता को बढ़ाने के लिए विद्यालय शिक्षा समितियों के गठन पर विशेष बल दिया गया है। इन समितियों को विद्यालय के रख–रखाव व प्रबंधन में बड़ी भूमिका निभानी होगी।

विद्यालय शिक्षा समिति स्थानीय निकाय (ग्राम पंचायत, नगर पालिका आदि) द्वारा चुनी गयी वैधानिक संगठन है। जिसका मूल काम विद्यालय में दी जा रही शिक्षा को सुचारू रूप से चलाना है। इन्हें विद्यालयों के दैनिक कार्यो की देखरेख करने का अधिकार दिया गया है। साथ–ही, यह समिति विद्यालय में आवश्यकतानुरूप विभिन्न योजनाओं व प्रबंधन व्यवस्था से भी जुड़े होते हैं। कई महत्वपूर्ण निर्णयों को इसके सहमति से ही ली जाती है। कई विद्यालयों में विद्यालय शिक्षा समिति को ही प्रबंध समिति के रूप में जाना जाता है। विद्यालय शिक्षा समिति का मूल उद्देश्य नीति बनाने वाले और उन्हें लागू करने वालों के बीच माध्यम का काम करना है। यह विभिन्न शैक्षणिक नीतियों को विद्यालय में लागू करने में मदद करते है। कई बार विद्यालय स्वयं में उन परिस्थितियों को लागू कर पाने में सक्षम नहीं होता है। इस दिशा में समुदाय को उन नीतियों के क्रियान्वयन में मदद करने के लिए सम्पर्क करते हैं। इस प्रकार विद्यालय शिक्षा समिति समुदाय को विद्यालय से जोड़ने में भी भूमिका निभाती है।

विद्यालय शिक्षा समिति का गठन एवं कार्य

केन्द्र सरकार द्वारा अधिसूचित 'बच्चों को मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009' को लागू करने के लिए बिहार सरकार द्वारा 'बिहार राज्य मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा नियमावली–2010' बनाई गयी। इस नियमावली के भाग–5 में विद्यालय शिक्षा समिति की व्यवस्था की गई है तथा इसके संगठन व कार्यकलापों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। आगे इसी नियमावली के कुछ प्रमुख प्रावधानों का उल्लेख किया गया है।

'बिहार राज्य निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा नियमावली' के कुछ अंश

भाग–5

विद्यालय शिक्षा समिति

- गैर–अनुदानित विद्यालयों को छोड़कर नियत तिथि 6 माह के भीतर प्रत्येक विद्यालय में एक प्रबंध समिति का गठन किया जाएगा और प्रत्येक 2 वर्ष पर इसका पुनर्गठन होता रहेगा।
- प्रबंध समिति के कुल सदस्यों में से 75 प्रतिशत सदस्य बच्चों के माता पिता या अभिभावक होंगे।
- विद्यालय प्रबंधन समिति प्रत्येक माह कम–से–कम एक बैठक आयोजित करेगी एवं अपने क्रियाकलापों एवं निर्णयों को एक रजिस्टर में विधिवत् दर्ज करेगी एवं अवलोकन हेतु जनता को उपलब्ध करायेगी।
- प्रबंधन समिति अपनी सामान्य गतिविधियों के अतिरिक्त निम्नांकित गतिविधियों को भी संचालित कर सकेगी और इसके लिए वह सदस्यों के छोटे–छोटे समूहों का गठन कर सकती है:–

➢ *यह सुनिश्चित करना कि शिक्षक गैर–शैक्षणिक कार्यों के बोझ से दबे हुए तो नही हैं?*

➢ *पड़ोसी विद्यालयों में नामांकित सभी बच्चों की लगातार उपस्थिति को सुनिश्चित करना।*

➢ *विकलांग बच्चों को प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा उपलब्ध कराने में अपनी भागीदारी को सुनिश्चित करना एवं उनके नामांकन हेतु पहचान की प्रक्रिया की निगरानी करना।*

➢ *विद्यालयों मे मध्याह्न भोजन की स्थिति की निगरानी करना।*

➢ *विद्यालय के खर्च के लिए एक वार्षिक आय–व्यय का लेखा/बजट तैयार करना।*

➢ *विद्यालय प्रबंध समिति वर्ष समाप्त होने के तीन माह पूर्व ही विद्यालय के विकास के लिए एक योजना तैयार करेगी।*

2. अभिभावक–शिक्षक संघ

बच्चों की शिक्षा से शिक्षक एवं अभिभावक, दोनों का महत्वपूर्ण संबंध है। दोनों के प्रयास से ही वास्तविक रूप में शिक्षा के लक्ष्यों को साकार किया जा सकेगा। इनकी महत्ता को समझते हुए ही विद्यालयों में अभिभावक शिक्षक संघ की अवधारणा को अपनाया गया। यह

शिक्षकों एवं अभिभावकों को वह अवसर प्रदान करेगा जहाँ वे एक–दूसरे से चर्चा एवं अपने विचारों का आदान–प्रदान कर पाएंगे। साथ–ही, विद्यालय में आने के कारण अभिभावकों के शैक्षणिक ज्ञान का भी अद्यतन होता रहेगा। विद्यालय में सामुदायिक रूचि को बढ़ाने का एक प्रभावी उपक्रम अभिभावक–शिक्षक संघ हो सकता है। विद्यालय में शिक्षा की स्थिति की वास्तविकता, विद्यालय में होनेवाले कार्यों की सार्थकता, शिक्षा की उचित व्यवस्था, इत्यादि के ऊपर भी विचार–विमर्श करने के लिए इस मंच का प्रयोग किया जा सकता है।

अभिभावक–शिक्षक संघ के प्रमुख कार्य

विचार–विमर्श : बच्चों का अधिकतम समय परिवार एवं विद्यालय के क्रियाकलापों में व्यतीत होता है। ये दोनों स्थल अपनी प्रकृति में भिन्न हैं। अतः भिन्न–रूप से बच्चों को प्रभावित करते हैं। यदि इनके बीच में एक ताल–मेल हो तो उन प्रभावों को और सार्थक व साकारात्मक बनाया जा सकता है। अभिभावक–शिक्षक संघ इस विषय में विचार–विमर्श व संवाद का मौका प्रदान करते हैं।

विद्यालय की आवश्यकताओं में सहयोग : विद्यालय के कई कार्यो में अभिभावकों के सहयोग अपेक्षित होते हैं। यह सहयोग सिर्फ बच्चों के विकास से संबंधित होते हैं, बल्कि विद्यालय के कई आवश्यकताओं को पूरा करने से भी है। कई विद्यालयी समस्याओं के समाधान में भी सहायता कर सकेंगे। एक कार्य समूह का गठन भी किया जा सकता है।

निर्णय में सहभागिता – ज्यादातर मामलो में बच्चों की शिक्षा के विषय में निर्णय लेने में विद्यालय का वर्चस्व रहता है। विभिन्न शैक्षणिक कार्यक्रमों के संचालन व क्रियान्वयन में भी विद्यालय स्वयं को समुदाय से अलग रखता है। अभिभावक–शिक्षक संघ यह मौका देती है कि अभिभावक भी अपने बच्चों से जुड़े ताकि शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों के विषय में निर्णय ले सकें।

शिक्षा और पंचायती राज संस्थाओं की भागीदारी

आप इससे अवगत होंगे कि 1993 में संविधान के 73वें संशोधन द्वारा ग्राम, ताल्लुका और ज़िला स्तर पर त्रिस्तरीय पंचायती राज प्रणाली को स्थापित किया गया। इस व्यवस्था का मूल उद्देश्य जनता को स्थानीय विकास और प्रशासन में अधिक भागीदारी का अवसर प्रदान करना है। इस दिशा में स्थानीय विकास से संबंधित कई विषयों की पहचान की गई है जिनको पंचायतों को स्थानांतरित किया जाना है जिनमें प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा, वयस्क एवं अनौपचारिक शिक्षा, पुस्तकालय, तकनीकी प्रशिक्षण और व्यावसायिक शिक्षा शामिल हैं। पूरकता का सिद्धांत पंचायती राज का आधार है जिसके अनुसार जो काम जिस स्तर पर संभव है उसे उसी स्तर पर किया जाना चाहिए न कि उससे उच्च स्तर पर। इसी आलोक में गाँव में ग्राम शिक्षा समिति, आँगनबाड़ी जैसे विभिन्न संस्थाओं का विकास हुआ। विद्यालय शिक्षा समिति के माध्यम से आप पहले ही पंचायत की भूमिका से अवगत हो चुके हैं।

आमतौर पर माना गया था कि विद्यालय शिक्षा को पंचायती राज्य के सूपूर्त कर दिया जाएगा, लेकिन यह पूर्ण रूप से अब तक नहीं हो पाया है। अभी भी देश के सभी राज्यों में विद्यालयी शिक्षा पर सरकार का कड़ा नियंत्रण है। कुल मिलाकर पंचायतों की विद्यालयी व्यवस्था में बहुत सीमित भूमिका है। इसके अलावा, अपनी भूमिका को लेकर अस्पष्टता के

कारण भी पंचायतों का विद्यालयी शिक्षा के प्रबंधन में कोई खास प्रभाव नहीं दिखाई देता है। ज्यादा–से–ज्यादा कुछ आर्थिक मामलों जैसे भवन निर्माण, पोषाक राशि वितरण आदि तक ही उनकी भूमिका सीमित है। विद्यालय में क्या पढ़ाया जा रहा है और विद्यार्थियों का विकास किस प्रकार से हो रहा है, इस संदर्भ में पंचायत की प्रभावी भूमिका शायद हीं कहीं दिखाई देती है।

इस खण्ड में आपने समुदाय और विद्यालय के बीच के कुछ औपचारिक संबंधों के विषय में पढ़ा। लेकिन विद्यालय और समुदाय का संबंध कई मामलों में इतना घनिष्ठ है कि औपचारिक संबंध भी अनौपचारिक रह जाते हैं जिसमें से एक है विद्यालय के वैसे समर्पित शिक्षक–शिक्षिकाएं, जिनके लिए सारा समुदाय एकजुट हो जाता है। ऐसे ही एक शिक्षिका का प्रसंग आगे दिया जा रहा है। आप इसे पढ़े और चिंतन करें कि विद्यालय और समुदाय के संबंधों को घनिष्ठ बनाने में एक शिक्षक अथवा शिक्षिका की क्या भूमिका हो सकती है।

एक विद्यालय का प्रसंग

एक शिक्षाधिकारी ने अपने सहकर्मी को लिखा :

'हमें स्थानांतरण आदेश रद्द करना होगा। उन्हें वापस बुलाइए। स्थानांतरण के दिन से विद्यालय का मार्ग उनके हड़ताली विद्यार्थियों से भरा हुआ है। मेरे पूरे सेवाकाल में ऐसा पहली बार देखने को मिला है कि जब विद्यार्थियों ने अपनी प्रधानाध्यापिका के बिना स्कूल में प्रवेश करने से इनकार कर दिया है।'

बालिका माध्यमिक विद्यालय में पढ़ने वाली 1200 बालिकाओं में से लगभग 500 बिना विचलित हुए पूरे तीन दिन तक विद्यालय की सीढ़ियों पर बैठी रहीं, उन्होंने विद्यालय के भीतर जाने से इंकार कर दिया। फिर मिलने वाली अविश्वसनीय खबर के बाद उन्होंने खुशी भरे जयकारे लगाए और वापस अपनी कक्षाओं में चली गईं। बालिकाओं ने अपनी प्रधान शिक्षिका को शिक्षा विभाग से वापस जीत लिया था–स्थानातंरण का आदेश विद्यार्थियों की माँग पर वापस ले लिया गया था।

उनके विद्यालय का छोटा सा आँगन, जिसके किनारे–किनारे पौधों की कतारें हैं और उनके बीच गमलों में हरियाली खिली दिखती है, उनके नेतृत्व की कहानी बयान करता है।

उन्होंने कई ऐसे शिल्पी समुदायों की सेवा की, जिन्हें, सभी हाथों की जरूरत थी यानि प्रत्येक सदस्य का योगदान चाहिए था ताकि उनका शहर पर्यटकों का गढ़ बना रहे। इसके बाद भी समुदाय ने स्वेच्छा से अपनी बच्चियों को विद्यालय भेजा और ये बच्चियाँ भी निडर होकर भविष्य में डॉक्टर और शिक्षक बनने की महात्वाकांक्षाओं को जाहिर करती थीं।

श्रीमती कुमार अपने विद्यालय के हर एक विद्यार्थी को जानती थीं और उन्हें यह भी पता रहता था कि उन्हें किनकी, किस तरह सहायता करनी है। उन्होंने अपनी अभिभावक इकाई (parent body) को जन्मोत्सवों पर धन व्यय करने की बजाए विद्यालय के आर्थिक रूप से पिछड़े विद्यार्थियों की पढ़ाई के लिए सहायता देने पर राज़ी कर लिया था। उन्होंने अपने कर्मचारियों को भी प्रेरित किया। वे हर साल जाड़े के मौसम में पाँच स्वेटर जरूर उपलब्ध कराएं जिन्हें उन बालिकाओं को दे दिया जाए जिनके परिवार उन्हें गर्म कपड़े दे पाने में सक्षम नहीं हैं।

उन्होंने अपने शिक्षकों के परिवारों को भी इस बात पर राज़ी कर लिया कि वे अपने पारिवारिक समारोहों में हाथों की मेंहदी लगाने के लिए विद्यालय की उच्च कक्षाओं में पढ़ने वाली उन बालिकाओं को बुलाएं जो इस काम में कुशल थीं। इससे उन बालिकाओं को भी जरूरी जेबखर्च मिल जाता है। उनके विद्यार्थियों के परिवारों ने अपनी बच्चियों को शहर के 'सैटेलाइट प्रसारण केन्द्र' पर भेजने से इनकार कर दिया था, इसलिए उनके शिक्षकों ने हाल में शिक्षा अधिकारियों को विद्यालय की छत पर एक सैटेलाइट डिश लगाने के लिए भी मना लिया है। वे नहीं चाहती थीं कि सांस्कृतिक मानदण्ड उनके विद्यार्थियों के आडियो विजुअल निर्देश प्राप्त करने के मार्ग में बाधा बनें, और अब ये उन्हें प्राप्त हो रहे हैं।

आज उनकी पूर्व छात्राएं शहर के महाविद्यालयों में हैं और कुछ तो सह शिक्षा महाविद्यालयों में पढ़ रही हैं। उनके होनहार कर्मी भी अपनी पढ़ाई जाने वाली प्रत्येक कक्षा पर अपने प्रभाव का आकलन करते रहते हैं और वे भी सुनिश्चित करती हैं कि उनके कर्मियों की पहुँच प्रत्येक विद्यार्थी तक हो और वे हर एक के अन्दर छिपी विशिष्ट प्रतिभा से परिचित रहें। यहाँ अनुपस्थिति बेहद कम है और विद्यालय छोड़ने वालों की संख्या न के बराबर है। यहाँ का सबसे गौरवपूर्ण स्थान विज्ञान प्रदर्शन कक्ष तथा व्यावहारिक विज्ञान प्रयोगशाला है और कक्षाओं में तकनीकी का प्रयोग अधिकांश सरकारी विद्यालयों से ज्यादा किया जाता है।

वे प्रत्येक विद्यार्थी के परिवार को जानती हैं और जहाँ आवश्यकता होती है सहायता भी करती हैं पर इसके लिए वे अपने उन प्रयासों में उनकी साझेदारी की माँग करती हैं जिन्हें वे व्यक्तिगत व पारिवारिक स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के मानकों को ऊपर उठाने के लिए कर रही है। बालिकाओं की माताओं को भी चिकित्सीय शिविरों में सहायता दी जाती है।

उनके द्वारा विद्यालय के सूचना पट्ट पर लिखी जाने वाली कविताएं, मौलिक एवं जोशीली होती हैं जिनसे वे अपनी शिक्षिकाओं को प्रेरित करती हैं कि वे परिवर्तन का वाहक हैं। अपने 'विद्यालय परिवार' से मिलने वाला आदर और सम्मान उन्होंने वास्तव में अर्जित किया है।

स्रोत : Unit-10 (LDUs developed by Tess India)

विद्यालय प्रबंधन की व्यवस्था और और अन्तर्निहित मान्यताएँ

परिचयः—

आपने आस—पास के कई विद्यालयों में कार्यों के स्वरूप को देखा होगा। उसके पीछे विद्यालय प्रबंधन की जटिल संरचना होती है। शिक्षकों की विद्यालय प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। क्योंकि वे विद्यालय प्रबंधन के सभी कारकों के मध्य तालमेल बिठाने वाले मुख्य अभिकर्ता होते हैं। अतः उनमें विद्यालय प्रबंधन से सम्बंधित अवधारणाओं की समझ विशेष तौर पर होनी चाहिए। विद्यालय प्रबंधन में कई अन्य कारकों जैसे—समुदाय,प्रशासनिक संस्थाएं,शिक्षा समिति, आदि की भी भागीदारी होती है,जिनके साथ समन्वय बनाकर शिक्षकों को कार्य करना होता है। अतः उन्हें विद्यालयों के बेहतर प्रबंधन के लिए समय—सारणी, वार्षिक कार्य योजना, आदि के निर्माण की आवश्यकता पड़ती है। वर्तमान समय में, विद्यालय प्रबंधन के अंतर्गत विभिन्न आपदाओं, उनके प्रभावों व उनसे सुरक्षा के प्रति जागरूक रहने के बात पर भी बल दिया जा रहा है।

उद्देश्य

- विद्यालय की प्रबंधन व्यवस्था के विभिन्न आयामों की समझ विकसित करना।
- विद्यालयों के प्रबंधात्मक संरचना को समझकर उसका आलोचनात्मक विश्लेषण करना।
- विद्यालयों के नियमित गतिविधियों का प्रबंधात्मक दृष्टिकोण से विवेचना करना।
- विद्यालय प्रबंधन में एक शिक्षक के रूप मे अपनी भूमिका की समझ बनाना।
- विद्यालय में समय प्रबंधन के विविध तरीकों से अवगत होना।
- विद्यालय के संदर्भ में आपदा प्रबंधन के महत्व को समझना।

विद्यालय प्रबंधन की अवधारणात्मक समझ

आपने अपने पड़ोस के विद्यालय में होने वाले कई गतिविधियों को देखा होगा, जैसेः घंटी का बजना, प्रार्थना, कतारबद्ध होना इत्यादि। अपने विद्यालय जीवन में इस प्रकार से विद्यालय के काम को लेकर कई जिज्ञासाएँ होंगी और आज एक शिक्षक के रूप में कार्य करते हुए भी आप विद्यालय प्रबंधन के कई नए आयामों से अवगत हो रहे होंगे। साथ ही, आपके दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आता रहा होगा। विद्यालय के संसाधनों का सर्वोतम उपयोग करते हुए इसके सभी कार्यों को व्यवस्थित तरीके से करना ही विद्यालय प्रबंधन कहलाता है।

विद्यालय प्रबंधन की आवश्यकता

विद्यालय में दैनिक गतिविधियों की शुरूआत चेतना सत्र से करना, कक्षाओं में शिक्षण—अधिगम के कार्य में सबों की भूमिका को सुनिश्चित करना, सीखने के साथ—साथ खेलकूद तथा अन्य कार्यकलापों के विद्यालयी गतिविधियों में सम्मिलित करना, साप्ताहिक योजना बनाना,यदि किसी सप्ताह में कोई विशेष आयोजन होनेवाला

है तो उसका विवरण पहले से ही तैयार करना, उसी प्रकार महीने तथा वार्षिक गतिविधियों का निर्धारण करना, आदि ऐसे कार्य है जिनके लिए विद्यालय के सभी कर्मियों को निरन्तर योजना बनाते रहना होता है। इतने सारे कार्यों को बिना किसी व्यवस्थित योजना के नहीं किया जा सकता। अतः विद्यालय प्रबंधन का होना आवश्यक है। विद्यालय प्रबंधन की आवश्यकता इसलिए है ताकि विद्यालय के हर आयाम पर ध्यान दिया जा सके तथा उसका सर्वोतम प्रयोग हो सके।

विद्यालय प्रबंधन की आवश्यकता इसलिए भी है क्योंकि विद्यालय का ज्ञान एवं कार्य सदैव परिवर्तनशील है। इसके प्रति विद्यालय को सजग रहना चाहिए। इसलिए, विद्यालय में नवाचारों को प्रोत्साहित करने के दृष्टिकोण से विद्यालय प्रबंधन की आवश्यकता है। नवाचारी कार्यों या नवाचार के प्रयासों द्वारा ही शिक्षा में नए शोधों, नए विचारों व नए परिप्रेक्ष्यों का विकास हो सकता है। नवाचारों से ही समस्याओं को हल करने के नए रास्ते विकसित हो सकते हैं।

नए—नए सिद्धांतों और तकनीकों के आने से विद्यालय की प्रबंधात्मक स्वरूप में भी परिवर्तन लाया जा सकता है। अतः विद्यालय में नवाचारी परिवर्तन लाने में विद्यालय प्रबंधन की अग्रणी भूमिका हो सकती है। विद्यालय में शैक्षिक विकास को गति तभी मिलती है जब विद्यालय—भवन, खेल का मैदान, प्रयोगशाला तथा पुस्तकालय आदि का व्यवस्थित ढ़ंग से इस्तेमाल किया जाये।

इसके लिए भी विद्यालय में सक्रिय प्रबंधन की आवश्यकता है। विद्यालय के सभी कर्मचारियों के बीच तालमेल होना विद्यालय की मुख्य आवश्यकता है। क्योंकि विद्यालय के सभी कर्मचारियों के बीच जब तक पारस्परिक सहयोग नहीं होगा तब तक विद्यालय का समुचित संचालन नहीं हो सकेगा। अतः विद्यालय प्रबंधन के उन सिद्धांतों को समझना जरूरी है जिससे विद्यालय के सभी कर्मियों के मध्य तालमेल को सुदृढ़ किया जा सके।

साथ ही विद्यालय और समुदाय में मध्य संबंधों को प्रगाढ़ बनाने में भी विद्यालय प्रबंधन की विशेष भूमिका हो सकती है। विद्यालय और समुदाय के सम्मिलित प्रयास से ही उत्तम शैक्षिक विकास हो सकता है। अतः विद्यालय एवं समुदाय के बीच तालमेल और समन्वय विकसित करने के दृष्टिकोण से भी विद्यालय प्रबंधन की आवश्यकता है। समुदाय को विद्यालय के विकास से जुड़ी विभिन्न कार्यों के बारे में जानकारी देनी चाहिए। जब समुदाय की विद्यालय प्रबंधन में भूमिका बढ़ेगी तो उनमें विद्यालय के प्रति अपनत्व की भावना भी बढ़ेगी जो विद्यालय के विकास के लिए अति आवश्यक है। इसके सहभागी स्वरूप के माध्यम से विद्यालय के शिक्षकों व बच्चों में लोकतांत्रिक मूल्यों जैसे—समता, स्वतंत्रता, श्रम की गरिमा का सम्मान, अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता, पारस्परिक सहयोग तथा दूसरों की बातों को सुनने की सहनशीलता आदि मूल्यों का विकास स्वयं ही होता जाता है। इससे समाज में लोकतांत्रिक सोंच को बढ़ावा दिया जा सकता है।

विद्यालय प्रबंधन की अवधारणा

प्रबंधन एक सामान्य अवधारणा है जिसकी आवश्यकता लगभग हर व्यक्ति हो हर कार्य में पड़ती है। घरेलु कामकाज से लेकर बड़ी—बड़ी संस्थाओं के कार्यों में प्रबंधन अंतर्निहित

होता है। प्रबंधन के स्वरूप का निर्धारण संस्था, व्यक्ति, कार्य, संसाधन और उद्देश्यों के अनुरूप होता है। प्रबंधन एक यांत्रिक प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत किसी यंत्र का हरेक पुर्जा एक दूसरे से जुड़ा हुआ होता है और एक दूसरे के कार्य को नियंत्रित करता है एवं आगे बढ़ाता है। अतः विद्यालय प्रबंधन की आवश्यकता विद्यालय के दैनिक कार्यों को यांत्रिक तौर पर एक ही तरीके से करते रहने से नहीं है बल्कि इसकी आवश्यकता तो विद्यालय के वृहत्तर उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए है।

विद्यालय में नयापन लाने एवं विद्यालय के माहौल में बदलाव लाने के लिए विद्यालय प्रबंधन की जरूरत पड़ती है। इस तरह, विद्यालय प्रबंधन से तात्पर्य ऐसी व्यवस्था से है जिसके माध्यम से विद्यालय के तमाम गतिविधियों को व्यवस्थित तरीके से किया जाता है। इसमें विद्यालयी संसाधनों के प्रबंधन से लेकर मानव संबंधों का प्रबंधन भी शामिल है। इसके अर्न्तगत विद्यालय के सभी लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करनी होती है। विद्यालय के बाहर का प्रबंधन, विद्यालय स्तर पर प्रबंधन, कक्षा स्तर पर प्रबंधन, ये सभी आपस में मिलकर ही प्रबंधन की प्रक्रिया को पूर्णता प्रदान करते है।

किसी भी कार्य के प्रबंधन का कोई–न–कोई उद्देश्य अवश्य होता है। उद्देश्य के अनुरूप ही कार्य को करने की रूपरेखा को बनाया जाता है। जैसे विद्यालय में वृक्षारोपण कार्यक्रम का आयोजन हो रहा है तो इसके पीछे के उद्देश्यों को गहराई से समझे बिना प्रबंधात्मक दृष्टिकोण से कार्यक्रम को प्रभावी नहीं बनाया जा सकता। अतः यहां, उद्देश्य से तात्पर्य मात्र औपचारिक उद्देश्यों से नहीं है बल्कि वैसे उद्देश्यों से है जो किसी कार्य के व्यापक आयामों को प्रदर्शित करते हैं।

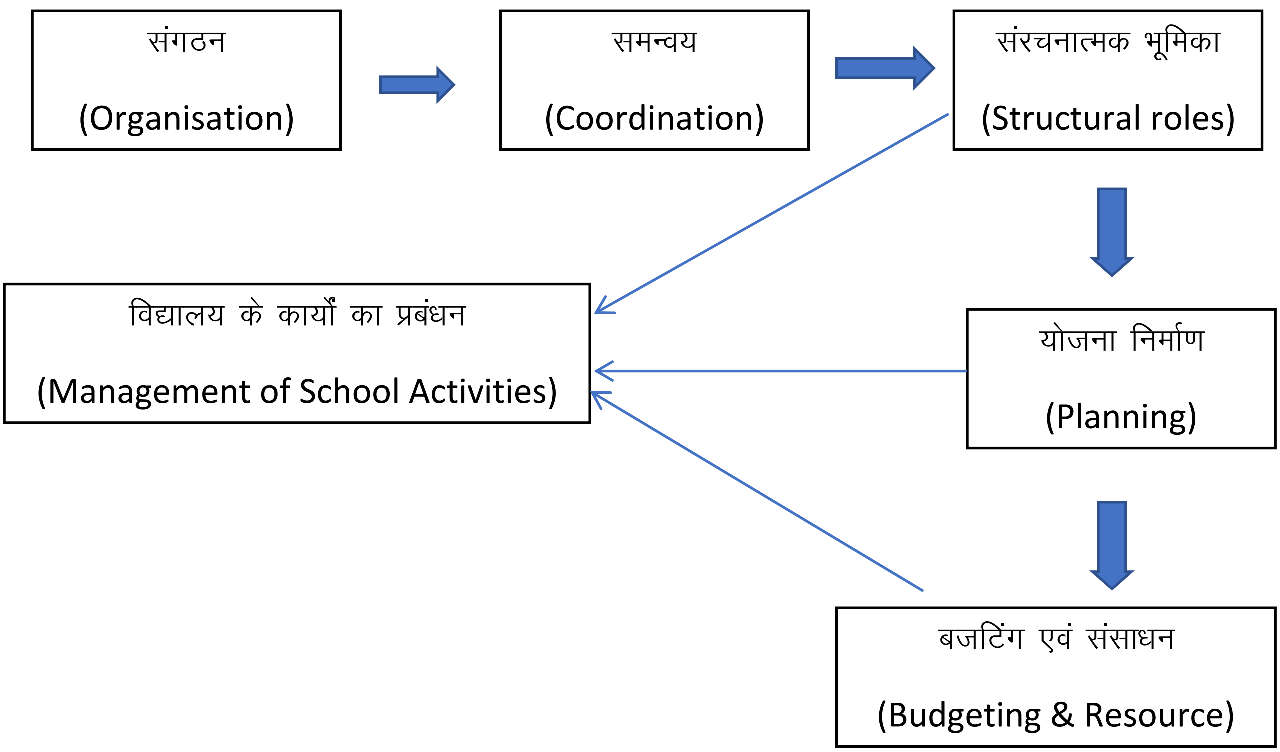

विद्यालय एक संगठन होता है, जिसके अंतर्गत कई घटक होते हैं। उन घटकों के बीच विद्यालय के संरचनात्मक भूमिकाओं का निर्धारण होता है। इस तरह विद्यालय में प्रबंधन की प्रक्रिया काम करती है। विद्यालय संचालन में विद्यालय प्रबंधन से जुड़े सभी घटकों–विद्यार्थियों, शिक्षकों, प्रधान–शिक्षक, स्कूल प्रबंधन समिति तथा स्थानीय संस्थाओं (ग्राम पंचायत, नगर पंचायत, राज्य स्तरीय या केन्द्र स्तरीय संस्थाएँ) आदि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विद्यालय का समुचित संचालन के लिए विद्यालय की योजना को सही ढंग से कार्यान्वित एवं समीक्षा उचित ढंग से की जाए, जिससे कि योजना बनाने व उसे कार्यान्वित करने में आनेवाली कठिनाईयों को पहचान कर उसे दूर किया जा सके। विद्यालय के संचालन के लिए लोगों व संचालन से जुड़े घटकों के बीच उचित समन्वय का होना बहुत महत्वपूर्ण है। 'समन्वय' का अर्थ है प्रबंधन और उपलब्ध साधनों के बीच पारस्परिक संबंध। विद्यालय के सभी कर्मी एक दूसरे के कार्य में सहायक बनें न कि बाधक।

विद्यालय के संचालन में विद्यालय के समस्त ताने बाने जैसे– विद्यालय भवन, पाठ्यपुस्तकें, समय–सारणी, पाठ्यसहगामी क्रियाएँ तथा स्टाफ आदि के मध्य समन्वयात्मक प्रबंधन का ध्यान रखना आवश्यक होता है। विद्यालय प्रधान यह सुनिश्चित करें कि विद्यालय में कार्यरत सभी शिक्षक व अन्य कर्मचारी अपने–अपने कार्य को सुचारू ढंग से करें तथा विद्यार्थी शिक्षा प्राप्ति एवं पाठ्य सहगामी क्रियाओं में सही ढंग से भाग लें।

इसी तरह विद्यालय परिसर के भौतिक संसाधनों की देखभाल व रखरखाव का ध्यान रखना भी प्रधान–शिक्षक की जिम्मेवारी होती है। वह इन जिम्मेवारी को अपने सहकर्मी शिक्षकों के साथ समन्वय बनाते हुए उन जिम्मेवारियों को निभाएँ। व्यावहारिक तौर पर विद्यालय प्रबंधन के दो मायने निकलते हैं। पहले मायने के अनुसार विद्यालय प्रबंधन विभिन्न सदस्यों, उद्देश्यों व अधिकारों से युक्त एक इकाई है जो विद्यालय के कार्यों का संचालन करती है। विद्यालय प्रबंधन के प्रत्येक सदस्य के कुछ निर्धारित कार्य होते हैं जो औपचारिक तौर पर विद्यालय से जुड़े होते हैं जैसे–शिक्षक, प्रधान शिक्षक, विद्यालय शिक्षा समिति आदि। इसके लिए उन्हें सबको साथ लेकर एक इकाई के रूप में कार्य करना होगा ।

दूसरे मायने के अनुसार विद्यालय प्रबंधन को एक प्रक्रिया समझा जाता है जिसके अन्तर्गत विशेष जोर इस बात पर होती है कि विभिन्न कारकों के कारण विद्यालय की गतिविधियों को किस प्रकार से क्रियान्वित किया जा रहा है। इस संदर्भ में विद्यालय प्रबंधन को लेकर दो स्तरों की गतिविधियों को परिभाषित किया जा सकता है। पहली प्रबंधात्मक गतिविधि जिसका स्वरूप लगभग सभी विद्यालयों में एक जैसा होता है तथा

दूसरा स्तर प्रत्येक विद्यालय में विशिष्ट होता है। इसमें समुदाय और शिक्षकों के मध्य कैसा संबंध है ? प्रधानाचार्य की क्या विचारधारा है ? शिक्षकों का विद्यालय के प्रबंधन को लेकर क्या नजरिया है ? आदि। इन दोनों नजरियों के द्वारा विद्यालय प्रबंधन के व्यापक स्वरूप को समझने में मदद मिलती है।

विद्यालय प्रबंधन की संरचनात्मक समझ

विद्यालय प्रबंधन की संरचना में मुख्यतः पाँच तत्वों—भवन, विद्यार्थी, शिक्षक, समुदाय एवं स्थानीय प्रशासनिक संस्थाओं का बहुमूल्य योगदान है। किसी भी एक तत्व के अभाव में विद्यालय की संरचना पूरी नहीं हो सकती हैं जैसे—विद्यालय प्रबंधन की संरचना में विद्यालय भवन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विद्यालय भवन के अंतर्गत स्थिति, इमारत, खेल के मैदान, पुस्तकालय, छात्रावास, फर्नीचर तथा अन्य साज—सज्जा आते हैं। विद्यालय के लिए उचित परिवेश, शुद्ध जल, वायु एवं प्रकाश आदि का होना बहुत जरूरी है। सामान्य कक्षा—कक्ष, विशेष कक्ष, प्रयोगशाला, पुस्तकालय, शौचालय, विद्यालय प्रांगण इत्यादि के नियमित प्रबंधन की भी आवश्यकता होती है।

विद्यालय प्रबंधन में विद्यार्थियों की भूमिका

विद्यार्थी विद्यालय के आवश्यक अंग होते है। इसलिए विद्यालय प्रबंधन में उनकी भूमिका अपरिहार्य होती है। विद्यार्थी को केन्द्र में रखकर विद्यालय के समस्त शैक्षिक प्रयासों का संगठन किया जाता है जैसे—पाठ्यक्रम का निर्धारण, विद्यालय भवन की स्थापना, योग्य शिक्षकों तथा प्रधानाध्यापक की नियुक्ति, शारीरिक शिक्षा का कार्यक्रम, स्वास्थ्य सेवाएँ आदि। विद्यार्थी को विद्यालय का अंग मानकर शिक्षा देने के संदर्भ में समझा जाता है।

अतः विद्यालय के कई कार्यों में विद्यार्थियों को जिम्मेवारी सौंपी जानी चाहिए। इससे उनमें आत्मविश्वास और अपनी क्षमताओं को बेहतर बनाने को लेकर उत्प्रेरक का कार्य करेगा। विद्यालय के संसाधनों को अच्छी तरह से इस्तेमाल करने तथा उनके संधारण को लेकर विद्यार्थियों को कुछ जिम्मेवारी सौंपी जा सकती हैं। कई विद्यालयों में पुस्तकालय तो है लेकिन वह अक्सर बंद रहता है क्योंकि उसके लिए जिम्मेवार शिक्षक अपनी कक्षाओं में शिक्षण एवं अन्य कार्य में व्यस्त रहते हैं अतः विद्यार्थियों से इसके प्रबंधन में मदद ली जा सकती है।

विद्यालय प्रबंधन में प्रधान–शिक्षक/प्रधानाचार्य एवं शिक्षकों की भूमिका

विद्यालय में प्रधानाचार्य की कुछ महत्वपूर्ण प्रबंधात्मक भूमिकाएँ हैं जिसे वह शिक्षकों की मदद से संचालित करते है। प्रत्येक शैक्षिक संस्था के प्रधान का प्रमुख दायित्व विद्यालय के लिए योजना निर्माण करना होता हैं उसे अपने कर्त्तव्यों तथा दायित्वों को वर्षभर के लिए नियोजित करना पड़ता है। जैसे– विद्यालय सत्र शुरू होने से पहले बच्चों के नामांकन के संबंध में निर्णय लेना, साथ ही उन समितियों का निर्माण करना जिनको यह कार्य सौंपना है कि किस कक्षा में कितनें छात्रों को प्रवेश देना है आदि। प्रधानाचार्य का यह भी दायित्व होता है कि वह यह भी देखे कि फर्नीचर,अन्य साज–सज्जा, पुस्तकालय में पुस्तकों आदि की उपलब्धता है या नहीं। इसके साथ ही आवश्यक रजिस्टरों तथा फाइलों आदि का प्रबंध करना उसकी जिम्मेवारी होती है। प्रधानाचार्य का यह भी एक दायित्व होता है कि वह विद्यालय संगठन को सुचारू रूप से चलाने के लिए प्रधानाध्यापक को सत्र के दौरान कुछ कार्यों की व्यवस्था शिक्षकों के साथ मिलकर करनी होती है जैसे– शिक्षण कार्य का संगठन, विभिन्न पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का संगठन, विद्यालय अभिलेखों, छात्रों के अभिलेखों, छात्रों के लिखित कार्य आदि। इसके साथ ही, वार्षिक खेलकूद दिवस, अभिभावक दिवस, सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा वार्षिक पुरस्कार वितरण दिवस आदि का आयोजन करना, छात्रों के वार्षिक प्रतिवेदन तैयार करना, अगले सत्र की तैयारी के लिए आवश्यक कदमों पर विचार–विमर्श करना तथा रख–रखाव एवं विकास से संबंधित मामलों पर विचार–विमर्श करने में भी प्रधानाचार्य एवं शिक्षकों की विशेष प्रबंधात्मक भूमिका होती है।

प्रधानाध्यापक को विद्यालय की प्रगति के लिए समय समय पर एक कुशल पर्यवेक्षक की भूमिका को भी निभाना पड़ता है। वर्ग में शिक्षकों के कार्यों का निरीक्षण करना तथा विद्यालय में अनुशासन बनाए रखना प्रधानाध्यापक का मुख्य कर्त्तव्य है। प्रधानाध्यापक को विद्यालय प्रबंधन में एक निर्देशक की भूमिका को भी निभाना पड़ता है। यह निर्देशन कई क्षेत्रों में दी जा सकती है, जैसे– शैक्षिक एवं शैक्षिकेत्तर क्षेत्र में करियर के चुनाव के संबंध में व्यक्तिगत निर्देशन जो छात्रों को, अभिभावकों को एवं शिक्षकों को दी जा सकती है। अभिभावकों को छात्रों के ऊपर अनावश्यक दबाव न बनाते हुए उनकी रूचि एवं योग्यता के अनुकूल विषयों के चुनाव के लिए

निर्देशन देना भी प्रधानाध्यापक को कभी–कभी जरूरी हो जाता है। जो छात्रों के भविष्य के लिए आवश्यक होता है। विद्यालय के कुशल संचालन के लिए प्रधानाध्यापक को अनेक व्यक्तियों से संपर्क स्थापित करना पड़ता है। यह संपर्क शिक्षकों से, छात्रों से, अधिकारियों से, अभिभावकों से तथा समाज एवं समुदाय से होता है। प्रधानाध्यापक शिक्षकों से विचार–गोष्ठियों, अनौपचारिक बैठकों तथा कक्षा–पर्यवेक्षण के लिए संपर्क करते हैं।

छात्रों को समझने तथा उनकी विशिष्ट समस्याओं को जानने के लिए प्रधानाध्यापक को अभिभावकों से भी संपर्क करना पड़ता है। इसके अलावा अनेक सामाजिक कार्यकर्ताओं से भी उनकों संपर्क स्थापित करना पड़ता है। प्रधानाध्यापक सर्वप्रथम एक शिक्षक है और फिर प्रशासक। प्रधानाध्यापक द्वारा शिक्षण कार्य न केवल शिक्षकों के मार्गदर्शन के लिए आवश्यक है बल्कि यह छात्रों से संपर्क का सर्वोत्तम साधन है।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि एक प्रधानाध्यापक को अनेकों कार्य करने पड़ते हैं। इन सभी कार्यों के कुशलतापूर्वक संचालन के लिए उनमें उत्तम स्वास्थ्य, उच्च चरित्र, प्रभावशाली व्यक्तित्व, सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार, आशावादी दृष्टिकोण, नेतृत्व–गुण, समायोजन शक्ति तथा व्यावसायिक ज्ञान आदि गुणों का होना अपेक्षित है। उपरोक्त सभी आवश्यक गुणों का एक शिक्षक के लिए भी होना आवश्यक है।

विद्यालय के प्रबंधन में प्रधानाचार्य की भूमिका सबसे अहम होती है क्योंकि उसके विचारों का विद्यालय प्रबंधन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। प्रधानाचार्य विद्यालय का नेतृत्व करता है। वह शैक्षणिक कार्यों में शिक्षकों का मार्गदर्शन करके उनके शैक्षणिक स्तर को ऊँचा उठाता है। प्रधानाचार्य अपने कुशल संचालन से विद्यालय एवं समाज के बीच संबंध स्थापित करता है। प्रधानाचार्य के नेतृत्व की सफलता का आधार शिक्षकों के प्रबंधात्मक भूमिका पर निर्भर है।

वर्तमान समय में विद्यालय के प्रबंधन में केन्द्रीकृत नियंत्रणकारी विचारधारा के स्थान पर विकेन्द्रित व लोकतांत्रिक विचारधारा को महत्व दिया जा रहा है। अर्थात, प्रधानाचार्य विद्यालय के कार्यों का नियंत्रणकर्ता नहीं हैं बल्कि प्रबंधनकर्ता है। इसलिए विद्यालय प्रबंधन के दृष्टिकोण से प्रधानाचार्य और शिक्षकों के कार्य एक दूसरे के पूरक हैं अर्थात दोनों के सम्मिलित प्रयास से ही प्रबंधन होता है।

विद्यालय प्रबंधन में समुदाय की भूमिका

विद्यालय प्रबंधन की संरचना में समुदाय की भूमिका का भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। समुदाय को विद्यालय के सभी कार्यक्रमों के उचित संचालन में अपना पूर्ण सहयोग देना चाहिए। समुदाय के उचित सहयोग से विद्यालय अपनी प्रगति की ओर बढ़ता है। प्रबंधन में समुदाय की भूमिका से विद्यालय का चौतरफा विकास होता है।

समुदाय, नामांकन के समय, उपस्थिति के समय तथा विद्यालय में मध्याह्न भोजन में भी अपना सक्रिय भूमिका निभाता है। जैसे–यदि किसी विद्यालय में नामांकन के बावजूद बच्चे स्कूल को नहीं जाते हैं तो समुदाय के लोगों को चाहिए वह विद्यालय प्रबंधन से इस विषय पर बात करके कारण को जाने और उसके निवारण की कोशिश करें। यदि विद्यालय के शिक्षक समय पर अपनी कक्षा में नहीं जाते हैं तो प्रधानाचार्य से बात करके यह कहना चाहिए कि सभी शिक्षक सही समय पर अपने वर्ग में जायें और समय–सारणी के अनुरूप अपना कार्य ईमानदारी से करें। इसी प्रकार, यदि मध्याह्न भोजन का कार्य विद्यालय प्रबंधन ठीक से नहीं करता है तो समुदाय के लोगों को आगे आकर इसकी समुचित जानकारी प्रबंधन को देनी चाहिए कि हर दिन के मेन्यु के अनुसार बच्चों को खाना दिया जा रहा है या नहीं। यदि ऐसा नहीं है तो समुदाय को हस्तक्षेप करके इस कार्य को सुचारू रूप से चलाया जा सकता है।

इस प्रकार विद्यालय प्रबंधन में समुदाय की भूमिका महत्वपूर्ण है। लेकिन, समुदाय की यह भूमिका तभी निर्मित हो पाएगी जब विद्यालय के शिक्षक इसके प्रति संवेदनशील हों तथा विद्यालय में समुदाय की भागीदारी को महत्वपूर्ण मानते हों।

कार्य संस्कृति (Work Culture)

प्रत्येक संगठन की एक विशिष्ट कार्य संस्कृति होती है। किसी संगठन की कार्य–संस्कृति काफी हद तक उस देश / समाज की मूल संस्कृति से प्रभावित होती है जिस देश / समाज में वह संगठन कार्यरत है।

कार्य संस्कृति वह वातावरण है जिसे हम अपने कर्मचारियों के लिए बनाते हैं। यह उनकी कार्य संतुष्टि, संबंधों और प्रगति को निर्धारित करने में एक शक्तिशाली भूमिका निभाता है। यह संगठन के नेतृत्व, मूल्यों, परंपराओं, विश्वासों, बातचीत, व्यवहार और दृष्टिकोण का मिश्रण है। जो कार्य स्थल के भावनात्मक और संबंध परक वातावरण में योगदान देता है।

ये कारक अनिर्दिष्ट और अलिखित नियम हैं जो सहकर्मियों के बीच संबंध बनाने में मदद करते हैं।

कार्य संस्कृति विशेष तौर पर कार्य–स्थान की प्रकृति के संबंध में दृष्टिगत किया जाता है। इसका आशय किसी संगठन में कार्य से संबंधित मूल्यों और मानदण्डों से है जो कार्य की प्रकृति और दृष्टिकोण से संबंधित किसी संगठन और इसके कर्मचारियों के बीच होते हैं।

कार्य संस्कृति एक अवधारणा है जो विश्वास, विचार, प्रक्रिया, शिक्षकों का दृष्टिकोण, शैक्षिक संगठन की विचारधारा और सिद्धांतों का अध्ययन करती हैं। एक शैक्षिक संगठन का गठन कुछ लक्ष्यों और उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। शिक्षकों को अपने कार्य के प्रति आनंद लेना आवश्यक है ताकि कार्य के प्रति निष्ठा की भावना विकसित हो सके। समस्त शिक्षकों में से कुशल शिक्षकों को चुनने एवं उन्हें व्यवसाय से जोड़ने में कार्य संस्कृति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कार्य संस्कृति एक संगठन और उसके कर्मचारियों में गुणों का एक संयोजन है जो साधारणतः सोचने एवं कार्य करने हेतु उपयुक्त तरीकों से उत्पन्न होती है।

आजकल हमारी कार्य संस्कृति, कार्य, व्यवहार, कार्य स्थान आदि बहुत तीव्र गति से बदल रहे है। इस बदलते कार्य संस्कृति में स्वयं को समायोजित करना बेहद जरूरी हो चुका है।

अनुशासन (Discipline)

Discipline शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द ' Disciplina ' से हुई है, जिसका अर्थ है– सीखना या आज्ञापालन।

आधुनिक शैक्षिक विचारधारा के अनुसार अनुशासन का अर्थ व्यापक रूप में लिया जाता है। जहाँ शिक्षा का उद्देश्य बालक में सफल नागरिक एवं सामाजिकता के गुणों का विकास करना समझा गया है, वहीं विद्यालय अनुशासन से तात्पर्य ऐसे आन्तरिक तथा बाह्य अनुशासन से लिया जाता है, जो शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक व नैतिक मूल्यों का विकास करें।

बालक के जीवन का प्रत्येक अनुभव, चाहे वह बौद्धिक हो या नैतिक, उसके व्यक्तिगत विकास पर अपना प्रभाव डालता है। अतः विद्यालय एक ऐसे स्थान के रूप में कल्पित किया जाना चाहिए, जहाँ बौद्धिक विकास के साथ–साथ अन्य प्रकार के विकास भी सहयोगी क्रिया द्वारा समान उद्देश्य हेतु प्राप्त किये जाते हैं।

सर्वाधिक आधुनिक विचारधाराओं के अनुसार अनुशासन का अर्थ है– लोकतन्त्रीय समाज में बालकों एवं बालिकाओं को जीवन के लिए तैयार करना। इसका अभिप्राय व्यक्ति को ज्ञान, शक्ति, आदतों तथा आदर्शों को प्राप्त करने में सहायता देना है। जो कि स्वयं के व उसके साथियों के कल्याण के लिए एवं सम्पूर्ण समाज के लिए कल्पित किये जाते हैं।

विद्यालय अनुशासन के बारे में अगर बात करें तो व्यक्ति में अनुशासन के तीन तत्व आते हैं–

पहला– अन्तः प्रेरणा

दुसरा– आत्म नियन्त्रण की शक्ति और

तीसरा– समाज–सम्मत आचरण

विद्यालय में अनुशासन रखने से हमारा तात्पर्य विद्यार्थी को समाज सम्मत आचरण के प्रति सचेत करने, उन्हें वैसा करने की प्रेरणा देने, उन्हें अपने ऊपर नियन्त्रण रखने और विद्यालयी नियमों का पालन करने योग्य बनाने से होता है। जब सभी विद्यार्थी स्वयं से प्रेरित होकर विद्यालयी नियमों का पालन करते है और समाज–सम्मत आचरण करते हैं तो हम कह सकते है कि विद्यालय का अनुशासन अच्छा है।

अनुशासन का व्यक्तिगत एवं समाजिक दोनों ही दृष्टियों से बहुत महत्व है। इससे यह प्रश्न उठता है कि वे कौन से सिद्धांत हैं जिनके आधार पर विद्यालय में उत्तम अनुशासन स्थापित किया जा सकता है, जिससे उसके महत्व को प्राप्त किया जा सकें। इस संबंध में किसी निश्चित सिद्धांत का निर्धारण नहीं किया जा सकता, क्योंकि एक विद्यालय की परिस्थितियाँ दूसरे विद्यालय से भिन्न होती है। अतः हमें विद्यालय मे उत्तम अनुशासन स्थापित करने हेतु इस प्रकार कार्य कर सकते हैं–

1. अनुशासन का आधार प्रेम, विश्वास तथा सद्भावना हो।
2. उत्तम अनुशासन सहयोग पर आधारित होना चाहिए।
3. अनुशासन को स्थापित करने के लिए दण्ड का प्रयोग न किया जाए।
4. विद्यालय के सम्पूर्ण वातावरण को सुन्दर एवं सामंजस्यपूर्ण बनाया जाए।

5. विद्यालय में छात्रों एवं अध्यापकों को अपने–अपने कर्त्तव्यों को पूर्ण करने हेतु पर्याप्त स्वतन्त्रता एवं सुविधाएँ प्रदान की जाएँ।

6. विद्यालय में विभिन्न रचनात्मक कार्यों का स्थान दिया जाए।

7. अभिभावकों को पारिवारिक जीवन को सुन्दर व सुखमय बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

8. बालकों को अनुशासन के महत्व के विषय में अवगत कराया जाए।

समय प्रबंधन

विद्यालय में प्रबंधन की प्रक्रिया समय के सापेक्ष चलने वाली प्रक्रिया है। विद्यालय में समय प्रबंध उचित समय–सारणी बनाकर किया जाता है। क्योंकि बिना समय प्रबंधन के विद्यालय के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता ।

विद्यालय समय सारणी

विद्यालय में समय प्रबंधन का काफी महत्वपूर्ण स्थान होता है। किसी भी विद्यालय में अनेक क्रियाएँ चलती है, जिसके अंतर्गत विभिन्न विषयों का शिक्षण कार्य होता है, सहगामी क्रियाओं की व्यवस्था होती है तथा इसी प्रकार के अन्य शैक्षणिक कार्य होते हैं। विद्यालय की सफलता इन विभिन्न क्रियाओं के समुचित संचालन पर निर्भर करती है, इन सब कार्यों को योजना बद्ध रूप से संचालित करने के लिए विद्यालय जो व्यवस्था करते हैं, वही समय सारणी कहलाती है।

समय सारणी से पता चलता है कि विद्यालय में किस दिन, किस समय तथा किस कक्षा के द्वारा, किसके नेतृत्व में कौन–सी क्रिया संचालित होनी है। समय सारणी एक ऐसा दर्पण है, जिसमें विद्यालय के समस्त शैक्षणिक एवं पाठ्य सहगामी कार्यक्रम प्रतिबिम्बित होते हैं।

समय सारणी के महत्व को निम्न बिन्दुओं द्वारा समझ सकते हैं:–

- समय सारणी से विद्यालय के कार्यक्रमों का ज्ञान होता है। इससे पता चलता है कि कौन–सी क्रिया को कितना समय दिया जाता है। जैसे– सहगामी तथा शारीरिक क्रियाएँ, खेल कुद इत्यादि।

- समय सारणी द्वारा विद्यालय के सभी भौतिक एवं मानवीय साधनों का अधिकतम उपयोग किया जा सकता है। समय सारणी के द्वारा सभी कार्य नियमित समय पर कराए जाते हैं। शिक्षकों की जिम्मेदारियों का सही ढंग से बँटवारा होता है, खेल के मैदान, प्रयोगशाला आदि में सभी कक्षाओं को अपने–अपने कार्य करने के लिए सही समय मिलता है। सभी विद्यार्थी हर एक गतिविधि में भाग ले सकते हैं।

- समय–सारणी से छात्रों में नैतिक गुणों का भी विकास होता है। विद्यार्थी समय के महत्व को जानने लगते हैं उनमें नियमितता आती है तथा वे विभिन्न साधनों एवं समय के बीच समन्वय स्थापित करने में सहायता मिलती है तथा शिक्षकों एवं छात्रों को हर समय विभिन्न क्रियाओं में व्यस्त रखा जाता है।

- समय–सारणी से शिक्षक तथा विद्यार्थी दोनों यह समझ जाते हैं कि प्रत्येक विषय का अध्ययन–अध्यापन के लिए कितना समय लगता है। इससे सभी शिक्षकों के कार्य भार में समुचित बँटवारा हो जाता है। बीच–बीच में शिक्षकों को विश्राम का अवसर मिलता रहता है।

इस प्रकार, समय–सारणी के अभाव में किसी विद्यालय को व्यवस्थित रूप से संचालित नहीं किया जा सकता है। समय–सारणी के निर्माण में विशेष सावधानियाँ बरती जानी चाहिए। समय–सारणी को बनाते समय विभागीय नियमों का पालन, विषयों की पाठ्यचर्या, साधनों की उपलब्धता, थकान का ध्यान तथा लचीलापन का ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है। समय–सारणी में किस विषय को कितने कालांश दिए जाएँगे, किन विषयों को अधिक समय दिया जाए तथा उनका शिक्षण का सबसे उचित समय क्या होगा इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए। समय–सारणी कठोर तथा स्थिर नहीं होना चाहिए बल्कि आवश्यकता पड़ने पर परिवर्तन करने की गुंजाइश होनी चाहिए जैसे–अत्यधिक गर्मी एवं ठंड पड़ने पर सरकार द्वारा समय में परिवर्तन कर दिया जाता है।

मानवीय एवं भौतिक साधनों को ध्यान में रखते हुए समय–सारणी का निर्माण किया जाना चाहिए। एक ही प्रकृति के बहुत सारे विषयों को समय सारणी में एक साथ नहीं रखा जाना चाहिए।

समय–सारणी को कई आधारों पर निर्मित किया जा सकता है। उमें कुछ निम्न हैं–

1. विद्यालय की संपूर्ण समय–सारणी
2. कक्षा की संपूर्ण समय–सारणी
3. पाठ्यक्रम के अनुसार समय–सारणी
4. शिक्षक समय–सारणी

विद्यालय की संपूर्ण समय–सारणी :– सामान्यतः, सरकारी और निजी दोनों प्रकार के विद्यालय हैं। इसलिए समय–सारणी विद्यालय के जरूरत के अनुसार बनाई जाती है। विद्यालय की सभी कक्षाओं, सभी शिक्षकों तथा सभी गतिविधियों की जानकारी समय सारणी से प्राप्त की जा सकती है।

कक्षा समय सारणी :– समय–सारणी कक्षा विशेष के लिए होती है। इसमें कक्षा में पढ़ाए जाने वाले प्रत्येक विषय का उल्लेख होता है। खेलकूद तथा अन्य पाठ्यसहगामी क्रियाओं का वर्णन इसमें होता है। जैसे–किस समय किस विषय की कक्षा होगी कौन–सा शिक्षक उस विषय को पढ़ाएगा। इस समय–सारणी में पढ़ाए जाने वाले प्रत्येक विषय के साथ शिक्षक का नाम लिखा रहता है। प्रत्येक कक्षा के लिए समय सारणी बनाई जाती है। जिसमें कक्षा में होने वाले सभी गतिविधियों का उल्लेख होता है।

पाठ्यक्रम के अनुसार :– सभी विद्यालयों का पाठ्यक्रम एक जैसा नहीं होता है। कुछ विद्यालय केन्द्रीय बोर्ड से तो कुछ राज्य सरकार से संबंधित होते हैं। अतः विद्यालय में पाठ्यक्रम के विषयानुसार, समय–सारणी को बनाया जाता है।

शिक्षक समय–सारणी :– प्रधानाध्यापक को इस प्रकार के समय सारणी से शिक्षकों के पूरे दैनिक कार्यों का पता चलता है। इसमें शिक्षकों के नामों के सामने उनका समय सारणी होता है। इसकी एक प्रति स्टाफ रूम में होती है और दूसरी प्रति प्रधानाध्यापक के कार्यालय में होती है। इससे शिक्षक के कार्यभार, की जानकारी होती है, उन्हें प्रतिदिन कितने कालांश तथा सप्ताह में कुल कितने घंटे पढ़ाने हैं।

शैक्षिक कार्यक्रमों के आयोजन का कैलेण्डर

कई विद्यालय शैक्षणिक कार्यक्रमों को आयोजन से हिचकिचाते हैं तथा वे ऐसे कार्यक्रमों में कम रूचि लेते हैं। इस तरह के विद्यालयों को क्रियाशील बनाने के लिए शैक्षणिक कार्यक्रमों के आयोजन की समय आधारित रूप रेखा बनाना आवश्यक प्रतीत होता है। इसके साथ ही, राज्य सरकार और शिक्षा विभाग के निर्देशों के आधार पर शैक्षणिक कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार की जानी चाहिए। इन कार्यक्रम की रूपरेखा बनाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि कार्यक्रम किस तिथि को आयोजित किया जाना है और क्या–क्या किया जाना है। विद्यालय परिवेश व प्रकृति के अनुकूल कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए।

वार्षिक कैलेण्डर – वार्षिक कैलेण्डर में पूरे वर्ष भर के लिए निश्चित मुख्य क्रियाओं, शैक्षणिक और गैर शैक्षणिक कार्यों का उल्लेख रहता है। वार्षिक कैलेण्डर में सभी छुट्टियाँ, कोई पर्व (जैसे सरहुल, लोहड़ी) राष्ट्रीय छुट्टी में स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस, गाँधी जयंती आते हैं। तथा ग्रीष्मकालीन, शीतकालीन अवकाश, दशहरा या छठ पर्व की छुट्टी होती है।

आपदा प्रबंधन

बिहार एक ऐसा राज्य है जहाँ आपदाओं का संकट हमेशा बना रहता है। तीव्र भूकम्प वाले जोन होने के कारण भी यहाँ आपदा की संभावना बनी रहती है। इसका उदाहरण 2015 अप्रैल–मई महीने में आए भूकम्प का है। इसके साथ ही, राज्य में बाढ़ के कारण भी आपदा आती है जिसके कारण बहुत बड़ा क्षेत्र जलमग्न हो जाता है। आपदाओं को दो मुख्य कोटियों मे वर्गीकृत किया जाता है– प्राकृतिक एवं मानवजनित। प्राकृतिक आपदाएँ हैं– भूकंप, सुनामी, ज्वालामुखी बाढ़, अकाल, भूस्खलन इत्यादि। वहीं दूसरी ओर मानवजनित आपदाओं के अंतर्गत औद्योगिक दुर्घटनाएँ, रेल या सड़क दुर्घटना, बांध का टूटना, जहरीली गैस का रिसाव, युद्ध तथा आगजनी इत्यादि दुर्घटनाएं आती है।

आपदाओं के कारणों के स्थान पर आपदाओं के प्रबंधन को लेकर गम्भीर दृष्टिकोण अपनाया जाए और इसके प्रति सुरक्षा शिक्षा को प्रोत्साहित किया जाए। स्कूली शिक्षा के क्रम मे ही इन आपदाओं के कारण, स्वरूप, प्रभाव एवं इससे बचने की जानकारी बेहतर तरीके से दिए जाएं तो भविष्य में आने वाली चुनौतियों का सामना बच्चे बेहतर तरीके से कर पाएंगे ।

इसी लिए कहा गया है ''आपदा नहीं है भारी, अगर पूरी हो तैयारी''। अतः विद्यालयों में समय–समय पर मॉक ड्रिल करवाते रहना चाहिए। तथा इसमें समुदाय के

लोगों को भी आमंत्रित किया जाना चाहिए। विद्यालय में आपदा प्रबंधन के दृष्टिकोण से सुरक्षा शिक्षा के अंतर्गत चार प्रमुख पहलुओं को रेखांकित किया जाना आवश्यक है जिन्हें पी. आर. आर. पी (PRRP) भी कहा जाता है।

1. P- Preparedness (तैयारी)
2. R- Response (अनुक्रिया)
3. R- Recovery (पुनः प्राप्ति, आरोग्य लाभ)
4. P- Prevention (निवारण, रोक)

पी.आर.आर.पी का उचित प्रयोग कर आपदा के समय होने वाली दुष्प्रभावों से बच सकते हैं। इसलिए इसके महत्व को देखते हुए आपदा प्रबंधन का विद्यालयी पाठ्यचर्या में भी शामिल किया गया है ताकि बच्चों में उनके प्रति सुरक्षात्मक समझ विकसित हो सके।

विद्यालयी अभिलेखों की समझ

परिचय

विद्यालयी अभिलेख विद्यालय की वह धरोहर है जिसके द्वारा हम विद्यालय के अतीत की जानकारी, वर्तमान स्थिति का आकलन तथा भविष्य के लिए कार्य–योजना बना सकते हैं। किसी भी विद्यालय के लिए इन अभिलेखों की भूमिका काफी महत्त्वपूर्ण होती है क्योंकि ये अभिलेख विद्यालयी प्रक्रियाओं को अधिक प्रभावी व व्यवस्थित करने का आधार प्रदान करते हैं। विद्यालय में कब, क्या एवं कैसा कार्य हुआ? विद्यालय की पूर्व स्थिति एवं वर्तमान स्थिति में क्या फर्क है? विद्यालय के स्वरूप को और बेहतर कैसे किया जा सकता है? इत्यादि जानकारी इन अभिलेखों से प्राप्त होती है। विद्यालय की भौतिक स्थिति, बच्चों का विवरण, शैक्षणिक क्रियाकलापों से संबंधित अभिलेखों के द्वारा ही विद्यालयी व्यवस्था एवं उसकी स्थिति को समझने में मदद मिलती है। इस इकाई के अध्ययन से इन अभिलेखों की आवश्यकता एवं संकलन की समझ तो होगी ही, विभिन्न प्रकार के अभिलेखों के संबंध में विस्तार से जान पाएंगे। इसकी आवश्यकता तथा इन्हें बनाने की प्रक्रिया की भी समझ शिक्षकों को होगी। इस प्रकार शिक्षकों में इन पंजियों के संधारण तकनीक की समझ के साथ–साथ पंजियों के उपयोग की क्षमता भी विकसित होगी। शिक्षक एवं विद्यालय संगठन के लिए यह आवश्यक है कि विद्यालय संसाधन एवं विद्यार्थियों की प्रगति आदि से संबंधित सभी ऐतिहासिक अभिलेख विद्यालय में अच्छी तरह संधारित हो। शैक्षणिक एवं सह–शैक्षणिक गतिविधियों का योजनानुरूप संचालन करने में भी ये अभिलेख काफी सहायक होते हैं। अतएव यह आवश्यक हो जाता है कि प्रत्येक शिक्षक को इन अभिलेखों की जानकारी हो, वे इसे अद्यतन करने की तकनीक जानते हों तथा इसके उचित रख रखाव की भी समझ रखते हों।

सीखने के उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से आप :

- विद्यालय के लिए वांछित एवं अनिवार्य सभी अभिलेखों की समझ बना पाएंगे।
- अभिलेखों की आवश्यकता एवं उपयोगिता को समझ पाएंगे।
- अभिलेखों के रखरखाव की आवश्यकता एवं तकनीक से अवगत होंगे।
- अभिलेखों के निर्माण की कुशलता विकसित कर पाएंगे।
- पूर्व अभिलेखों के आधार पर विद्यालय की कार्ययोजना बनाने में सक्षम हो सकेंगे।

विद्यालयी अभिलेख

विद्यालयी अभिलेख विद्यालय के ऐतिहासिक स्रोत के रूप में हैं, जो संबंधित समाज में शिक्षा के विकास को आँकने में मदद करते हैं। एक प्रकार से, यह विद्यालय की स्मृति है जिसके माध्यम से तत्कालीन परंपराओं, स्थिति तथा गतिविधियों को समझने मे मदद मिलती है। इसकी आवश्यकता विद्यालय संचालन के क्रम में हमेशा पड़ती है। विद्यालय में उपलब्ध अभिलेखों के माध्यम से विद्यालय के विकास क्रम का भी पता चलता है जिसके आधार पर पूर्व स्थिति से सीख लेकर विद्यालय को बेहतर स्वरूप देने एवं भविष्य की कार्य–योजना बनाने में भी मदद मिलती है।

विद्यालय का एक सामुदायिक संस्थागत चरित्र होता है। यह अभिभावकों, विद्यालय शिक्षा समिति, शिक्षा विभाग, समुदाय एवं विद्यार्थियों के प्रति उत्तरदायी होता है। विद्यालयी अभिलेखों के माध्यम से इन सभी घटकों की विद्यालय में भूमिका को भी समझा जा सकता है। ये अभिलेख विद्यालयी गतिविधियों में पारदर्शिता लाने के साथ–साथ शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के लिए भी काफी सहयोगी साबित होते हैं। विद्यालयी अभिलेख उपलब्धियों व समुचित प्रगति की सूचना का एक मुख्य आधार होते हैं।

विभिन्न अभिलेखों की आवश्यकता

प्रत्येक विद्यालय के लिए यह आवश्यक होता है कि वह अपने पोषक क्षेत्र के सभी बच्चों का ठीक एवं पूर्ण विवरण तैयार करे। साथ–ही, विद्यालय में नामांकित बच्चों के संबंध में भी पूरी सूचना संधारित करे तथा इनकी प्रगति से संबंधित सूचना समय–समय पर सभी अभिभावकों को प्रेषित करे। इसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि बच्चों से संबंधित तथ्यों/आंकड़ों का व्यवस्थित तरीके से अभिलेखन किया जाए।

राज्य के कई विभागों द्वारा समय–समय पर विद्यालय से विभिन्न सूचनाएं मांगी जाती हैं। ये सूचनाएं वास्तविक तथ्य एवं आंकड़ों पर आधारित होने चाहिए, क्योंकि विभाग द्वारा उनका उपयोग भविष्य की योजनाओं को बनाने तथा वित्तीय प्रबंधन में भी किया जाता है।

इन अभिलेखों से विद्यार्थी की प्रगति का तो आकलन होता ही है, शैक्षणिक कार्यक्रमों के गुण–दोषों का भी पता चल सकता है। अगर सुविधा हो तो इन अभिलेखों को कंम्प्यूटरीकृत कराकर इसे Hard copy एवं Soft copy दोनों रूपों में रखा जाए तथा Hard copy को संचिका में कूटबद्ध किया जाय ताकि इसे आसानी से अद्यतन किया जा सके एवं रख–रखाव में भी असुविधा न हो। क्योंकि इन अभिलेखों को कम्प्यूटरीकृत कर अलग–अलग फाइल के रूप में इसे संधारित करने से ससमय उन्हें खोजना तथा दूसरी जगह भेजना आसान हो जाता है। साथ–ही इसे ज्यादा समय तक सुरक्षित करने हेतु Hard disk में भी रखा जा सकता है जो आवश्यक भी है ताकि कम्प्यूटर में गड़बड़ी होने पर भी इसका पुनः उपयोग किया जा सके है। कम्प्यूटर की सुविधा न होने पर इसका हस्तलिखित संधारण किया जाना चाहिए।

विद्यालय एवं विद्यार्थी की किसी विशेष आवश्यकता के आकलन के लिए भी अभिलेखन आवश्यक है। इन अभिलेखों के आधार पर ही विद्यार्थियों की प्रगति की सूचना अभिभावकों तक भेजी जा सकती है। सूचनाएँ ही अभिभावकों के साथ संवाद स्थापित करने में भी हमारी मदद करती है। चूकि विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास का अधिकांश जिम्मा विद्यालय

पर ही है अतएव प्रत्येक छात्र एवं छात्रा के नियमित विकास एवं अभिवृद्धि का अभिलेखन आवश्यक है। इस प्रकार, विद्यालय, बच्चों एवं शिक्षक सभी के विकास के लिए अभिलेखन आवश्यक है क्योंकि यह हमारे द्वारा पूर्व एवं वर्तमान में संपन्न किए गए कार्यों एवं उसके प्रतिफल को दिखाता है जिससे भविष्य की कार्ययोजना बनाने में भी मदद मिलती है।

विद्यालय के हर कार्य में आंकड़ों की आवश्यकता पड़ती है। कई बार ये पूर्व के अभिलेख/आंकड़े तैयार रूप में होते हैं और कई बार इन अभिलेखों/आंकड़ों को एकत्रित और व्यवस्थित करना होता है। आंकड़ों को कैसे एकत्रित एवं व्यवस्थित किया जाए, इस संदर्भ में एक गतिविधि आगे दी जा रही है। आप अपने विद्यालय के संदर्भ में इसके प्रयोग से विभिन्न प्रकार के आंकड़ों, अभिलेखों तथा सामग्रियों को इकट्ठा करने के लिए योजना बना सकते हैं।

विद्यालय के अभिलेखों और सामग्रियों का संकलन एवं रख–रखाव

किसी भी संस्थान के लिए यह आवश्यक होता है कि वह वहाँ उपलब्ध अभिलेखों का संकलन कर उचित रख–रखाव सुनिश्चित करें क्योंकि उचित रख–रखाव के अभाव में दुर्लभ चीजें/अभिलेख भी धीरे–धीरे समाप्त हो जाते हैं। विद्यालय में भी कई प्रकार के अभिलेख उपलब्ध होते हैं जिनकी सही समझ बनाकर अच्छी तरह रखने का कौशल शिक्षकों में होना आवश्यक है। आइए विद्यालय में उपलब्ध सभी सामग्रियों/अभिलेखों के रख रखाव के बारे में विचार करें। आप अपने विद्यालय में उपलब्ध सामग्रियों एवं रखने के स्थान के आधार पर नीचे की तालिका को भरें।

तालिका

क्रम संख्या	वस्तु का नाम	भौतिक स्थिति	पूर्व रखरखाव का स्थान	आपके विचार से रखे जाने का स्थान
1	पाठ्यपुस्तकें	खराब	कमरे का फर्श	बुक रैक के अंदर
2				
3				
4				
5				
6				
7				
8				
9				
10				

आप पाएंगे कि विद्यालय में या तो सारी चीजें निर्धारित जगह पर अच्छी तरह रखी गई हैं या बिना किसी योजना के जहाँ–तहाँ। जिस विद्यालय में ये सामग्रियां योजनानुसार रखी गई है उपयोग के बाद पुनः अपने निर्धारित जगह पर रखी जाती है, वे अच्छी स्थिति में मिलेंगी परंतु, जहाँ ये अभिलेख जैसे–तैसे रखा जाता है वहाँ कूड़े के ढेर की तरह पड़ी रहती है। शिक्षक विभाग को जवाब देने के भय से न तो सही समय पर इसका उपयोग ही कर पाते हैं और नहीं उचित रखरखाव। परिणामस्वरूप धीरे–धीरे ये समाप्त हो जाते हैं।

विद्यालय में उपलब्ध अभिलेखों की जरूरत वहाँ से कभी–भी जुड़े व्यक्ति को किसी भी समय पड़ सकती है जबकि इसके सही रखरखाव के अभाव में ये खत्म हो जाऐंगे तथा जहाँ–तहाँ रखने से इन्हें ढूँढने में भी कठिनाई हो सकती है। अनावश्यक अभिलेखों को इकट्ठा कर रखना भी उचित नहीं है। अतएव आवश्यकता है कि हममें ऐसी दृष्टि विकसित हो कि हम विद्यालय से जुड़े विभिन्न अभिलेखों को श्रेणीबद्ध कर लें एवं उसका सही रख–रखाव करें।

विद्यालयी अभिलेखों को सामान्यतः निम्नांकित भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं।

विद्यालय अभिलेखों के प्रकार	
शामिल अभिलेख	**अभिलेखों के प्रकार**
सामान्य रजिस्टर, लॉग बुक, बैठक रजिस्टर, आगंतुक पुस्तिका, स्टॉफ मीटिंग रजिस्टर, जनसंपर्क, अभिलेख, विद्यालय प्रगति–पत्रक, आगत निर्गत पंजी	सामान्य अभिलेख
सेवा पुस्तिका, उपस्थिति पंजी, अवकाश पंजी, शिक्षक डायरी, गोपनीय अभिलेख, प्रगति पत्र	अध्यापक से संबंधित अभिलेख
उपस्थिति पंजी, विद्यालय परित्याग पंजी, नामांकन पंजी, पोशाक वितरण पंजी प्रगति–पत्रक, प्रगति अभिलेख रजिस्टर, बाल पंजी, छात्रवृत्ति वितरण पंजी	विद्यार्थियों से संबंधित अभिलेख
स्टॉक बुक, प्रयोगशाला पंजी, पुस्तकालय स्टॉक एवं वितरण पंजी, खेलकूद सामग्री स्टॉक एवं वितरण पंजी	उपकरण संबंधी अभिलेख
विद्यार्थियों का नामांकन, बालक बालिकाओं की संख्या (आयु, वर्ग एवं कोटिवार), भौतिक सुविधाओं का विवरण, छात्र शिक्षक अनुपात, अनामांकित बच्चों एवं पोषक क्षेत्र के बच्चों की संख्या	आँकड़ा संबंधी अभिलेख
रोकड़ पंजी, खाता वही, आकस्मिक व्यय पंजी, मध्याह्न भोजन उपयोगिता पंजी, चेक आगत निर्गत पंजी, मदवार व्यय विवरणी	वित्तीय अभिलेख

अभिलेखों का वर्गीकरण करना तथा उचित रखरखाव करना विद्यालय हित में आवश्यक है। किस प्रकार के अभिलेख में कैसी सूचनाओं का संधारण किया जाए, उसका रखरखाव कैसे किया जाए, इसकी जानकारी रखना आवश्यक है। आज जनसूचना अधिकार अधिनियम–2005 द्वारा सबको सूचना का अधिकार प्राप्त है। कोई भी व्यक्ति विद्यालय, शिक्षक एवं छात्रों से संबंधित सूचनाओं की मांग कर सकता है। अतएव वर्षवार एवं कोटिवार सूचनाओं को संधारित कर रखना अत्यावश्यक प्रतीत होता है ताकि ससमय सूचनाएँ उपलब्ध करवाई जा सके। इनके उचित रखरखाव की भी व्यवस्था होनी चाहिए। साथ–ही, एक वैसी पंजी भी संधारित होनी चाहिए जिससे तुरंत पता लगाया जा सके कि अमूक वर्ष का अभिलेख कहाँ रखा है।

विद्यालय में उपलब्ध अभिलेखों की सूची बनाइए एवं वर्गीकृत कीजिए		
अभिलेख का नाम	**अभिलेख की श्रेणी**	**कहाँ रखा जाना उपयुक्त होगा**

यह भी ध्यान रखना होगा कि जिन अभिलेखों का उपयोग बार–बार होता है उसके जिल्द को मजबूत कर ठीक से रखा जाए ताकि इसे ज्यादा दिनों तक सुरक्षित रखा जा सके। विद्यालय अभिलेख का संधारण एवं रखरखाव अत्यावश्यक तो है परंतु हमें इसकी भी योजना बनानी पड़ेगी कि जिन अभिलेखों का उपयोग हमें इस वर्ष करना है उसे कहाँ रखें तथा पुराने अभिलेख जिनका उपयोग कभी–कभार होता है उन्हें कहाँ रखें। कई बार अत्यावश्यक अभिलेख ढूँढने से भी नहीं मिलते क्योंकि कई वैसे अभिलेख जिनकी बराबर आवश्यकता पड़ती है वे आवश्यक कागजों के बीच दबे रहते हैं। अतएव आवश्यक है कि रखरखाव के अंतर्गत यह ध्यान रखा जाए कि किन अभिलेखों को कैसे एवं किस क्रम में रखना है। अभिलेखों के रखरखाव एवं संधारण का दायित्व सामान्यतः प्रधानाध्यापक पर होता है। परंतु बेहतर रखरखाव के लिए आवश्यक है कि वे विद्यालय में कार्यरत अन्य लोगों का भी सहयोग लें।

अभिलेखों के रखरखाव में निम्नांकित बातों का ध्यान रखना चाहिए :–

- विद्यालय के सभी अभिलेखों की सूची तैयार किया जाना चाहिए ताकि यह ज्ञात हो सके कि विद्यालय में कितने प्रकार के अभिलेख रखे गए हैं। इससे अभिलेख व्यवस्था क्रमबद्ध रहती है।
- प्रत्येक रजिस्टर के आवरण पर निम्न बातें स्पष्ट रूप से लिखी रहनी चाहिए :–

  (क) विद्यालय का नाम (ख) रजिस्टर का नाम
  (ग) रजिस्टर की क्रम संख्या (घ) कुल पृष्ठ संख्या
  (ङ) रजिस्टर की शुरूआत एवं समाप्ति तिथि
- सभी रजिस्टर एवं फाइलें साफ–सुथरी रहनी चाहिए।

- प्रविष्टियों में कॉंट–छॉंट एवं उसके ऊपर दोबारा लिखने जैसे कार्य नहीं किए जाने चाहिए। यदि ऐसा करना आवश्यक हो तो जो व्यक्ति कॉंट–छॉंट कर रहा हो उसे काटे हुए स्थान पर अपना हस्ताक्षर कर देना चाहिए।
- सभी प्रविष्टियाँ स्याही से करनी चाहिए।
- पिछले साल के रजिस्टर में अगर कुछ पृष्ठ खाली रह गए हों तो नया रजिस्टर शुरू नहीं करना चाहिए।
- रजिस्टर में बनाए गए सभी खानों को भरना चाहिए कोई भी खाना खाली न रहे।
- सभी अभिलेख शुद्ध, वैध, विश्वसनीय तथा पूर्ण होने चाहिए।
- सभी अभिलेख कार्यालय की तालाबंद अलमारी या बक्से/कमरे में सुरक्षित रखे जाने चाहिए।
- बिना प्रधानाध्यापक की अनुमति के किसी को भी इसे विद्यालय से बाहर ले जाने की अनुमति नहीं मिलनी चाहिए।

वास्तव में, यह विद्यालयी अभिलेख विद्यालय के लिए अत्यंत उपयोगी संसाधन हैं। अतएव इनका रखरखाव अच्छी तरह एवं सावधानी पूर्वक होना चाहिए।

विभिन्न अभिलेखों (Record) का अध्ययन

विद्यालय में विभिन्न प्रकार के अभिलेख संधारित कर रखे जाते हैं जिनका संबंध विद्यालय संबंधी सूचना, अध्यापक एवं छात्रों से संबंधित सूचना, विद्यार्थियों की प्रगति से संबंधित आँकड़े एवं तथ्यों और वित्तीय अभिलेखों इत्यादि से होता है। इनका महत्त्व एवं उपयोगिता काफी अधिक है क्योंकि इनके माध्यम से ही विद्यालय के भौतिक स्वरूप, शैक्षणिक गतिविधियाँ, सह–शैक्षणिक क्रिया कलाप एवं छात्रों के प्रगति का स्तर इत्यादि का पता चलता है।

विभिन्न प्रकार के निम्नांकित अभिलेख काफी महत्वपूर्ण होते हैं:–

विद्यालय वार्षिक विवरणी

इस विवरणी में एक पूरे शैक्षणिक सत्र में किए गए शैक्षणिक एवं वित्तीय कार्यों का लेखा–जोखा होता है। प्रथम भाग में इसमें विद्यालय संबंधी सारी सूचनायें यथा भवन की स्थिति, भूमि की उपलब्धता, शौचालय, पेयजल, किचन शेड इत्यादि अर्थात् भौतिक सुविधाओं की जानकारी दी जाती है। अगले भाग में छात्रों से संबंधी आँकड़े जिसमें कुल छात्र संख्या, नया नामांकन, परीक्षा में शामिल, उत्तीर्ण, रीपिटर्स इत्यादि का विवरण होता है। कुल शैक्षणिक कार्य दिवस, संपूर्ण वित्तीय वर्ष में विद्यालय को प्राप्त सभी तरह की राशि एवं उपयोग की गई राशि का विवरण भी इसी में दर्ज किया जाता है। यह वह अभिलेख है जिसके आधार पर विद्यालय की भौतिक स्थिति, विद्यार्थियों की सामाजिक तथा शैक्षणिक स्थिति एवं वित्तीय आय–व्यय का आकलन किया जा सकता है। इसे प्रतिवर्ष अद्यतन किया जाता है। यह कार्य शिक्षकों की सहायता से प्रधानाध्यापक करते हैं।

नामांकन पंजी

यह एक अधिकारिक अभिलेख है जो किसी भी विद्यार्थी का विद्यालय में नामांकन की पुष्टि करता है। इसका प्रयोग विद्यालय में पहली बार नामांकन लेने वाले बच्चों के विवरण को दर्ज करने के किया जाता है। नामांकन का लेखा जोखा रखने के साथ–साथ इसका उपयोग कई कार्यों में किया जाता है क्योंकि इसमें सभी विद्यार्थियों के पारिवारिक विवरण के साथ जन्म तिथि, पता, जाति, धर्म, पूर्ववर्ती विद्यालय का नाम, परिवार की शैक्षणिक स्थिति इत्यादि का विस्तृत उल्लेख भी होता है। जाति, धर्म एवं पते के माध्यम से विद्यार्थी की सामाजिक पृष्ठभूमि तथा सामुदायिक परिवेश का पता भी लगाया जा सकता है। यदि किसी विद्यार्थी को किसी भी कार्य के लिए जन्मतिथि प्रमाण पत्र या जाति प्रमाण–पत्र की आवश्यकता होती है तो यह अभिलेख उस प्रमाण पत्र का मुख्य आधार हो सकता है। इस विवरणी का एक शैक्षणिक महत्त्व भी है। विवरणी के विश्लेषण से एक शिक्षक अपनी कक्षागत शिक्षण को समावेशी एवं संदर्भजन्य बनाकर कक्षा संचालन कर सकता है। कुशल शैक्षणिक प्रबंधन के लिए नामांकन पंजी में दर्ज प्रत्येक विद्यार्थी के विवरणी का विश्लेषण के आधार पर कई प्रकार का उपयोग किया जा सकता है। इसके उचित रखरखाव की भी आवश्यकता पड़ती है क्योंकि विद्यार्थी के प्रमाण पत्र की सत्यता के प्रमाणन में इसकी आवश्यकता पड़ती है।

नामांकन पंजी का प्रारूप

1	2	3	4	5
क्रम संख्या	**नामांकन तिथि**	**छात्र/छात्रा का नाम**	**माता का नाम**	**पिता का नाम**

6	7	8	9	10
जाति	**धर्म**	**जन्म तिथि**	**अध्ययनरत विद्यालय का नाम**	**कक्षा**

11	12	13	14	15
किस कक्षा में नामांकन हुआ	स्थायी पता	स्थानीय अभिभावक का नाम एवं पता	अभिभावक का हस्ताक्षर	प्रधानाध्यापक का हस्ताक्षर

पाठ्यपुस्तक पंजी

इस पंजी में सर्वप्रथम विभिन्न कक्षाओं में पढाए जाने वाले पुस्तकों के नाम अंकित किए जाते हैं। तदुपरांत किस विषय की कितनी पाठ्यपुस्तक कहाँ से प्राप्त हुई इसका विवरण निम्नवत् प्रपत्र में अंकित किया जाता है।

पुस्तक भंडारण पंजी प्रपत्र

क्रम संख्या	दिनांक	पुस्तक का नाम	कक्षा	प्रकाशक का नाम	प्राप्ति का स्रोत	कुल पुस्तकों की संख्या	प्राप्तकर्ता का हस्ताक्षर

इसी प्रकार पुस्तकों के भंडारण तथा भंडार पंजी में इसको संधारित करने के उपरांत पुस्तकों को विद्यार्थियों के बीच आदान–प्रदान किया जाता है जिसका संधारण निम्नवत् पंजी में किया जाता है।

पाठ्यपुस्तक आदान–प्रदान पंजी

विद्यालय का नाम –				वर्ष –			वर्ग – I
क्रम संख्या	छात्र का नाम	माता का नाम	पिता का नाम	पुस्तक का नाम			प्राप्तकर्ता का हस्ताक्षर
				अंकुर	गणित	Blossam	
1.	सुमित कुमार	सीमा देवी	रोहन राम	☐	☐	☐	सुमित कुमार

उपर्युक्त पंजियों का प्रारूप दिया गया है। इस तरह से विद्यालय में आवश्यकता पड़ने पर स्वयं से अन्य पंजी का निर्माण आप कर सकते हैं। लेकिन यह भी ध्यान रखना पड़ेगा कि

यदि कोई इस तरह का विभागीय पंजी–प्रपत्र विद्यालय में है या विभागीय विहित प्रपत्र प्राप्त होता है, तो उसी के अनुसार पंजी का संधारण किया जाना आवश्यक है। आप विद्यालय जाकर इन पंजियों का अवलोकन करें तथा प्रधानाध्यापक की अनुमति से सभी पंजियों का विहित प्रपत्र प्राप्त कर विश्लेषण करें कि वांछित सूचनायें (आँकड़े) पूर्ण रूप से भरा जा सकता है या कुछ छूट रहा है।

मध्याह्न भोजन से संबंधित पंजियाँ

आप जानते हैं कि सरकारी विद्यालयों में पका पकाया भोजन बच्चों को देने की व्यवस्था है। यह भोजन विद्यालय शिक्षा समिति की देख–रेख में तैयार किया जाता है ताकि पोषक भोजन बच्चों को प्राप्त हो सके। इसके अंतर्गत मध्याह्न भोजन से संबंधित कई पंजियों का संधारण विद्यालय में किया जाता है। मध्याह्न भोजन उपयोगिता पंजी, खाद्यान्न भंडारण पंजी, रसोइया मानदेय भुगतान पंजी, चेक बुक आगत–निर्गत पंजी तथा रोकड़ पंजी इत्यादि का विद्यार्थियों की संख्यानुसार प्रतिदिन प्रदत्त सामग्रियों एवं राशि का संधारण मध्याह्न भोजन उपयोगिता पंजी में किया जाता है। यह कार्य प्रतिदिन होता है। मध्याह्न भोजन पकाने हेतु कक्षा 1 से 5 तथा कक्षा 6 से 8 के लिए अलग–अलग राशि निर्धारित की गई है, जिसका संधारण इस पंजी में किया जाता है। मध्याह्न भोजन बनाने के लिए हर एक विद्यालय में बच्चों की संख्यानुसार रसोइयों की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त जिसके लिए उन्हें मानदेय देने का प्रावधान है। यह मानदेय रसोइया मानदेय भुगतान पंजी में संधारित किया जाता है। मध्याह्न भोजन हेतु अलग से चेक आगत एवं निर्गत पंजी का भी संधारण किया जाता है। इस मद में व्यय हेतु विद्यालय शिक्षा समिति के सचिव एवं प्रधानाध्यापक के संयुक्त हस्ताक्षर से बैंक खातों का संचालन किया जाता है, जिसके पास बुक का अद्यतीकरण भी प्रति माह करवाना आवश्यक है। सभी पंजियाँ ससमय संधारित की जाए इसकी प्रमुख जवाबदेही प्रधानाध्यापक की है, परंतु इस कार्य में विद्यालय शिक्षा समिति के सदस्यों के सहयोग की भी अपेक्षा रहती है।

कुछ शहरी क्षेत्रों में विधिवत रूप से चयनित गैरसरकारी संगठनों द्वारा पका–पकाया भोजन विद्यालयों को उपलब्ध कराया जाता है। इसके लिए सभी विद्यालयों से छात्र संख्या प्राप्त कर उसके अनुसार भोजन उपलब्ध कराने की व्यवस्था है। प्रतिदिन उपस्थित छात्रों की संख्या एक अलग पंजी में संधारित की जाती है तथा माह के अंत में उसे गैरसरकारी संगठन को उपलब्ध करा दिया जाता है, जिसके आधार पर उनके विपत्र का भुगतान होता है।

मध्याह्न भोजन उपयोगिता पंजी का प्रारूप

विद्यालय का नाम .... प्रखंड.................. जिला............

माह का नाम .... वर्ष.......................

प्राप्त राशि .... प्राप्त खाद्यान्न ....

1	2	3	4	5
दिनों की संख्या	दिनांक	उपस्थित छात्र संख्या	खपत चावल की मात्रा	अवशेष चावल की मात्रा

6		7	8		9		10		
दाल		मसाला/नमक	सब्जी		तेल		जलावन		
मात्रा	राशि	मात्रा	राशि	मात्रा	राशि	मात्रा	राशि	मात्रा	राशि

11	12	13	14
कुल व्यय	रसोइया मानदेय की राशि	कुल व्यय	अवशेष राशि

स्थानांतरण प्रमाण पत्र पंजी

यह एक ऐसी पंजी है जिसमें स्थानांतरण प्रमाण पत्र प्राप्त छात्रों का विवरण दर्ज होता है। स्थानांतरण प्रमाण पत्र अभिलेख दो भागों में बाँट सकते हैं। एक भाग में जो विद्यार्थी अपने विद्यालय से स्थानान्तरित होकर दूसरे विद्यालय में जाते हैं उन विद्यार्थियों का विवरण दर्ज किया जाता है। उदाहरण के लिए यदि आपके विद्यालय से किसी विद्यार्थी ने कक्षा V की पढ़ाई पूरी होने पर दूसरे विद्यालय में प्रवेश के लिए स्थानांतरण प्रमाण–पत्र मांगा तो इसका विवरण उक्त भाग में दर्ज होगा। स्थानांतरण प्रमाण–पत्र पंजी के दूसरे भाग में किसी अन्य विद्यालय से आकर आपके विद्यालय में प्रविष्ट होने वाले विद्यार्थियों के स्थानांतरण प्रमाण–पत्र का विवरण दर्ज होगा। जैसे मान लीजिए कक्षा VI में किसी दूसरे

विद्यालय से आकर एक विद्यार्थी ने आपके विद्यालय में प्रवेश प्राप्त किया। किसी शैक्षणिक वर्ष में कितने विद्यार्थी ने विद्यालय में नामांकन लिया और कितने बच्चों ने विद्यालय से स्थानांतरण प्रमाण पत्र लिया, इसका अभिलेखन इस पंजी का मुख्य उद्देश्य है। विद्यालय का सत्र पूरा होने पर अगले विद्यालय में जाने हेतु बच्चों को स्थानांतरण प्रमाण पत्र दिया जाता है। विद्यालय की पढ़ाई समाप्त हो जाने के पहले भी बच्चों को अपने अभिभावक के साथ अन्यत्र जाने की स्थिति में अभिभावक के आवेदन देने पर स्थानांतरण प्रमाण पत्र प्रधानाध्यापक द्वारा निर्गत किया जाता है। यह दो शैक्षणिक संस्थाओं के मध्य विद्यार्थी को लेकर संपर्क का माध्यम है। यह प्रमाण पत्र दो प्रतियों में तैयार होता है। एक प्रति को भरने व हस्ताक्षर करने के बाद विद्यार्थी को सौंप दी जाती है, दूसरी प्रति विद्यालय में संबंधित संचिका में दर्ज करने के उपरांत रख ली जाती है। स्थानांतरण प्रमाण पत्र के बिना अगले विद्यालय में नामांकन में कठिनाई होती है। अतः यह काफी महत्वपूर्ण अभिलेख है।

विद्यालय स्थानांतरण प्रमाण पत्र का प्रारूप

शिक्षा विभाग
बिहार सरकार

प्रमाण पत्र का क्रमांक

विद्यालय कोड					**जिला कोड**			**प्रखण्ड कोड**	

फोटो (प्रधानाध्यापक द्वारा अभिप्रमाणित विद्यालय के मोहर सहित)

विद्यालय का नाम ....

1. विद्यार्थी का नामः—
2. माता का नामः—
3. पिता का नामः—
4. स्थाई पता (ग्राम, थाना और जिला):—
5. प्रवेश तिथिः—
6. प्रवेश पंजी की क्रम संख्याः—
7. प्रवेश पंजी में अंकित जन्म तिथिः— अंक में

दिवस		माह		वर्ष			

शब्दों में .... दिवस / ...... माह / .... वर्ष

8. विद्यालय परित्याग के पूर्व अध्ययनरत कक्षा का नामः—
9. वर्तमान शैक्षणिक सत्र में वर्ग दिवसों की कुल संख्याः—
10. वर्तमान शैक्षणिक सत्र में कुल उपस्थितिः—
11. विद्यालय परित्याग करने की तिथिः—
12. आचरणः—

दिनांक
एवं मोहर

प्रधानाध्यापक का हस्ताक्षर

यहाँ स्थानांतरण प्रमाण पत्र का प्रारूप अर्थात नमूना दिया गया है। विद्यालय में विहित स्थानांतरण प्रमाण पत्र में ही विद्यार्थी का स्थानांतरण संबंधी प्रक्रिया पूरा करना चाहिए। आप विद्यालय जाकर स्थानांतरण प्रमाण पत्र पंजी एवं स्थानांतरण प्रमाण पत्र का अवलोकन करेंगे।

उपस्थिति से संबंधित पंजियाँ

सामान्यतः उपस्थिति पंजियाँ दो प्रकार की होती हैं :–

1. छात्र उपस्थिति पंजी
2. शिक्षक उपस्थिति पंजी

1. **छात्र उपस्थिति पंजी** – विद्यालय में छात्र/छात्राओं के नामांकन के समय उनका नाम नामांकन पंजी में दर्ज होता है। तत्पश्चात उनकी दैनिक उपस्थिति के लिए एक पंजी में उनका नाम अंकित किया जाता है। इसके अतिरिक्त इन पंजी में छात्र/छात्रा के माता–पिता का नाम, विद्यार्थियों की कोटि एवं उपस्थिति का विवरण दर्ज किया जाता है। प्रत्येक कक्षा के लिए शिक्षक निर्धारित होते हैं जो उपस्थिति पंजी को संधारित कर अद्यतन रखते हैं। सभी कक्षाओं के छात्र/छात्राओं के लिए अलग–अलग उपस्थिति पंजी संधारित की जाती है। विद्यालय में उपस्थित छात्र–छात्राओं की उपस्थिति के अनुसार निहित कॉलम में संख्या अंकित करते हैं। कोई विद्यार्थी किसी माह में कितने दिन उपस्थित हुआ है इसका प्रमाण उपस्थिति पंजी से ही प्राप्त होता है। छात्र उपस्थिति पंजी में दर्ज उपस्थिति की संख्या के आधार पर ही पोशाक राशि या अन्य प्रोत्साहन योजनाओं में मिलनेवाली सुविधाएं दी जाती हैं।

   उपस्थिति पंजी के आधार पर विद्यालय के विभिन्न कक्षाओं में अध्ययनरत विद्यार्थियों की नियमितता का आकलन किया जा सकता है। इसके आधार पर 80 प्रतिशत से कम उपस्थित वाले विद्यार्थियों के अभिभावकों से मिलकर विद्यालय नहीं आने के कारणों का भी पता किया जा सकता हैं या उपस्थिति बढ़ाने का प्रयास किया जा सकता है।

छात्र उपस्थिति पंजी का प्रारूप

विद्यालय का नामः– ....

माह का नाम.. वर्ग...................

क्रमांक	विद्यार्थी का नाम	माता का नाम	पिता का नाम	जाति	नामांकन की तिथि	1	2	3

2. **शिक्षक उपस्थिति पंजी** – शिक्षक उपस्थिति पंजी से आप अवगत हैं क्योंकि प्रत्येक दिन विद्यालय आने पर अपनी उपस्थिति दर्ज करने हेतु अपना हस्ताक्षर एवं आने का समय आप इसी पंजी में अंकित करते हैं। पुनः जब विद्यालय में छुट्टी हो जाती है तब आप हस्ताक्षर कर प्रस्थान का समय भी अंकित करते हैं। यदि किसी कारणवश शिक्षक को छुट्टी से पहले जाना पड़ता है तो जाने का समय प्रस्थान खंड में अंकित करते हैं। शिक्षक द्वारा लिए गये विभिन्न अवकाश भी इसी पंजी में अंकित किए जाते हैं। शिक्षक उपस्थिति पंजी के द्वारा विद्यालय में शिक्षकों की नियमितता का पता लगाया जा सकता है।

   इस पंजी को प्रधानाध्यापक द्वारा सत्यापित किया हुआ होना चाहिए। अपनी उपस्थिति दर्ज करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि किसी भी तरह की कटिंग न हो, यदि किसी वजह से कटिंग करनी पड़े तो वहाँ प्रधानाध्यापक का सत्यापन करवाना चाहिए।

सूचना पंजी

इस पंजी में विद्यालय में की जानेवाली सभी गतिविधियों का विस्तृत विवरण होता है। सामान्यतः यह पंजी प्रधानाध्यापक के पास रहती है जिसमें समय–समय पर प्राप्त विविध आदेश–निर्देश को लिखित रूप में वे संधारित करते हैं तथा सभी शिक्षकों, कर्मियों एवं छात्रों को इससे अवगत कराते हैं। सामान्यतः विद्यालय खुलने एवं बंद होने संबंधी सूचना इसमें दर्ज होती है साथ–साथ विद्यालय में होने वाले विभिन्न समारोह की कार्ययोजना का भी वर्णन इस पंजी में प्रधानाध्यापक द्वारा किया जाता है जिसपर हस्ताक्षर कर सभी शिक्षक अपनी सहमति जताते हैं। इसी प्रकार कई विद्यालयों में प्रधान शिक्षक अगर किसी कार्य से विद्यालय से बाहर जा रहे होते हैं तो उसकी सूचना भी वे इसी पंजी में दर्ज करते हैं। इस पंजी के अवलोकन से विद्यालय में संचालित किए जाने वाले सह–शैक्षणिक गतिविधियों की जानकारी होती है। साथ–ही प्रत्येक कार्यों का विकेन्द्रीकरण कितना किया गया इसका भी पता चलता है। इस पंजी में निर्गत आदेश का अनुपालन सभी शिक्षक एवं शिक्षकेत्तर कर्मी तथा छात्र करते हैं।

आकस्मिक अवकाश पंजी

प्रत्येक विद्यालय में यह पंजी रखी जाती है जिसे हर समय अद्यतन किया जाता है। इसमें प्रत्येक शिक्षक के नाम पन्ना आवंटित रहता है तथा शिक्षकों द्वारा आकस्मिक अवकाश के लिए दिए गए आवेदन पत्र के आलोक में स्वीकृत अवकाश उनके आवंटित पन्ने पर दर्ज कर दिया जाता है। इस प्रकार, शिक्षक द्वारा उपयोग में लाए गए अवकाशों का संधारण इस पंजी में किया जाता है। शिक्षक द्वारा एक शैक्षणिक सत्र में लिए गए सभी प्रकार के अवकाश का लेखा जोखा इसी पंजी में रखा जाता है। इससे विद्यालय प्रधान को यह पता करने में सुविधा होती है कि किस शिक्षक ने कितनी छुट्टियाँ ले ली हैं और कितने दिन अवकाश शेष हैं।

रोकड़ पंजी

इस पंजी में विद्यालय में प्रदत्त सभी प्रकार की निधियों का लेखा–जोखा संधारित रहता है। विद्यालय को प्राप्त कुल राशि, खाते में शेष कुल राशि तथा नकद रखी राशि का विवरण इसमें दर्ज होता है। इसमें बाँयी तरफ के पन्ने पर आय तथा दाहिनी तरफ के पन्ने पर व्यय विवरणी अंकित की जाती है। नियमानुसार, जब–जब राशि का विनिमयन किया जाता हो तब–तब इसे संधारित किया जाना चाहिए। यह पंजी भी प्रधानाध्यापक के जिम्मे रहती है जिसमें समय–समय पर प्राप्त एवं व्ययित राशि का संधारण उनके द्वारा किया जाता है। समय–समय पर विद्यालय शिक्षा समिति सदस्यों तथा लेखा विभाग के ऑडीटर द्वारा इसकी ऑडिट भी करवाई जाती है जिसके द्वारा इसकी वैद्यता सुनिश्चित की जाती है। विद्यालय में आमतौर पर दो तरह की रोकड़ पंजी तैयार की जाती है। एक रोकड़ पंजी मध्याह्न भोजन से संबंधित होती है एवं दूसरी रोकड़ पंजी अन्य सभी प्राप्त राशियों के लिए बनायी जाती है।

मदवार आय–व्यय विवरणी पंजी

इस पंजी पर प्रत्येक वित्तीय वर्ष में प्राप्त एवं व्ययित राशि का लेखा–जोखा मदवार रखा जाता है। इसमें विद्यालय में जिन–जिन मदों में राशि प्राप्त होती है उन मदों के नाम लिखे जाते हैं। प्रत्येक मद हेतु कुछ पन्ने आवंटित कर विषयसूची में मदों के नाम एवं उनके सामने आवंटित पृष्ठ संख्या अंकित की जाती है। मदवार आवंटित पृष्ठ में बायीं ओर के पृष्ठ पर आय का विस्तृत विवरण यथा क्रम संख्या, प्राप्त राशि, चेक संख्या एवं तिथि, प्राप्ति का स्रोत लिखा जाता है तथा दायीं ओर के पन्ने पर व्ययित राशि का विस्तृत वर्णन अंकित रहता है।

इस पंजी के संधारण से विद्यालय के प्रधानाध्यापक को यह अद्यतन जानकारी प्राप्त होती है कि किस–किस मद में कितनी राशि विद्यालय को प्राप्त हुई तथा प्राप्त राशि में से कितना व्यय किया जा चुका है। इस पंजी से प्रधानाध्यापक को यह भी सुविधा प्राप्त होती है कि वे यह ध्यान रखेंगे कि जिस मद में जितनी राशि प्रदत्त हुई है उससें अधिक व्यय नहीं हो।

समय–समय पर विभाग द्वारा व्यय संबंधी मांगे गए आंकड़ों के प्रेषण में भी शिक्षक को इस पंजी से सुविधा होती है।

परीक्षाफल पंजी

यह बच्चों की उपलब्धि को दर्ज करनेवाली पंजी होती है जिसमें विभिन्न सर्वाधिक परीक्षाओं में प्राप्त अंकों को बच्चों के नाम के सामने अंकित किया जाता है। इसी के आधार पर बच्चों को अगली कक्षाओं में पढने हेतु उत्तीर्ण घोषित किया जाता है।

परंतु शिक्षा का अधिकार अधिनियम लागू होने के उपरांत सतत एवं व्यापक मूल्यांकन का प्रावधान विद्यालयों में कर दिया गया है। विद्यालयों में बच्चों की प्रगति–पत्रक का अभिलेखन किया जाता है। बच्चों की सामाजिक, आर्थिक एवं शारीरिक स्थिति के अभिलेखन के साथ–साथ उनकी शैक्षणिक प्रगति का अभिलेखन साक्ष्य के साथ किया जाता है। अब, परीक्षा फल पंजी का स्थान पोर्टफोलियो एवं प्रोफाइल ने ले लिया है जिसका विस्तृत अध्ययन इकाई तीन के 'अध्याय आकलन एवं मूल्यांकन की समझ' शीर्षक के अंतर्गत किया गया है। परीक्षाफल पंजी के रखरखाव का महत्व इसलिए भी है क्योंकि पूर्व के वर्षों में विद्यालय में अध्ययनरत छात्र/छात्राओं द्वारा प्राप्त अंकों का पता भी इसी अभिलेख से लगाया जा सकता है।

शिक्षक प्रगति–पत्रक

इसमें शिक्षक अपना मूल्यांकन कर खुद अंक अंकित करते हैं। शिक्षक द्वारा किए गए कार्यों के आलोक में प्रधानाध्यापक भी इस प्रपत्र में शिक्षक का मूल्यांकन करते हैं। यह पत्रक शिक्षक द्वारा प्रति वर्ष भरा जाना है। इसमें चार खण्ड हैं जिसे खंड 'क' से 'घ' तक नाम दिया गया है। खंड 'क' में शिक्षक से संबंधित सामान्य सूचनाएँ अंकित की जाती हैं। खंड 'ख' में वर्गकक्ष विनिमयन प्रक्रिया से संबंधित क्रियाशीलनों का स्वमूल्यांकन शिक्षक करते हैं। प्रत्येक बिन्दु के लिए अंक निर्धारित है। अपने लिए कार्यों का मूल्यांकन शिक्षक को तीन सत्रों में करना है। खंड 'ग' के अंतर्गत प्रधानाध्यापक एवं शिक्षक दोनों शिक्षक के कार्यों के आलोक में मूल्यांकन कर अंक प्रदान करते हैं तथा खण्ड 'घ' में शिक्षक के अपने सह–शैक्षणिक प्रदर्शन यथा समयबद्धता, नियमितता, नेतृत्व क्षमता इत्यादि के लिए अंक प्रदान किया जाता है। इस प्रकार कुल 120 अंकों के आधार पर शिक्षक स्वमूल्यांकन करते हैं। प्राप्त प्रतिशत अंक के आधार पर शिक्षक/प्रधानाध्यापक को ग्रेड दिया जाता है। इसमें 80% से ऊपर अंक प्राप्त करने पर A ग्रेड–80% से 60% तक B ग्रेड 59% से 40% तक C ग्रेड से 40% से कम प्राप्त करने पर D ग्रेड दिया जाता है। सबसे अंत में शिक्षक एवं प्रधानाध्यापक के हस्ताक्षर का स्तंभ होता है। इस प्रकार, शिक्षक प्रगति–पत्रक के माध्यम से शिक्षक/प्रधानाध्यापक द्वारा वर्ष भर किए गए कार्यों हेतु अंक प्रदान किया जाता है। इसके माध्यम से शिक्षक द्वारा की जानेवाली गतिविधियों की दृष्टि तो विकसित होती ही है। साथ–ही–साथ उन्हें ज्यादा–से–ज्यादा अंक प्राप्त हो इसके लिए उन गतिविधियों के बेहतर क्रियान्वयन की भावना भी उत्पन्न होती है।

अन्य पंजियाँ

समय–समय आवश्यकतानुसार अन्य पंजियाँ यथा पोशाक वितरण पंजी, छात्रवृत्ति वितरण, शिक्षक अभिभावक बैठक, मीनामंच, बाल संसद, बैठक पंजी, विद्यालय की अन्य गतिविधियों के संचालन से संबंधित पंजी का संधारण भी किया जाता है ताकि इनका सही अभिलेख रखे जा सके।

शिक्षक डायरी व विद्यार्थी प्रोफाइल

ये दोनों सीखने–सिखाने की प्रक्रिया से जुड़े महत्वपूर्ण अभिलेख हैं। शिक्षक पूरे दिन विद्यालय के अंदर एवं बाहर समुदाय के साथ शिक्षा के प्रचार–प्रसार हेतु जो भी गतिविधियाँ करते हैं वे उसे अपनी शिक्षण डायरी में अंकित करते हैं। इसे 'शिक्षक दर्पण' के नाम से भी जानते हैं। वहीं विद्यार्थी प्रोफाइल के अंतर्गत छात्र से जुड़ी समस्त जानकारियाँ आती हैं। इसके अंतर्गत प्रत्येक बच्चों की सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक एवं शैक्षणिक स्थिति का अभिलेखन किया जाता है। आइए, हम इसे अलग–अलग समझें।

शिक्षक डायरी

आप जानते हैं कि विद्यालय समाज की एक व्यवस्थित इकाई है। यह बच्चों के विकास में अहम भूमिका निभाती है। यहाँ पठन–पाठन की प्रक्रिया के साथ–साथ कई अन्य गतिविधियाँ संचालित होती रहती हैं। छात्र को केन्द्र बिन्दु में रखकर शिक्षक उन्हें सिखाने की कार्य–योजना तैयार करते हैं। अपनी संपूर्ण शिक्षण योजना का अभिलेखीकरण वे शिक्षक डायरी में करते हैं। शिक्षक इसके आधार पर सीखने–सिखाने की क्रिया करते हैं तथा आवश्यकतानुसार अपनी कार्य–योजना में बदलाव भी लाते हैं। वास्तव में यह शिक्षक का दर्पण होता है। एक शिक्षक किस प्रकार अपना पूरा दिन विद्यालय में गुजारेंगे इसका पूरा लेखा–जोखा इस डायरी में होना चाहिए। वास्तव में शिक्षण प्रक्रिया कई चरणों में चलती है परंतु सामान्यतः इसे तीन भागों में विभाजित कर देख सकते हैं। वर्ग कक्ष में जाने के पूर्व की तैयारी, वर्ग कक्ष में योजनाबद्ध तरीके से क्रियान्वयन तथा शिक्षण प्रक्रिया की समीक्षा। इन सभी कार्यों का विवरण शिक्षक अपनी डायरी में दर्ज करते हैं। यह सीखने–सिखाने की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण स्रोत माना जाता है। यह शिक्षक की समझ, कौशल एवं मनोभाव को प्रदर्शित करता है। शिक्षण कार्य के दौरान शिक्षकों को विभिन्न प्रकार के अनुभव प्राप्त होते हैं। इन अनुभवों को वे अपनी डायरी में अंकित कर अपनी नई कार्य–योजना का निर्माण करते हैं। इससे शिक्षक स्वयं के क्रियाकलाप में सकारात्मक परिवर्तन ला सकते हैं।

शिक्षक डायरी में बच्चों की उपलब्धि को भी अंकित कर सकते हैं क्योंकि शिक्षक को यह मालूम होता है कि उनकी कक्षा के किस बच्चे की शैक्षणिक स्थिति क्या है तथा शिक्षक के प्रयास का प्रतिफल क्या है। अतएव शिक्षक को चाहिए कि अपने विषय में छात्रों की प्रगति का अभिलेखन शिक्षक अपनी डायरी में करें ताकि उन्हें आगामी कार्य–योजना बनाने में मदद मिल सके।

शिक्षक डायरी में शिक्षक को अपने व्यवहार तथा बच्चों के व्यवहार संबंधी टिप्पणी दर्ज करनी चाहिए ताकि इसमें भी वांछित परिवर्तन लाया जा सके। इसके अतिरिक्त आवश्यकतानुसार किये जाने वाले नवाचारों एवं अन्य प्रयोगों तथा उसके प्रभाव का वर्णन भी इस डायरी में लेना चाहिए।

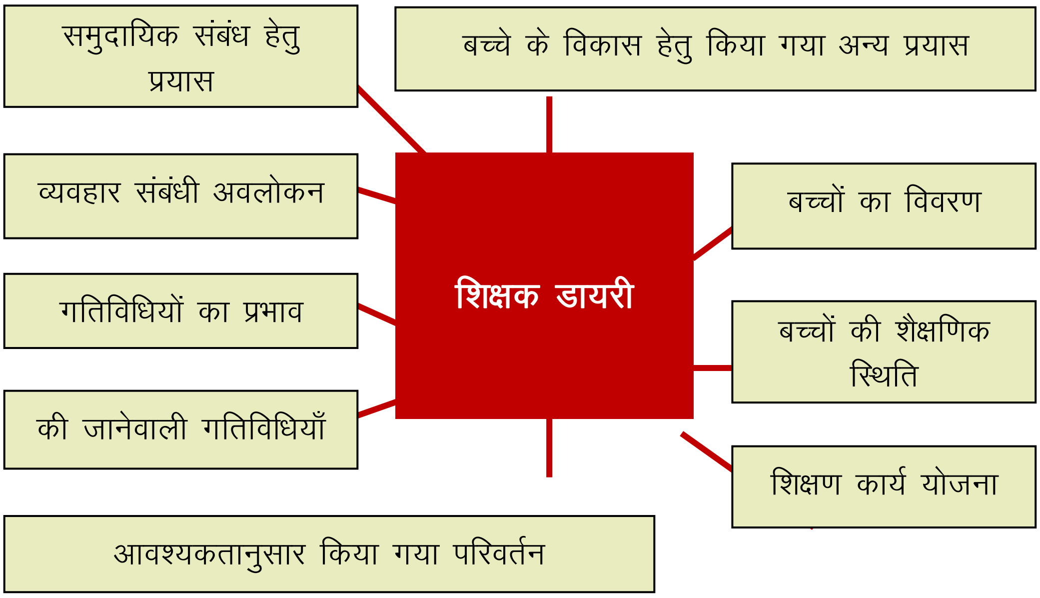

उपर्युक्त चित्र से भी स्पष्ट है कि शिक्षक डायरी में विद्यालय एवं विद्यार्थियों के हि त में किए जाने वाले तमाम कार्यों का विवरण दर्ज किया जाता है।

विद्यालयी रिकार्डों की सीमाएँ

कई बार पूर्ववर्ती अभिलेख के काफी अधिक संकलित रहने से भंडारण की समस्या उत्पन्न हो जाती है। अतएव आवश्यक है कि इनमें से अनुपयोगी सामग्री की पहचान कर जिसका उपयोग न हो, को अलग भंडारण किया जाए। इसके अतिरिक्त उचित सामग्री का क्रय कर इनका भंडारण किया जा सकता है। इसके अभाव में संसाधन एवं स्थान दोनों की समस्या का सामना करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त कागजी अभिलेखों को रखने में ज्यादा जगह की आवश्यकता पड़ती है जिसे सुरक्षित रखने के लिए परिश्रम के साथ–साथ व्यय भी काफी अधिक करना पड़ता है। फिर भी, विद्यालय संगठन के लिए आवश्यक है कि उन उपलब्ध दस्तावेजों का उचित रखरखाव एवं संकलन सुनिश्चित करें ताकि इन धरोहरों का उपयोग समय–समय पर आवश्यकतानुसार किया जा सके।

पारम्परिक रिकॉर्डों व आँकड़ों के साथ–ही विद्यालय को नए व सृजनात्मक आंकड़े भी एकत्रित करना चाहिए जिससे विद्यालय के सीखने–सिखाने की प्रक्रिया को भी और बेहतर बनाया जा सके। अब नीचे दी गयी केस को पढ़िये तथा उसके बाद दी गई गतिविधि को करें।

बाल संसद :– बाल संसद विद्यालय के बच्चे तथा बच्चियों का एक मंच है, जहाँ वे अपने विद्यालय, समाज, परिवार तथा स्वास्थ्य एवं शिक्षा के अपने अधिकारों की बात खुलकर कर सकते हैं। बाल संसद का उद्देश्य बच्चे एवं बच्चियों में जीवन कौशल का विकास करना, नेतृत्व एवं निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना, विद्यालय गतिविधियों एवं प्रबंधन में भागीदारी सुनिश्चित करना है। इस संसद के माध्यम से सुशिक्षित समाज निर्माण के लिए विद्यालय के बच्चे अपने विद्यालय, समाज परिवार, स्वास्थ्य, शिक्षा, कला संस्कृति के अलावा अपने अधिकारों पर खुलकर बात करते हैं। इसका उद्वेश्य जीवन कौशल का विकास, बच्चों

में नेतृत्व की क्षमता, विद्यालय प्रबंधन में भागीदारी और विद्यालय को साफ सुथरा रखना है। इसमें 12 सदस्य होते हैं जिसमें प्रधानमंत्री एवं उप–प्रधानमंत्री के अलावा 5 मंत्री एवं 5 उपमंत्री होते हैं। इनका कार्य गाँव टोला के 6–14 आयु वर्ग के बच्चों की सूची तैयार करने, चेतनासत्र का संचालन करने, बच्चों को प्रेरित करने, कक्षा की सफाई एवं बागवानी करना है।

मीनामंच :– मीनामंच विद्यालय के बालिकाओं के लिए एक संगठन है जिसका उद्देश्य विद्यालय के आसपास बच्चों को शिक्षा के मुख्यधारा से जोड़ना है। शिक्षा के लिए चलाई जा रही शैक्षणिक योजना की जानकारी एवं अभिभावकों को जागरूक करना, नेतृत्व एवं सहयोग की क्षमता विकसित करना, बच्चों एवं महिलाओं में उन्हें अधिकार के लिए चेतना जागृत करना। इनके पाँच सदस्य होते हैं – अध्यक्ष, सचिव, कोषाध्यक्ष, अन्य दो सदस्य। इनके द्वारा विद्यालय के सभी बालिकाओं को केन्द्रित किया जाता है। इनकी कई गतिविधियॉ शामिल रहती हैं जैसे – छात्र–छात्रा उपस्थिति, विद्यालय विहिन बच्चों की खोज, बाल–विवाह, दहेज, स्वास्थ्य एवं सफाई, लिंग भेद। इन सबके अलावा लेखन, चित्रकारिता, पेटिंग कौशल विकसित करना, किशोरी समस्या का समाधान करना भी प्रमुख है।

विद्यालय में पढ़ने वाली किशोर उम्र की लड़कियों का मंच है। इनमें प्रायः 6–8 वर्ग की सभी लड़कियाँ सदस्य होती हैं। मीनामंच की बैठक माह में एक बार मीनामंच के सुझाव पर ही नोडल शिक्षिका आयोजित करती हैं।

मीनामंच का मुख्य कार्य :– पोषक क्षेत्र की सभी बालिकाओं को जो शिक्षित हैं या विद्यालय से बाहर हैं, उन्हें विद्यालय से जोड़ना है। इसके अतिरिक्त पोषक क्षेत्र एवं मीनामंच से जुड़ी लड़कियों को अंधविश्वास, सामाजिक कुरीतियों आदि के प्रति जागरूक करना है। बाल–विवाह के विरूद्ध मंच को मुखर होना होता है। अभिभावकों की नशाबंदी, दहेजप्रथा आदि के प्रति गोलबंद होना है। कुपोषण साफ–सफाई स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता, लिंग भेद आदि के प्रति सशक्त करना है।

इस क्रम में मीनामंच हर माह बैठक करके (School hours के बाद) अपनी प्राथमिकता तय करके नोडल शिक्षिका को जानकारी देती हैं और उस पर कार्य करती है।

दरअसल मीना किशोर उम्र की बालिका है जो बहुत ही साहसी, परिश्रमी, ईमानदार मुखर और पोषकारी हैं वह सब जरूरतमंदों की मदद करती हैं, दूरदर्शी हैं। मीनामंच इसी कल्पना को साकार करने का माध्यम है कि हर किशोरी मीना की तरह बने।

विद्यालय में दिन की शुरुआत व चेतना सत्र की समझ

चेतना सत्र की समझ

चेतना सत्र विद्यालय परिवार की वह गतिविधि है जिससे विद्यालय की शुरुआत होती है और इसके संचालन के उपरांत ही विद्यालय की शेष गतिविधियाँ संचालित होती है। अतः विद्यालय के रोजाना के कार्य इसी के साथ शुरू होते हैं। दरअसल यह विद्यालय संचालन का शँखनाद है।

चेतना व्यक्ति के निहित अंदर वह प्रज्ञा है जिसे जागृत करना और जागृत रखना पड़ता है

और इसी चेतना के बल पर उसमें स्वविवेक, सकारात्मक विचार उत्पन्न होते हैं। यह वह आत्मज्ञान उत्पन्न करने की घड़ी होती है जिसमें वह शांतचित और एकाग्र होकर अपने मन की तार उस एकभेद ईश्वर से जोड़ता है और एकाकार होने का प्रयास करता है। यह प्रार्थना की घड़ी होती है उसमें प्रार्थना करने वाला ईश्वर/अल्लाह/अपने इष्ट को याद करते हैं जिनसे उन्हें उर्जा और सकारात्मक शक्ति मिलती है ताकि वह उस दिन ऊर्जावान होकर अपने कर्त्तव्य निश्चय कर सके। इसलिए चेतना सत्र विद्यालय की सबसे महत्वपूर्ण गतिविधि है। इस सत्र में शिक्षक, छात्र और शिक्षकेत्तर कर्मी भी प्रतिबद्ध होकर ध्यानमुद्रा में प्रार्थना करते हैं। चेतना सत्र के बाद ही विद्यालय में आगे की गतिविधियाँ उत्साहपूर्ण और सकारात्मक सोच से शुरू होती है।

चेतना सत्र के अन्तर्गत निम्नवत् गतिविधियाँ संचालित की जाती हैं। इन गतिविधियों के संचालन क्रमबद्ध होता है। इसके प्रत्येक गतिविधि में लगनेवाले समय में विभिन्नता हो सकती है। लगभग 30 मिनट तक चलने वाले इस सत्र में निम्न गतिविधियाँ होती हैं :–

गुरू वंदना

प्रार्थना

शिक्षक/प्रधानाध्यापक का संदेश

उत्त्प्रेरक गान/प्रेरक गान/सामुदायिक गान –राष्ट्रगान

संविधान की प्रस्तावना

सूत्र वाक्य/आज का विचार

योग– व्यायाम आदि भी इस सत्र में शामिल होता है।

समाचार वाचन

प्रेरक प्रंसग/गाँधी कथा वाचन

कभी–कभी यह विशेष दिन विशेष अवधि के लिए होता है।

यह विद्यालय परिवार तय करते है।

विद्यालय में दिन की शुरुआत गाँधी कथा वाचन के साथ

बिहार राज्य के विद्यालयी शिक्षा में चेतना सत्र के अन्तर्गत कथा वाचन एक महत्वपूर्ण अंश है। महात्मा गाँधी का जीवन आचरण ही संदेश है। उनके जीवन की अनेकों घटनाओं व उनके विचारों को बच्चे के सामने इस कथा वाचन के माध्यम से महात्मा गाँधी के सत्य, अहिंसा, बलिदान, साहस, नैतिकता स्वच्छता इन्हीं विचारों को हम छात्रों तक पहुँचाते हैं। बच्चों के लिए प्राथमिक स्तर पर ''बापू की पाती'' एवं माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में ''एक था मोहन'' का वाचन प्रतिदिन किया जाता है।

समाज की नैतिकता मानसिक व सांस्कृतिक विकास में गाँधी कथा वाचन का दूरगामी प्रभाव होगा। गाँधी जी के विचारों व जीवन का उद्देश्य को हम सभी आत्मसात् करेंगे। इसी अवधारणा के साथ बिहार के विद्यालयों में चेतना सत्र में गाँधी वाचन अब अपरिहार्य अंग है।

शैक्षणिक नेतृत्व की प्रेरक कहानियाँ

शैक्षणिक नेतृत्व उत्पन्न करने के लिए विद्यालय सबसे महत्वपूर्ण संस्था है। औपचारिक शिक्षा के इस केन्द्र में बच्चों के लिए सीखने–सीखाने की महत्वपूर्ण गतिविधियाँ शिक्षकों द्वारा की जाती हैं। इसी क्रम में प्रेरक कहानियाँ महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। कहानियाँ बच्चों के लिए हमेशा से रूचिकर होती हैं। कहानियों के माध्यम से बच्चों में मानसिक और बौद्धिक विकास होता है। छोटी कक्षाओं में कहानियाँ सुनाना अध्ययन का बड़ा माध्यम है। कहानियों की इस उपयोगिता को समझते हुए जातक कथाएँ, पंचतंत्र की कहानियाँ, बैताल की कहानियाँ, आलिफ–लैला, अलीबाबा की श्रृंखला की कहानियाँ काफी मनोरंजन प्रदान करती हैं। महापुरूषों की जीवनियाँ, प्रेरक प्रसंग गोरखपुर के गीताप्रेस से प्रकाशित अच्छे बालक प्रेरणादायक होती हैं जिनके श्रवण से बच्चों में नैतिकता का संस्कार पैदा होती है। वैज्ञानिकों की सफलता की गाथाएँ, महापुरूषों की जीवन संघर्ष की प्रेरणा प्रदान करती हैं। शैक्षणिक नेतृत्व के विकास के लिए प्रेरक कहानियाँ बाल जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

समेकन

इस प्रकार इस पूरी इकाई के माध्यम से आप विद्यालय संगठन की अवधारणा, संरचना, इसके विविध संसाधनों, कार्य–योजना इत्यादि का अध्ययन किया। आपने यह समझा कि विद्यालय संगठन की अपनी एक विशेष संरचना है जिसके विभिन्न भाग हैं। उन भागों के आपसी ताल मेल से ही विद्यालय का सुचारू संचालन हो सकता है। आपने विभिन्न चिंतन बिन्दुओं के ऊपर विचार–विमर्श करके यह भी समझा कि विद्यालय संगठन का एक जटिल स्वरूप है जिसमें प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से कई अवयव जुड़े हुये हैं। संसाधनों के विविध स्वरूप के विषय में भी आपने जाना।

साथ–ही, विद्यालय को समझने के लिए विभिन्न सामाजिक संस्थाओं जैसे समुदाय, सरकार, पंचायत इत्यादि के मध्य के संबंधों की पड़ताल भी की। अतः अब आप यह विश्लेषण कर सकते हैं कि विद्यालय संगठन के विभिन्न अंग विद्यालय में चलनेवाली सीखने–सिखाने की प्रक्रिया को निरन्तर किन–किन रूपों में प्रभावित करते रहते हैं।

निष्कर्ष

हम यह कह सकते हैं कि विद्यालयी व्यवस्था के सुचारू संचालन हेतु विद्यालय के अभिलेखों की समझ, विद्यालय के अभिलेखों का निर्माण तथा विद्यालय के अभिलेखों में समय–समय पर कुछ बदलावों के विषय में जानकारी शिक्षकों के लिए बहुत आवश्यक है। इन अभिलेखों से शिक्षकों को विद्यालय के हर तरह के क्रियाकलापों का पता लगता है तथा वे विद्यालय की प्रशासनिक व्यवस्था को चलाने में समुचित सहयोग दे सकते हैं। ये

अभिलेख शिक्षकों का विद्यार्थियों तथा समाज से निरंतर संपर्क बनाने में सहायक सिद्ध होते हैं तथा वर्ग कक्ष विनिमयन प्रक्रिया को मजबूत करने में भी ये महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

मूल्यांकन के लिए प्रश्न

1. आपने इस इकाई के माध्यम से यह समझा कि विद्यालय एक संगठन के रूप निर्मित होता है। आप किस हद तक सहमत हैं कि विद्यालय संगठन का यह निर्माण निरंतर चलता रहता है क्योंकि अपने विकास के क्रम में विद्यालय अपने स्वरूप, संसाधनों आदि में लगातार परिवर्तत लाता रहता है?
2. विद्यालय के संसाधन जहां अधिक होंगे, वहां अच्छी शिक्षा की संभावना ज्यादा होगी। अपने तर्क सहित मतों को प्रस्तुत करें।
3. क्या समुदाय से कटकर किसी विद्यालय का अस्तित्व सुरक्षित रह सकता है? अपनी राय दें।
4. विद्यालयी अभिलेख से आप क्या समझते हैं?
5. एक विद्यालय के सफल संचालन के लिए किन–किन अभिलेख/पंजी की आवश्यकता होती है?
6. आप शिक्षक डायरी को किस प्रकार उपयोग में ला सकते हैं?
7. छात्र प्रगति–पत्रक से आप क्या समझते हैं?
8. एक शिक्षक के लिए शिक्षक उपस्थिति पंजी की क्या उपयोगिता है?
9. छात्र उपस्थिति पंजी मे जिन छात्रों की अनुपस्थिति दर्ज है और जो छात्र एक माह से लगातार अनुपस्थित हैं, उनके लिए आपके द्वारा किस प्रकार की कार्रवाई की जाएगी।
10. विद्यालयी पंजियों का उपयोग छात्र–प्रगति–पत्रक में किस प्रकार हो सकता है?
11. समावेशी शिक्षा के लिए पंजियों का उपयोग आप कैसे करेंगे?
12. आपके विद्यालय में कौन–कौन से अभिलेख रखरखाव के अभाव में खराब स्थिति में पहुँच गए हैं? इनकी सूची बनाइए तथा इनके उचित रखरखाव की योजना बनाइए।
13. बाल ससंद का क्या उद्देश्य है?
14. विद्यालय अभिलेख की सूची बनाएं।
15. नामांकन सूची विद्यार्थियों की किन–किन पहलुओं को दर्शाता है।
16. शिक्षा में गांधी कथा वाचन का क्या महत्व है।
17. विद्यालय के विभिन्न अभिलेखों के नाम एवं उनके उपयोग की सूची बनाइए।
18. अगर विद्यालय संबंधी अभिलेखों की व्यवस्था विद्यालय से हटा लिया जाए तो इसके क्या परिणाम हो सकते हैं?
19. आपके विचार से विद्यालय के सबसे महत्वपूर्ण कौन से अभिलेख हैं और क्यों?
20. विद्यालय अभिलेख विद्यालय के दर्पण होते हैं। इन कथन की उदाहरण देकर व्याख्या कीजिए।

उपयोगी पाठ्यसामग्रियों की सूची

- एस.सी.ई.आर.टी. (2008), बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2008, पटनाः एस. सी.ई.आर.टी.
- एस.सी.ई.आर.टी. बिहार के द्वारा प्रकाशित शिक्षकों व विद्यालय रिकार्डों से संबधित विभिन्न संदर्शिकायें
- एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा –2005ः एन. सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली
- बधेका, गिजुभाई (2011), दिवास्वप्न, अठारहवीं आवृतिः नेशनल बुक ट्रस्ट. नई दिल्ली पृ.सं. 03
- कृष्ण कुमार (2011), राज समाज और शिक्षा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
- बिहार सरकार, (2007), समान विद्यालय प्रणाली आयोग प्रतिवेदन, पटना : शिक्षा विभाग।
- भारत सरकार, (2009), शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009, मानव संसाधन विकास विभाग, नई दिल्ली।
- सी.बी.एस.ई. (2009), सतत एवं व्यापक मूल्यांकन शिक्षक निर्देशिका 2009ः केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, नई दिल्ली।
- Aggarwal, J.C (2002). School Administration, Delhi: Arya Book Depot.
- LDUs developed by Tess India
- Singh, Amarjit (Ed.) (2001). Classroom management: A reflective perspective. New Delhi: Kanishka Publishing.

इकाई **2**

विद्यालय में परिवर्तन

परिचय

सीखने के उद्देश्य

शिक्षा का अधिकार और विद्यालय में परिवर्तन

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009: प्रमुख बिन्दु

शिक्षा के अधिकार की वजह से शैक्षणिक व्यवस्था में आनेवाले परिवर्त्तन

समावेशी शिक्षा के अनुरुप विद्यालय संगठन व प्रबंधन

समावेशी शिक्षा की अवधारणा

समावेशीशिक्षा और शैक्षणिक व्यवस्था में बदलाव

सूचना व संचार तकनीकी का शिक्षण प्रक्रिया में प्रयोग

विद्यालय भवन और सृजनात्मकता प्रयोग: सीखने–सीखाने के माध्यम के रुप में

कला समेकित शिक्षा और विद्यालय में शिक्षण के माध्यम से विद्यालय परिवेश और कक्षायी शिक्षण में बदलाव

समेकन

मूल्यांकन के लिए प्रश्न

परिचय

समय के साथ–साथ, विद्यालयों के स्वरूप पर कई शैक्षणिक परिवर्तनों का प्रभाव पड़ता रहा है, जैसे शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009 भारत में शिक्षा के फैलाव की यात्रा में एक महत्वपूर्ण कदम रहा है। इसके लक्ष्य को हासिल करने के लिए विद्यालय की व्यवस्था में कई तरह के बदलाव अपेक्षित हैं। ये बदलाव विद्यालय की भौतिक संरचना से लेकर विद्यालय के प्रशाासनिक ढांचे तक के सभी आयामों से संबंधित है, जिसमें शिक्षकों के शिक्षण शैली, विद्यालय प्रबंधन, अभिभावकों की भूमिका, इत्यादि में भी बदलाव शामिल है। इसके साथ–ही, समावेशी शिक्षा जैसी अवधारणा ने भी विद्यालय में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं। बदलती शिक्षा के स्वरूप पर नवाचारी सूचना प्रौद्योगिकी के प्रभावों को भी अब नीतियों के माध्यम से प्रोत्साहित किया जा रहा है। इसके साथ–ही, सीखने–सिखाने के माध्यम के रूप में विद्यालय भवन को भी कई तरह से बनाया जा रहा है। ये सारे परिवर्तन अभी हाल के हैं और इनका विद्यालयों के समकालीन स्वरूप को गढ़ने में प्रभावी भूमिका है। अतः इनकी समझ शिक्षकों को अवश्य होनी चाहिए। इस इकाई के पहले भाग में शिक्षा के अधिकार अधिनियम और उसका विद्यालय पर पड़नेवाले प्रभावों की चर्चा की गई है। उसके बाद समावेशी शिक्षा की अवधारणा को विद्यालय के साथ जोड़कर समझाया गया है। आगे के भाग में सूचना एवं प्रौद्यागिकी के माध्यम से शैक्षिक परिवर्तनों तथा विद्यालय के सृजनात्मक प्रयोगों की चर्चा की गई है।

सीखने के उद्देश्य

- विद्यालयों में हो रहे परिवर्तनों से अवगत होना तथा उनकी समीक्षायी समझ बनाना।
- शिक्षा के अधिकार अधिनियम के कारण विद्यालय व्यवस्था में आ रहे परिवर्तनों को समझना।
- समावेशी शिक्षा की अवधारणा को समझना तथा इसके कारण विद्यालय में आए परिवर्तनों का विश्लेषण करना।
- सूचना व संचार तकनीकी के कारण शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में होनेवाले बदलावों को समझना।
- विद्यालय भवन का सीखने–सिखाने में सृजनात्मक प्रयोग से अवगत होना।

शिक्षा का अधिकार और विद्यालय में परिवर्तन

शिक्षा का अधिकार कानून 2009 में पारित हुआ जिसे 1 अपैल 2010 से लागू किया गया। इस अधिकार के आने के पीछे एक लम्बा इतिहास रहा है। औपनिवेशिक काल में 1910 के गोखले बिल से लेकर आजादी मिलने तक आजाद होने पर भारतीय संविधान सभा में भी शिक्षा के मुद्दे पर काफी बहस हुई। शिक्षा को संविधान के किस भाग में रखा जाए, इसको लेकर दो प्रमुख मत थे। पहला मत यह था कि शिक्षा के अधिकार को भारतीय संविधान के तीसरे भाग में दिए गए मूल अधिकारों में शामिल किया जाना चाहिए। इसके विपरीत बहुत से सदस्यों को यह विचार व्यवहारिक नहीं लग रहा था। अतः दूसरा मत यह था कि शिक्षा के विषय को भारतीय संविधान के चौथे भाग में राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतो के अंतर्गत अनुच्छेद 45 के तहत शामिल किया जाए, जिसे अंततः मान लिया गया। अनुच्छेद 45 में कहा गया है कि राज्य यह प्रयत्न करेगा की संविधान के लागू होने के दस वर्ष के भीतर 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को निशुल्क एवं अनिवार्य बुनियादी शिक्षा प्रदान की जाए। इसके मायने यह थे कि दस वर्ष के भीतर 0 से 14 तक के बच्चों की शिक्षा की समुचित व्यवस्था पूरे देश में केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा कर ली जानी चाहिए। यह एकमात्र ऐसा नीतिनिर्देशक सिद्धांत था जिसके लिए समय सीमा निर्धारित की गयी थी। जिससे यह प्रतीत होता है कि संविधान सभा शिक्षा के अधिकार के प्रति काफी गंभीर थी।

चूंकि शिक्षा को नीति निर्देशक तत्वों के अंतर्गत रखने के कारण, शिक्षा से जुड़ी व्यवस्था को लागू करना केन्द्र या राज्य सरकारों की अनिवार्य जिम्मेदारी नहीं थी इसलिए सरकारों ने विभिन्न कारणों से इसके निर्धारित लक्ष्य को हासिल करने के लिए अपेक्षित ध्यान नहीं दिया।

इस संदर्भ में 1993 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उन्नीकृष्णन् बनाम आंध्र प्रदेश सरकार के मुकदमे में दिए गए निर्णय से महत्वपूर्ण मोड़ आया। इस मुकदमें में शिक्षा के अधिकार की व्याख्या के अनुसार, संविधान के चौथे भाग में दिए गए अनुच्छेद 45 को संविधान के तीसरे भाग में दिए गए मूल अधिकारों के तहत अनुच्छेद 21 में दी गयी जीवन जीने की स्वतंत्रता के साथ जोड़कर सकारात्मक रुप से देखा जाना चाहिए क्योंकि ज्ञान हासिल करने के अवसरों के अभाव में जीवन जीने की स्वतंत्रता निरर्थक है। अतः हम ज्ञान के बिना जीवन को पूरी स्वतंत्रता के साथ नहीं जी सकते। इस तरह सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त निर्णय में 0 से 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा को

मूल अधिकार का दर्जा दे दिया। लेकिन इसे वास्तव में मूल अधिकार बनाने हेतु संसद द्वारा कानून पारित करने की आवश्यकता थी। तत्पश्चात, सन् 2002 में संविधान की 86वें संशोधन विधेयक को पारित किया गया। इस विधेयक के द्वारा संविधान के अनुच्छेद 21 जो जीवन जीने की स्वतंत्रता से संबधित है, में अनुच्छेद 21(A) जोड़ा गया, जिसमें कहा गया है कि राज्य 6 से 14 वर्ष तक के आयु के सभी बच्चे को निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगी। इस संशोधन के पारित होने के बाद भी सरकार को शिक्षा का मूल अधिकार का विधेयक बनाने में लगभग 8 वर्ष लग गये तथा इसके प्रमुख प्रावधान 2009 तक ही बन पाए। इसके प्रमुख बिन्दुओं को अगले खण्ड में दिया जा रहा है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 : प्रमुख बिन्दु

शिक्षा के अधिकार को मूल अधिकार बनाने के मायने यह है कि यदि केन्द्र सरकार या कोई राज्य सरकार इस अधिकार के पूरी तरह लागू होने के बाद इसे कार्यान्वयन करने में किसी भी तरह से असफल रहती है तो लोग ऐसे सरकार के विरुद्ध भारत के किसी भी राज्य के उच्च न्यायालय या भारत के सर्वोच्च न्यायालय में सीधे मुकदमा दायर कर सकते हैं। इसके कारण, संबंधित न्यायालय सरकार को शिक्षा के अधिकार को सही ढंग से लागू करने के लिए निर्देश दे सकता है। अर्थात्, शिक्षा का अधिकार अब कानूनी अधिकार है।

शिक्षा के अधिकार का व्यापक उद्देश्य सभी बच्चों को सार्वभौमिक ढंग से प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करना है। शिक्षा के अधिकार को वास्तव में लागू करने के लिए संसद द्वारा जो अधिनियम बनाया गया उसके मुख्य प्रावधान निम्न हैं :

- 6 से 14 वर्ष की आयुवाले सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करना केन्द्र तथा राज्य सरकारों की जिम्मेदारी होगी।
- हरेक आवासीय क्षेत्र के 1 कि०मी० दायरे में कक्षा 5 तक का प्राथमिक विद्यालय होगा।
- हरेक आवासीय क्षेत्र के 3 कि०मी० दायरे में एक कक्षा 8 तक का कम से कम एक मध्य विद्यालय होगा, ताकि बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए घर से बहुत दूर न जाना पड़े। यह प्रावधान इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए शामिल किए गए हैं कि देश के विभिन्न राज्यों में बहुत से बच्चे विशेष रुप से लड़कियाँ विद्यालय के घर से दूर होने की वजह से पढ़ाई छोड़ देती हैं।
- प्रारंभिक शिक्षा यानि कक्षा 8 तक के वर्गों की पढ़ाई या 14 वर्ष की आयु पूरी होने तक किसी भी बच्चे को किसी भी कक्षा में असफल घोषित नहीं किया जा सकता। ऐसा इसलिए किया गया है ताकि बच्चों पर पढ़ाई

और परीक्षा का अतिरिक्त मानसिक दबाव ना पड़े तथा वे स्वतंत्रतापूर्वक जीवन के सभी क्षेत्र में सीखने की कोशिश करें।

- किसी भी बालक या बालिका को उसकी आयु के अनुसार कक्षा/वर्ग में प्रवेश प्रदान करने से कोई भी विद्यालय इंकार नहीं करेगा। उदाहरण के लिए अगर किसी बालक/बालिका की आयु 12 वर्ष है तो उसे कक्षा 6 में प्रवेश देना होगा। विद्यालय के अध्यापकों व प्रबंधन से यह अपेक्षा की जाती है कि वे ऐसे बच्चों को उनकी आयु के समकक्ष कक्षा/वर्ग से पहले की कक्षाओं की तैयारी करवाए तथा संबधित कक्षा/वर्ग के लायक बनाए। इस प्रावधान के पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि जिन बच्चों को इस अधिकार के पहले शिक्षा प्राप्त करने के समुचित अवसर नहीं मिले वे शिक्षा प्राप्ति के अवसरों से वंचित नहीं रहें तथा आयु अधिक हो जाने की वजह से पिछड़े भी नहीं।
- कुछ प्रावधानों के द्वारा धार्मिक और भाषाई आधार पर निजी समूह द्वारा चलाए जा रहे अल्पसंख्यकों के निजी विद्यालयों के अलावा हर तरह के निजी विद्यालयों एवं केन्द्र सरकार व उसके प्रतिष्ठानों द्वारा चलाए जा रहे विद्यालयों जैसे केन्द्रीय विद्यालयों, नवोद्य विद्यालयों, सैनिक स्कूलों इत्यादि में 25 प्रतिशत सीटें वंचित तथा आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग के बच्चों के लिए आरक्षित की जाएगी। जब तक 25 प्रतिशत सीटें गरीब तबकों के बच्चों से भरी नहीं जाती तब तक कोई विद्यालय ऐसे बच्चों को प्रवेश देने से इंकार नहीं कर सकता।
- जिन बच्चों को निजी एवं उच्चस्तरीय माने जाने वाले सरकारी विद्यालयों में आरक्षण के आधार पर प्रवेश दिया जाएगा उन बच्चे के हिस्से की फीस को उस राज्य की सरकार या केन्द्र सरकार द्वारा विद्यालय को विद्यालय में होनेवाले प्रति विद्यार्थी कुल खर्च की दर से दिया जाएगा।
- विभिन्न विद्यालयों में प्रवेश देते समय विद्यार्थी तथा अभिभावकों के साथ साक्षात्कार नहीं किये जाएंगे और न ही आरक्षित कोटे में आनेवाले विद्यार्थियों से कैपिटेशन फीस (दानशुल्क) लिया जा सकता है।

इन सभी बिन्दुओं में शिक्षा के अधिकार अधिनियम – 2009 तथा उसके आगे हुए संशोधनों के कारण कई बदलाव होते रहते हैं। इसलिए अद्यतन जानकारी के लिए अधिनियम के संबंधित भाग तथा उसमें किये गये संशोधनों को देखा जाना जरूरी है।

हालांकि शिक्षा के अधिकार अधिनियम से यह अपेक्षा की जाती है कि इसमें समान स्कूल प्रणाली को विकसित करने के लक्ष्य को हासिल करने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाये जाएं। लेकिन विभिन्न राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक कारणों के चलते ऐसा नहीं हुआ। उपरोक्त प्रावधानों के द्वारा अधिनियम में यह प्रयास किया गया है कि सामाजिक न्याय तथा सामाजिक समानता की तरफ एक कदम बढ़ाया जाए। इसकी वजह से विद्यालयों पर कई

प्रकार के प्रभावों को देखा जा सकता है जिनकी चर्चा अगले खण्ड में की जा रही है।

शिक्षा के अधिकार की वजह से शैक्षणिक व्यवस्था में आनेवाले परिवर्तन

शिक्षा के अधिकार अधिनियम के लागू होने से शैक्षिक व्यवस्था में कई परिवर्तन आने शुरू हुए हैं, जैसे, विद्यालय की भौतिक संरचना में परिवर्त्तन तथा विद्यालयों की संख्या में स्वतः ही वृद्धि हुई है। जिन क्षेत्रों में 1 कि०मी० की आवासीय दायरे में विद्यालय नहीं है, सरकारों को वहाँ विद्यालय का निर्माण करने की बाध्यता हो गई है। इसी तरह वर्ग 8 तक के विद्यालयों को भी बनवाना सरकार के लिए अनिवार्य हो गया। साथ–ही, विद्यालयों का निर्माण करवाते समय कई नए मानकों को भी ध्यान रखना अनिवार्य हो गया है। शिक्षा का अधिकार कानून के प्रावधान के कारण, विद्यालय की भौगोलिक संरचना एवं विस्तार में कई परिवर्तनों की शुरूआत हुई जो इस प्रकार हैं :

- हरेक छात्र के 1 कि०मी० के आवासीय दायरे में एक प्राथमिक विद्यालय होगा ताकि प्रत्येक छात्र/छात्रा का स्कूल जाना सुनिश्चित हो सके। इस तरह प्रत्येक 3 कि०मी० के आवासीय दायरे में वर्ग 8 तक का बुनियादी या माध्यमिक स्तर का विद्यालय खोला जाना भी अनिवार्य हो गया है।
- इसके साथ–ही, छात्र/छात्राओं के लिए अलग–अलग शौचालयों की व्यवस्था पर जोर दिया जा रहा है ताकि छात्राओं के विद्यालय छोड़ने की प्रवृति कम हो सके।
- विद्यालय भवन में बच्चों की सुरक्षा के लिए चहारदीवारी का निर्माण होना भी जरूरी हो गया है।
- विद्यालय भवन में कक्षाकक्ष के साथ–साथ खेल के मैदान के होने पर भी जोर दिया गया है।
- इस अधिनियम के तहत यह प्रावधान भी किया गया है कि विद्यालय के प्राथमिक स्तर के वर्ग में छात्र:शिक्षिका/शिक्षक अनुपात 30:1 होना चाहिए। यदि किसी विद्यालय की किसी कक्षा में 30 से अधिक छात्र/छात्राएं हैं तो वहाँ कक्षा का दूसरा वर्ग/सेक्शन बनाना चाहिए। उक्त प्रावधान का लक्ष्य बच्चों को अंतर संवादात्मक तथा गतिविधि आधारित शिक्षण को सुनिश्चित बनाना है। इसी प्रकार उच्च प्राथमिक स्तर वर्ग में छात्र:शिक्षिका/ शिक्षक अनुपात 35:1 होना चाहिए।

उपरोक्त प्रावधानों के अलावा अधिनियम में विद्यालय प्रबंधन की भूमिका तथा विद्यालय प्रबंधन में विभिन्न बदलावों का उल्लेख भी किया है। कुल मिलाकर देखें तो शिक्षा का अधिकार अधिनियम 6 से 14 वर्ष की बच्चे को सार्वभौमिक

शिक्षा प्राप्त कराने के अवसर की ओर एक कदम है। इसकी सफलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि विद्यालय और अध्यापक इसके प्रति कितने संवेदनशील एवं तैयारी के साथ हैं। शिक्षा का अधिकार का उद्देश्य केवल विद्यालय को हर बच्चे की पहुंच में लाने भर तक नहीं है बल्कि पाठ्यचर्या, शिक्षकों के शिक्षण एवं मूल्यांकन व्यवस्था को भी गहराई से प्रभावित किया। इसके तहत शिक्षकों को अपनी नियमितता के साथ–साथ निश्चित समय में पाठ्यक्रम को पूर्ण करने की अपेक्षा भी है। सभी बच्चों के अधिगम योग्यता का आकलन सतत करते रहना होगा और उनकी आवश्यकतानुसार पूरक निर्देश भी देना होगा। बच्चों को माता–पिता के साथ नियमित बैठक कर बच्चों के व्यवहार, अधिगम योग्यता प्रगति आदि की जानकारी देते रहना भी होगा। अतः शिक्षण की भूमिका में व्यापक बदलाव अपेक्षित है। इस प्रकार यह पाते हैं कि शिक्षा के अधिकार अधिनियम ने शैक्षणिक व्यवस्था में कई परिवर्तनों की शुरूआत की। उन परिवर्तनों का प्रभाव विद्यालय के साथ–साथ शिक्षकों पर भी पड़ा है। उदाहरण के तौर पर, अब उनसे कक्षा में ऐसे शिक्षण की अपेक्षा की जाती है जिसमें कक्षा के सभी बच्चों का ख्याल रखा जाए तथा यह सुनिश्चित किया जा सके कि सभी बच्चे सीख रहे हैं।

शिक्षा के अधिकार के तहत विद्यालय प्रबंधन समिति की विशेष भूमिका निश्चित की गई है। यह समिति विद्यालय के दिन–प्रतिदिन के सुचारु संचालन से लेकर विद्यालय के लिए कार्ययोजना तथा बजट आदि बनाने जैसे कामों में सक्रिय रुप से शामिल होगें।

शिक्षा के अधिकार कानून में विद्यालय प्रबंधन समिति का गठन व दायित्व

1. शिक्षा के अधिकार कानून के तहत गैर–अनुदानित विद्यालयों के अतिरिक्त प्रत्येक विद्यालय में प्रबंधन समिति होगी एवं प्रत्येक शैक्षिक सत्र के आरंभ में इसका पुनर्गठन किया जाएगा।
2. विद्यालय प्रबंधन समिति में 16 सदस्य होंगे, जिसमें 12 सदस्य बच्चों के माता–पिता, 2 सदस्य शिक्षक, 1 सदस्य पंचायत प्रतिनिधि एवं 1 सदस्य शाला का बच्चा और स्थानीय शिक्षाविद् होगा तथा समिति में 50 प्रतिशत महिला सदस्य यानि 8 सदस्य महिलाएँ होंगी।
3. समिति में गाँव में निवासरत अनुसूचित जाति, अनु० जन जाति, पिछड़ा वर्ग, अल्पसंख्यक, कमजोर वर्ग के लोगों का समुचित रुप से प्रतिनिधित्व होगा।
4. समिति में बच्चों के माता–पिता सदस्यों में से अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष का चयन किया जाएगा।

शिक्षा के अधिकार ने शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए स्थानीय प्रशासनिक संस्थाओं को भी महत्वपूर्ण भूमिका सौंपी है, जिसमें उनके क्षेत्राधिकार में रहने वाले 14 वर्ष तक के सभी बच्चों के अभिलेख व्यवस्थित करना, प्रवासी बच्चों सहित सभी बच्चों के नामांकन सुनिश्चित करना, किसी भी बच्चे के विरुद्ध भेदभाव न किए जाने को सुनिश्चित करना आदि आते हैं।

इस अधिनियम की कई आधारों पर व्यापक आलोचना होती है, उदाहरण के लिए, अधिनियम में समान स्कूल प्रणाली को विकसित करने का प्रयास नहीं किया गया, न ही 0 से 6 वर्ष तथा 14 से 18 वर्ष की आयुवाले बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के दायरे में लाया गया है।

समावेशी शिक्षा के अनुरुप विद्यालय संगठन व प्रबंधन

समाज में ऐसे बच्चों को निःशक्त (disabled) कहा जाता रहा है जिनमें किसी प्रकार की शारीरिक अपंगता रही है। शुरूआत में इन बच्चों के प्रति समाज का दृष्टिकोण बहुत सकारात्मक या मित्रवत नहीं रहा है। लेकिन, सामाजिक सोच में परिवर्तन का यह परिणाम है कि आज समावेशी शिक्षा की अवधारणा पर जोर दिया जा रहा है तथा इन बच्चों को विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के रूप में सम्बोधित किया जा रहा है। आज के समय में समावेशी शिक्षा एक वृहत अवधारणा बन चुकी है जिसमें सिर्फ विशेष आवश्यकता वाले बच्चे ही नहीं बल्कि उपेक्षित वर्गों के बच्चों को भी शामिल किया जा रहा है।

हालांकि, विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए विशिष्ट विद्यालयों का प्रावधान रहा है। लेकिन यह पाया गया कि इनमें पढ़ने की वजह से ये बच्चे स्वयं को सामान्य बच्चों से अलग समझने लगते हैं और ये सही तरीके से समाज में स्वयं को समायोजित नहीं कर पाते। वहीं समावेशी शिक्षा में सामान्य बच्चों के साथ शिक्षण में सहभागी होने से ये स्वयं को अलग नहीं समझते तथा सभी बच्चों के साथ समान भागीदारी निभाते हैं। समावेशी शिक्षा वर्तमान समाज का एक अनिवार्य आवश्यकता बन गयी है। समावेशी शिक्षा व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय दृष्टि से बहुत आवश्यक है। यह विभिन्न प्रकार के भेदभावों और असमानताओं को दूर करने में सहायक सिद्ध हो सकती है।

समावेशी शिक्षा की अवधारणा

समावेशी शिक्षा का आशय वैसी शैक्षिक व्यवस्था से है जहाँ सभी तरह के बच्चों को साथ–साथ पढ़ने का समान अवसर मिल सके। यहाँ विशेष आवश्यकता वाले बच्चे को बदलने के लिए नहीं कहा जाता बल्कि विद्यालय के संपूर्ण

परिवेश में उनकी आवश्यकता के अनुसार अपेक्षित बदलाव किये जाते हैं। समावेशी शिक्षा का व्यापक लक्ष्य यह है कि सामान्य बच्चों और विशिष्ट आवश्यकताओं वाले बच्चों अर्थात दिव्यांग बच्चों में कोई भेदभाव नहीं रहे तथा दोनों विद्यार्थी एक–दूसरे को ठीक ढंग से समझते हुए आपसी सहयोग से पठन–पाठन के कार्य को कर सकें। समावेशी शिक्षा का व्यापक लक्ष्य यह भी प्रतीत होता है कि एकसाथ शिक्षित होने पर भविष्य में समाज के अंदर विशिष्ट आवश्यकतावाले व्यक्तियों के सरोकारों को आम लोग बेहतर ढंग से समझ सकें तथा उनमें उनके प्रति अपेक्षित संवेदनशीलता का विकास हो सके।

समावेशी शिक्षा की आवश्यकता सबसे अधिक बच्चों के व्यक्तिगत विकास तथा उनमें अपनी क्षमताओं के बारे में आत्मविश्वास पैदा करने के लिए है। समावेशी शिक्षा बच्चों के व्यक्तिगत गुणों को पहचानकर उन्हें इन गुणों को पूरी तरह से विकासित करने के अवसर देने में विश्वास रखती है। समावेशी शिक्षा बच्चों को एक दूसरे की भिन्न विशेषताओं को समझने तथा उनकी सराहना करने में सहायक होती है। इससे बच्चे एक–दूसरे की सहायता करने के प्रति प्रोत्साहित होते हैं। साथ–ही, सामान्य बच्चों को भी विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के साथ समायोजित होने के अवसर मिलते हैं जिनसे उनमें ऐसे बच्चों के बारे में निःशक्त जैसे भ्रम पैदा नहीं हो पाते हैं। समावेशी शिक्षा निःशक्त बच्चों के परिवारो के लागों को शिक्षित करने व संवेदनशील बनाने में भी सहायक है।

समावेशी शिक्षा और शैक्षणिक व्यवस्था में बदलाव

सार्वभौमिक शिक्षा के लक्ष्य को हासिल करने के लिए समावेशी शिक्षा का प्रसार एक महत्वपूर्ण कदम है। समावेशी शिक्षा प्रदान करने के लिए विद्यालय की भौतिक संरचना तथा विद्यालयों के शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में व्यापक बदलावों की आवश्यकता है। भौतिक संसाधनों के अन्तर्गत, विद्यालय में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए कुछ ऐसे परिवर्तनों को किया गया है ताकि विद्यालय में वे सहजता से अपने कार्यों को कर सकें। शिक्षण–अधिगम प्रणाली में इन बच्चों की आवश्यकतानुसार बदलाव करने पर जोर दिया जा रहा है। शिक्षक का दृष्टिकोण इन विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के प्रति साकारात्मक होना चाहिए। साथ–ही, समावेशी कक्षा की प्रक्रियाओं को प्रभावी ढंग से चलाने के लिए व्यापक बदलाव की आवश्यकता है। इसके लिए, शिक्षकों को विशेष प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

लेकिन, समावेशी शिक्षा के वांछित परिणाम अभी तक हासिल नहीं हो पाए हैं। समावेशी शिक्षा के बारे में जागरूकता या संवेदनशीलता अभी भी बहुत कम है। अधिकतर लोग विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को अपने परिवारों पर बोझ समझते हैं और वे उनकी पढाई पर विशेष ध्यान नहीं देते। अधिकांश राज्यों में

कोई ऐसा सर्वेक्षण नहीं है जिससे यह पता लग सके कि संबंधित राज्यों में किस श्रेणी में कितने विशेष आवश्यकता वाले बच्चे हैं। जिन विद्यालयों में समावेशी शिक्षा के अंतर्गत विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को प्रवेश दिया गया है उन विद्यालयों में भी भौतिक संसाधनों तथा तकनीकी सुविधाओं का नितांत अभाव है। यदि दृष्टिबाधित विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की बात करें तो विद्यालयों में उनकी पढ़ाई के लिए आवश्यक उपकरण जैसे ब्रेल लिखने व गणित करने की स्लेटें, ब्रेल में किताबे, सांकेतिक भाषा के उपकरणों इत्यादि का अभाव रहता है।

समावेशी शिक्षा के प्रति बहुत–से विद्यालयों में संकीर्ण सोच अभी भी कायम है। विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की पढ़ाई–लिखाई की विशिष्ट प्रणालियों का प्रशिक्षण सामान्य विद्यालयों के अधिकतर शिक्षकों को नहीं होता। वे नवीनतम तकनीकी से भी प्रायः अपरिचित होते हैं। इन परिस्थितियों में विशेष आवश्यकता वाले बच्चे विद्यालय जाकर कुछ खास नहीं सीख पाते हैं। समावेशी शिक्षा की यह भी गंभीर समस्या है।

समावेशी कक्षा में शिक्षण–अधिगम संचालन हेतु तकनीकी का अधिक–से–अधिक उपयोग किया जाना चाहिए। आजकल कम्प्यूटर या तकनीकी आधारित बहुत से उपकरण उपलब्ध हैं जिससे विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के शिक्षण में मदद मिल सकती है।

आज समावेशी शिक्षा के दायरे में सिर्फ विशेष आवश्यकता वाले बच्चे ही नहीं अपितु वंचित बच्चे भी आने लगे हैं और समावेशी शिक्षा का दायरा बढ़ गया है। इसलिए समुचित विद्यालय प्रबंधन के बिना इन सबको समावेशी शिक्षा प्रदान करना संभव नहीं है। समावेशी शिक्षा प्रदान करने में विद्यालय प्रबंधन की भूमिका महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह मुद्दा समाज के व्यापक वर्गों से जुड़ा है। इसलिए विद्यालय प्रबंधन अपनी सामाजिक हैसियत के द्वारा समावेशी शिक्षा के लिए कई तरह से कार्य कर सकता है।

विद्यालय प्रबंधन समाज में विशेष आवश्यकतावाले बच्चों के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण विकसित कर सकता है ताकि लोग ऐसे बच्चों को सकारात्मक दृष्टि से देखें। विद्यालय प्रबंधन अपने क्षेत्र के लोगों में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को विद्यालयों में दाखिल करवाने के संबंध में जागरुकता पैदा कर सकता है। प्रायः यह देखा जाता है कि जिस परिवारों में विशेष आवश्यकतावाले बच्चे होते हैं, वे कई आशंकाओं के चलते बच्चों को दाखिल नहीं करवाते हैं। अतः विद्यालय प्रबंधन को उन्हें जागरूक करना चाहिए।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 में कहा गया है, "कभी–कभी बच्चों को अपंग/असमर्थ/निर्योग्य शब्दों से संबोधित करते हैं तो उनमें एक प्रकार की

कुण्ठा और असहायता की भावना घर कर जाती है। इससे उन कठिनाइयों पर पर्दा पड़ जाता है, जिसका सामना विद्यार्थियों को विविध सामाजिक, सांस्कृतिक वातावरण से आने के कारण या कक्षा में अपर्याप्त शिक्षण विधि अपनाने के कारण करना पड़ता है। इन बच्चों के भी अन्य बच्चों के समान अधिकार होते हैं। विद्यार्थियों के बीच मतभेदों को समस्या के रूप में न देखकर शिक्षण के सहयोगी संसाधन के रूप में देखा जाना चाहिए। शिक्षा में समावेश समाज में समावेश का ही एक घटक है, इसलिए विद्यालय का यह दायित्व बनता है कि वे एक ऐसी उदार पाठ्यचर्या को अपनाएं जो सभी विद्यार्थियों के लिए सुलभ हो। इस पाठ्यचर्या में उचित चुनौती और पर्याप्त अवसर हों ताकि वे अध्ययन में सफलता पा सकें और अपनी सम्भावनाओं का पूर्ण विकास कर सकें।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 में इस बात पर भी जोर दिया गया है कि विशेष आवश्यकता वाले बच्चों का पाठ्यक्रम भी सामान्य बच्चे के समान ही हो ताकि उनमें किसी प्रकार की हीनता की भावना न हो। दृष्टिबाधित बच्चे से मौखिक कार्य एवं श्रवण बाधित बच्चे से लिखित कार्य अधिक करवाया जाए। विमंदित बच्चों के लिए बात को बार–बार दोहराया जाए जिससे उनमें आत्मनिर्भरता विकसित हो। अतः विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को ऐसा वातावरण प्रदान किया जाना चाहिए जिसमें इनकी सीखने की प्रक्रिया में कम–से–कम बाधाएं रह जाए तथा वे कक्षा के अन्य बच्चों की भांति ही सीख, समझकर आगे बढ़ें और उनका समुचित विकास हो।

इससे सामान्य बच्चों और विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के मध्य सभी स्तरों पर स्वस्थ सामाजिक संबंध विकसित होने के अवसर मिलते हैं। इससे उनका समाज में समायोजन भली–भांति प्रकार से हो जाता है। सामाजिक गतिविधियों में सामान्य रूप से भाग लेने का अवसर मिलने से उनमें परस्पर अपरिचित भाव या दूरी घट जाती है। इस वातावरण से विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को समान शैक्षणिक अवसर मिल जाते हैं तथा वे समाज के अन्य सदस्यों की तरह जीवन के विविध क्षेत्रों में कार्य करने की योग्यताएं निश्चित कर लेते हैं।

सामान्य अनुभव आधारित तथ्य यह है कि कक्षा में बच्चों के सीखने सम्बन्धी योग्यता का स्तर पृथक–पृथक होता है। कक्षा में कुछ ऐसे बच्चे भी होते हैं जिन्हें सिखाने के लिए विशेष शिक्षण–सामग्री तथा अध्यापकों से विशेष सहायता की आवश्यकता होती है। मानसिक योग्यता का निम्न स्तर, विकास में विलम्ब, देखने, सुनने, बोलने में कठिनाई, मांसपेशियों की क्षति, अंग की विकृति इत्यादि कई चुनौतियां भी इन बच्चों में होती है। इन बच्चों के संदर्भ में समावेशी शिक्षा की आवश्यकता को अनुभव किया गया तथा इसे प्रभावी बनाने के लिए उपयुक्त कक्षा व्यवस्था का आकलन व निर्धारण, शिक्षण सहायता सामग्री एवं उचित

दृष्टिकोण का विकास करने पर जोर है। इसके अंतर्गत विद्यालय के कार्यों में कई परिवर्तन करने की अपेक्षा है, जैसे, विद्यालय में प्रवेश के समय प्रत्येक बच्चे की विशेष आवश्यकताओं की जाँच कर जानकारी प्राप्त की जाए। जानकारी प्राप्त करते समय संबन्धित बच्चे को यह अहसास नहीं होना चाहिए कि उसकी अक्षमता को देखा जा रहा है।

इसके साथ–ही, दृष्टिदोष एवं श्रवण बाधित बच्चों को अग्रिम पंक्ति में अन्य बच्चों के साथ बिठाया जाना चाहिए ताकि वे श्यामपट्ट पर लिखित बातों को सुगमता से पढ़ सकें तथा शिक्षक के निर्देशों का सरलता और सहजता से पालन कर सकें। साथ–ही, शिक्षक को त्रिआयामी शिक्षण–सामग्री, जैसे, मॉडल आदि का शिक्षण में विशेष प्रयोग करना चाहिए जो विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की समझ विकसित करने में बहुत मददगार होती हैं। बच्चों को उनकी आवश्यकता के अनुसार अध्ययन सामग्री उपलब्ध करवाना भी आवश्यक है। अस्थि दोष वाले बच्चों का बाईसाईकिल या व्हील चेयर उपलब्ध करवाई जानी चाहिए, जिससे उनकी गतिशीलता संभव हो सके। साथ–ही, विषय की जानकारी और सीखने में सहायक अनेक प्रकार के उपकरणों की व्यवस्था से पाठ्यक्रम में यथोचित अनुकूलन किया जाना चाहिए।

सूचना व संचार तकनीकी का शिक्षण प्रक्रिया में प्रयोग

शिक्षा में सूचना एवं संचार तकनीकी शैक्षणिक क्रियाकलापों में तकनीकी उपकरणों के उपयोग से है। इसमें दृश्य–श्रव्य सामग्री, कंप्यूटर, मीडिया, प्रक्षेपक, स्लाइड, शिक्षण–मशीन, रेडियो, टेप–रिकार्डर, टी.वी., मोबाइल इत्यादि आते हैं।

शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में शैक्षणिक तकनीकी में उपर्युक्त उपकरणों की महत्वपूर्ण भागीदारी है। इस तकनीक के माध्यम से शिक्षा–कार्यक्रमों को अधिकतम लोगों तक पहुँचाया जा सकता है। कम्प्यूटर के द्वारा हम किसी भी विषय के संबंध में नई सामग्री विकसित कर सकते हैं, जैसे, चार्ट, डायग्राम, ग्राफिक्स चित्र, कार्यशीटें इत्यादि। इसके अलावा कम्प्यूटर की सहायता से इंटरनेट की विभिन्न वेबसाइटों से नई जानकारियाँ, मॉडल आदि ढूँढ सकते हैं। शिक्षण–अधिगम सामग्री में हमें कई तरह की तथ्यात्मक जानकारियाँ चाहिए होती हैं जिन्हें हम आसानी से इंटरनेट पर खोज सकते हैं।

शिक्षक प्रशिक्षण में भी सूचना संचार तकनीकी बहुत महत्वपूर्ण साधन सिद्ध हो सकता है। सूचना एवं संचार तकनीक की सहायता से हम दिए गए विषय से संबंधित सामग्रियों को दिखा सकते है, तथा हरेक दृश्य पर सामूहिक चर्चा करवा सकते हैं। इन तकनीकों के द्वारा हम संबंधित विषय से जुड़े चित्र,

ग्राफिक्स, स्लाइड, वीडियो, फ्लोचार्ट इत्यादि दिखा सकते हैं तथा जरूरत पड़ने पर श्रव्य सामग्री के अंश भी सुनवा सकते हैं। यह माना गया है कि सुनकर, देखकर या अनुकरण करके सीखना अधिक प्रभावी होता है। इसके अलावा इन संचार साधनों का उपयोग करके हम अपने छात्रों/छात्राओं को समय पर फीडबैक देकर उनका मूल्यांकन कर सकते हैं। प्रथम सत्र तथा तृतीय सत्र के प्रायोगिक विषयपत्र में आप शिक्षा में सूचना एवं संचार तकनीकी के संबंध में पहले ही अध्ययन कर चुके हैं। अतः यहां पर इसकी चर्चा संक्षेप में ही की गई है। वर्तमान में दूरस्थ तरीका (distance mode) में वीडियो कॉन्फरेंसिंग के माध्यम से शिक्षण–अधिगम कराने का उपाय सूचना एवं संचार तकनीकी में हुआ है।

सूचना एवं संचार तकनीकी के विभिन्न विशेषताओं के साथ–साथ इसकी आलोचना भी होती रही है। इस संबंध में एक मत यह है कि इसकी वजह से बच्चों के हस्तकौशलों अलग–अलग तरह की चीजें बनाने जैसे कौशलों से दूर होते जा रहे हैं। यह सृजनशीलता को समाप्त कर एकतरफा संप्रेषण रह गया है। शिक्षक और विद्यार्थी दोनों–ही इसका उपयोग अध्ययन सामग्री इकठ्ठा करने के लिए लगे हैं। इसके कारण, शिक्षा परस्पर संवाद और आत्मीयता से दूर होती जा रही है।

विद्यालय भवन और सृजनात्मकता

बच्चों की शिक्षा में विद्यालय का भवन महत्वपूर्ण स्थान रखता है। बच्चे अपने दैनिक जीवन के समय का बड़ा हिस्सा यहीं व्यतीत करते हैं। इसलिए विद्यालय भवन को सिर्फ एक कंक्रीट की इमारत नहीं समझकर, इसे बच्चों की सृजनशीलता के विकास का स्थान समझना चाहिए। इसलिए विद्यालय भवन की बनावट ऐसी होनी चाहिए जिसके अन्तर्गत बच्चे की कल्पनाशीलता को विस्तार मिल सके और वे नये मौलिक विचार और वस्तु का निर्माण कर सकें। इसलिए विद्यालय भवन को एक जीवन्त तत्व के तौर पर देखने की जरूरत है जहाँ बच्चे रोजाना अंतक्रिया करते हैं और बहुत कुछ सीखते हैं।

बच्चे जो स्वयं करके सीखते हैं या व्यवहारिक तौर पर समझाने पर सीखते हैं वह उनके लिए अधिक बोधगम्य और सरल होता है। इसके लिए आवश्यक है कि विद्यालय भवन की बनावट में सीखने के ऐसे तत्वों को समाहित किया जाए

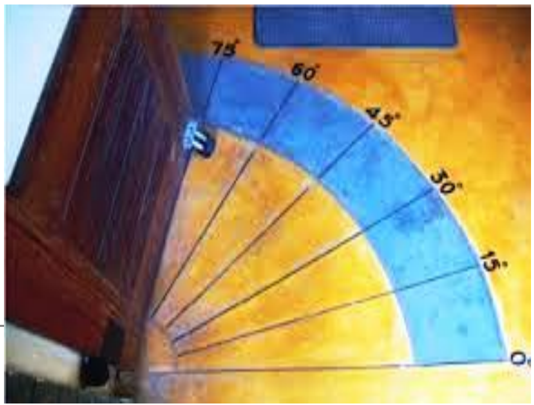

जिससे बच्चे स्वतः ही सीखने के लिए आकर्षित हों। बच्चे जिन विषयों को पढ़ते हैं उन विषयों की संकल्पनाओं को किताबों के साथ–साथ विद्यालय के भवन के माध्यम से भी सीखने में मदद मिल सकती है। उदाहरण के तौर पर, बच्चों के पाठ्यपुस्तकों में दी गई किसी कहानी को विद्यालय के दीवारों पर चित्रों के माध्यम से उकेरा जा सकता है। पंखे की विभिन्न पत्तियों को अलग–अलग रंगों में रंगकर रंग के बदलते चक्र को आसानी से समझाया जा सकता है। विभिन्न ज्यामितीय संकल्पनाओं व आकृतियों को खिड़की, दीवार, दरवाजों, सीढ़ियों इत्यादि पर उकेरा जा सकता है। इसके कुछ उदाहरणों को नीचे दिया गया है।

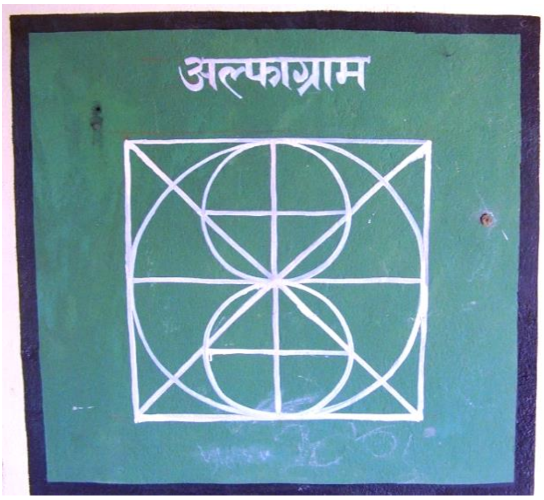

निम्नलिखित वक्तव्य को दीवार पर अंकित किया जा सकता है।, जैसे पृथ्वी सभी मनुष्यों की जरूरत पूरी करने के लिए प्रर्याप्त संसाधन प्रदान करती है, लेकिन लालच पूरी करने के लिए नहीं।

महात्मा गाँधी के अनुसार सात समाजिक पापकर्म :–

1. सिद्धांतों के बिना राजनीति
2. परिश्रम के बिना धन
3. विवेक के बिना सुख
4. चरित्र के बिना ज्ञान
5. नैतिकता के बिना व्यापार
6. मानवता के बिना विज्ञान
7. त्याग के बिना पूजा

इस तरह के उदाहरण हो सकते हैं। भूगोल के शिक्षण के लिए विद्यालय के खेल के मैदान में बालू के टीले बनाकर पहाड़, पठार, मैदान, मरूस्थल इत्यादि बालू में ही नदी जैसी धरातलीय रचना देकर शिक्षण को सृजनात्मक रूप प्रदान किया जा सकता है। इसी तरह पुराने टायरों का उपयोग करके एक रोमांचक खेल का मैदान तैयार किया जा सकता है। कक्षाओं की दीवारें लगभग 4 फुट तक काले रंग से पोत दी जानी चाहिए जिनका उपयोग श्यामपट्ट के रूप में किया जा सके।

रेखागणित की आकृतियाँ फर्श पर बनी हों, कमरे का एक कोना पढ़ने की सामग्री, कहानियों की किताबें पहेली कार्ड और अन्य शिक्षा सामग्री रखने के लिए तैयार किया जा सकता है। इसका उपयोग उन बच्चों के लिए करना चाहिए जो अपना कक्षा कार्य जल्द खत्म कर लेते हैं तो उन्हें इस कोने में जाने एवं अपनी पसंद की सामग्री चुनने की छूट होनी चाहिए। कक्षा की दीवारों पर तरह–तरह के चार्ट लगाये जाने चाहिए जिनपर बच्चे समय–समय पर अलग–अलग चीजे सीख सकें। इस प्रकार से विद्यालय भवन को सीखने के माध्यम के रूप में परिभाषित करने को 'बिल्डिंग ऐज़ लर्निंग एड' (building as learning aid) भी कहा जाता है।

कला समेकित शिक्षा और विद्यालय में शिक्षण के माध्यम से विद्यालय परिवेश एवं कक्षायी शिक्षण में बदलाव

परिचय

मनुष्य में छिपी हुई सौंदर्यबोध की अभिव्यक्ति कला है। उनमें कला के प्रति आकर्षण एक सहज भाव है, जो विविध प्रकार से उसके जीवन में शामिल है। सामाजिक–सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी कला का अपना विशेष महत्व है, तभी हम पाते हैं कि समाज में विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से कला की शिक्षा निरन्तर चलती रहती है। एक लम्बे अर्से से कला को विद्यालयी शिक्षा से भी जोड़ने पर बल दिया जाता रहा है, क्योंकि शिक्षार्थियों के सृजनात्मक क्षमता के विकास में कला की अहम भूमिका है। कला न सिर्फ उनकी संवेदनाओं को झकझोरती है बल्कि अन्य विषयों के ज्ञान को प्राप्त करने तथा बहुपरिप्रेक्षीय नजरिया से सुझाती है। साथ–ही कला के माध्यम से शिक्षार्थीगण अपने विचार एवं भावनाओं को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त करने के कई उपागमों से भी अवगत होते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि विद्यालयी शिक्षा में कला की भूमिका न सिर्फ एक विषय के रूप में है, बल्कि रोचक शिक्षण प्रक्रिया के रूप में भी है। माध्यम के रूप में, सीखने की रोचक प्रक्रिया में कला समेकित शिक्षा की भूमिका अति महत्वपूर्ण है। यह शिक्षार्थियों को अभिप्रेरित करने के साथ–साथ उनके संज्ञानात्मक, भावनात्मक एवं मनोगत्यामक विकास को भी बड़े सहजता से आगे बढ़ाने का काम करती है।

कला के सभी रूपों यथा दृश्य–कला एवं प्रदर्शन–कला को शिक्षण प्रक्रिया का माध्यम बनाना प्रभावी होता है। आड़ी तिरछी रेखाएँ खींचना, फिर देखकर मुग्ध होना, कागज फाड़ना या हठात कुछ बना डालना, मिट्‌टी के लोंदे से खेलना, किसी की नकल करना, कुछ गाने की कोशिश करना या कुछ बनाना इत्यादि बच्चों के रूचियों में सहज भाव में शामिल हैं। उनके लिए यह ज्ञान–सृजन का गम्भीर काम है, केवल मनोरंजन नहीं है। दृश्य–कला की विभिन्न सामग्रियाँ अपने निर्माण की प्रक्रिया से लेकर उत्पाद का शक्ल ग्रहण करने तक सीखने के असीम अवसर उपलब्ध कराती हैं। यदि हमारे विद्यालयों में सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में कला समेकित शिक्षा का समावेश हो जाए तो न सिर्फ बच्चों के लिए रूचिकर होगा, बल्कि शिक्षक–शिक्षिकाओं के लिए भी उनकी कक्षा सबसे आकर्षित करनेवाली बन जाएगी।

कला समेकित शिक्षा : अवधारणात्मक समझ एवं शैक्षणिक उपयोगिता

कला मनुष्य का नैसर्गिक गुण है। वह जन्म से ही कलाकार होता है। वह बचपन से ही कला सृजन की सतत प्रक्रिया में लगा रहता है, चाहे दीवार पर

आड़ी तिरछी रेखाएँ खींच रहा हो या अपने आस–पास के किसी व्यक्ति की नकल कर रहा हो या कोई गीत अपने अन्दाज में गा रहा हो या किसी डिब्बे को पीट–पीटकर कर मनचाही आवाज निकालने की कोशिश कर रहा हो या मिट्‌टी के खिलौने बना रहा हो। इन गतिविधियों में उन्हें जो आनन्द आता है उन्हें शब्दों में कहा जाना कठिन है। इससे स्पष्ट होता है कि कला की एक विशेषता आनन्द की प्राप्ति भी है। इसी वजह से प्रायः यह देखा जाता है कि बच्चे निःसंकोच कई प्रकार की कला गतिविधियों में मशगूल पाए जाते हैं। कभी अकेले और कभी समूह में उनके क्रियाकलाप चलते रहते हैं। जैसे, गुड्डे–गुड़ियों का खेल, बरसात में कागज की नाव चलाना, जानवरों की आवाज की नकल करना, चाहे वह आपको अच्छा लगे या नहीं परन्तु उसमें उनकी सृजनात्मकता दिखाई पड़ती है।

सामान्यतः यह देखा जाता है कि बच्चे उन कार्यों को करना चाहते हैं जिनमें उन्हें मजा आता हो और यह भी सत्य है कि मजा के साथ किया गया कार्य सिखाने की प्रक्रिया में प्रभावी होता है। अब यह प्रश्न उठता है कि प्रभावी रूप से सीखने–सिखाने के लिए ऐसा क्या किया जाए जिसको बच्चे मजा लेकर करें। समान्यतः विद्यालयों में जब सीखने–सीखने की प्रक्रिया शिक्षक केन्द्रित होती है तब उसमें निरस्ता आने लगती है। बच्चा शिक्षक के निर्देशानुसार कार्य करने लगता है भले ही वह करना चाहता हो या नही। प्राथमिक विद्यालयों में कुछ ऐसा किये जाने की आवश्यकता है जिससे बच्चे को विद्यालय में रूचि उत्पन्न हो तथा वह प्रतिदिन कुछ नया सोच कर विद्यालय जाता हो और वहाँ जो भी करता हो उसमें उसे मजा आता हो। ऐसा देखा गया है कि कला की प्रक्रियाओं में बल्कि अत्यधिक मजा आता है। अब यहाँ पर यह समझ लेना चाहिए कि कला में अंतिम उत्पाद महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि प्रक्रिया अत्यधिक महत्त्व रखता है। इसका मतलब कतई नही हुआ कि उत्पाद कोई मायने नहीं रखता है, बल्कि यह तो उस बच्चे की पहचान है जिसे वह अपना सृजन कहता है, और जो अपने आप में विशिष्ट होता है लेकिन यह भी सच है कि बच्चे को सबसे अत्यधिक मजा कला सृजन की प्रक्रिया में आता है। इन तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि विषयों के शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में कला को एक माध्यम के रूप में उपयोग करने से बच्चे मजे के साथ विषयों की अवधारणा आसानी से समझ सकेंगे और साथ–ही सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में रूचि भी लेने लगेंगे। इस प्रकार की शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को कला समेकित शिक्षा कहते हैं।

कला समेकित शिक्षा, सीखने–सिखाने की वैसी प्रक्रिया है जिसमें कला को एक माध्यम के रूप में उपयोग किया जाता हैं। अर्थात् कला की कई विधाओं जैसे दृश्य–कला एवं प्रदर्शन–कला के अर्न्गत चित्रकला, मूर्तिकला में कई प्रकार के शिल्प जैसे मुखौटे बनाना या अन्य सामग्रियों से कई कलात्मक वस्तुओं का

निर्माण तथा प्रदर्शन कलाओं में नाटक, नृत्य, गीत–संगीत इत्यादि को विषयों के साथ जोड़कर बच्चों को आनन्ददायी वातावरण में विषयों की समझ पक्की करना है। यहाँ पर यह समझना आवश्यक है कि कला समेकित शिक्षा में शिक्षक को कला का बोध होना आवश्यक है जैसेः– दृश्य–कला किसे कहते हैं? प्रदर्शन–कला किसे कहते हैं? दृश्य–कलाओं के अन्तर्गत कौन–कौन कला विधाएँ आती हैं? प्रर्दशन–कलाओं के अन्तर्गत कौन–कौन सी कला विधाएँ आती हैं? विधाओं में उपलब्ध सीमित संसाधनों में आप कला की गतिविधियाँ कैसे करा पाएँगे? कला समेकित शिक्षा के लिए सीखने की योजना आप कैसे बनाएँगें? उक्त प्रश्नों के उत्तर में ही छिपा है कला समेकित शिक्षा का मूल मंत्र।

इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि कला समेकित शिक्षा के लिए शिक्षक को कला विशेषज्ञ होना आवश्यक नहीं है। परन्तु यह आवश्यक है कि उन्हें कला विधाओं की थोड़ी समझ होनी चाहिए जिसका समावेशन वे समझदारी से विभिन्न विषयों में करा सकें। कला समेकित शिक्षण तकनीकी में बच्चों को अपनी अभिव्यक्ति की पूरी स्वतंत्रता होती है। इसके लिए आवश्यक है कि एक आनन्दायी वातावरण का निर्माण हो और यह तभी संभव है जब बच्चा विद्यालय को अपनी मनपंसद जगह मानने लगे। इसके लिए यह आवश्यक है कि विद्यालय की सम्पूर्ण गतिविधियों में बच्चा स्वतंत्र रूप से अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सके। इस प्रक्रिया में शिक्षक को एक सशक्त योजना बनानी चाहिए जसमें यह ध्यान देने की बात है कि विद्यालय एक कला विद्यालय में न बदल जाए अपितु यह एक ऐसी जगह में तबदील हो जाए जहाँ प्रवेश करते ही बच्चा आनन्द से भरकर स्वतः सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में संलग्न हो जाय। हमें चाहिए की विद्यालय में चेतना–सत्र से छुट्टी की अवधि तक प्रतिदिन नवाचारी कला गतिविधियों के लिए बच्चों को तैयार करें जैसे – सत्र से छुट्टी की अवधि नये–नये तरीके से खड़ा होना या बैठना, नई प्रार्थना, गीत–संगीत, लघु नाट्य इत्यादि का समावेश करना, कई अन्य गतिविधियों का समावेशन करना, खेल एवं कला की घंटी का कलात्मक उपयोग करना, प्रतिदिन विद्यालय चर्या का समापन एक लघु प्रर्थना, गीत इत्यादि से करना। इस संपूर्ण प्रक्रिया में संवेदनशील नवाचार करने के असीम गुंजाईश मौजुद हैं। विद्यालय परिसर को सुरूचिपूर्ण तरीके से सजाने क लिए भी उन्हें प्रेरित किया जा सकता है।

समेकन

इस इकाई में आपने विद्यालयों में होनेवाले कई साकारात्मक परिवर्तनों को समझा। आपने यह जाना कि किस तरह से शिक्षा का अधिकार कानून बनने से विद्यालय शिक्षा में कई तरह के बदलाव अपेक्षित हैं। ये बदलाव विद्यालय भवन के निर्माण से लेकर विद्यालय में शिक्षण तक में आने चाहिए। इसके साथ–ही, समावेशी शिक्षा की अवधारणा को भी लागू करने के प्रयासों से आप अवगत हुए।

आपने शिक्षा के स्वरूप पर नवाचारी सूचना प्रौद्योगिकी के प्रभावों के बारे में भी जाना। इसके साथ–ही, सीखने–सिखाने के माध्यम के रूप में विद्यालय भवन के उपयोग की समझ भी बनाई। इन सभी परिवर्तनों को आप अपने आस–पास के विद्यालय में भी अनुभव कर रहे होंगे या आगे करेंगे। यह जरूरी है कि इनके प्रति एक सुविज्ञ दृष्टिकोण अपनाते हुए विद्यालय में इनके प्रति साकारात्मक माहौल बनाया जाए। इसके लिए शिक्षकों को विशेष प्रयास करने होंगे जिसकी दिशा दिखाने के लिए इस इकाई में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों की चर्चा की गई। साथ–ही, यह भी स्पष्ट है कि विद्यालय को लेकर और भी कई परिवर्तन हैं जिनको इस इकाई में शामिल नहीं किया गया है। भावी शिक्षकों से यह अपेक्षा है कि वे विद्यालय में आनेवाले परिवर्तनों का विश्लेषण सदैव करते रहेंगे।

मूल्यांकन के लिए प्रश्न

1. शिक्षा के अधिकार में ऐसे कौन–कौन से प्रावधान हैं जिसकी वजह से विद्यालय व्यवस्था में बदलाव की आवश्यकता महसूस होती है?
2. शिक्षा के अधिकार अधिनियम के विभिन्न भागों के क्या शीर्षक हैं? उनका उल्लेख करें।
3. शिक्षा के अधिकार अधिनियम का विश्लेषण करें।
4. समावेशी शिक्षा की क्या अवधारणा है? स्पष्ट करें।
5. कुछ लोगों का मानना है कि समावेशी शिक्षा के नाम पर विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को सामान्य विद्यालयों में नामांकित करके उनके

सर्वांगीण विकास को रोका जा रहा है। आप इस विचार से सहमत है या नहीं? तर्क सहित उत्तर दें।

6. विद्यालयों में शिक्षण के दृष्टिकोण से सूचना एवं संचार तकनीकी की आवश्यकता क्यों है? उदाहरण सहित समझाएँ।
7. एक विद्यालय को सृजनशील बनाने के लिए कौन–कौन से प्रयास किए जाने चाहिए? विद्यालय भवन को केन्द्र में रखकर बताएं।
8. विद्यालय में परिवर्तन लाने के दृष्टिकोण से एक शिक्षक की क्या भूमिका हो सकती है? उदाहरण देते हुए समझाएं।
9. कला समेकित शिक्षा से विद्यालयी परिवेश में होने वाले परिर्वतन का उल्लेख करें।
10. महात्मा गाँधी के अनुसार सात सामजिक पापकर्म क्या है?

इकाई 3

विद्यालयी शिक्षण की व्यवस्थाएँ

- परिचय
- सीखने के उद्देश्य
- कक्षाकक्ष की प्रकृति
    - कक्षाकक्ष के विविध स्वरूप– पारम्परिक, सृजनात्मक व नवाचारी
- कक्षाकक्ष संचालन : व्यवस्थाओं की समझ
    - कक्षाकक्ष की व्यवस्था–प्रबंधन से संबंधित कुछ तकनीकी बातें
    - बालकेन्द्रित व लोकतांत्रिक कक्षा की संकल्पना
    - लोकतांत्रिक कक्षा की संकल्पना
- सीखने की योजना : पाठ–योजना से आगे
- पाठ्य–सहगामी क्रियायें
    - योजना और क्रियान्वयन
- अनुपूरक शिक्षण : अवधारणा एवं योजना
    - योजना निर्माण एवं क्रियान्वयन
- कक्षाकक्ष की प्रमुख चुनौतियाँ
- विद्यालय में आकलन एवं मूल्यांकन की व्यवस्था सतत एवं व्यापक आकलन प्रगति–पत्रक
- आकलन व मूल्यांकन
    - आकलन की अवधारणा
    - मूल्यांकन की अवधारणा
- आकलन और मूल्यांकन
    - आकलन की रूपरेखा और उसका संचालन

- मूल्यांकन की विधियाँ
  - रचनात्मक मूल्यांकन
  - संकलनात्मक मूल्यांकन
  - कसौटी संदर्भित मूल्यांकन
  - आदर्श संदर्भित मूल्यांकन
- सतत एवं व्यापक मूल्यांकन
  - सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की अवधारणा
  - सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रक्रिया
  - सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के क्रम में आनेवाली चुनौतियां
- प्रगति रिपोर्ट का विश्लेषणात्मक अध्ययन
- विद्यार्थियों का प्रगति–पत्रक
- विद्यालय का प्रगति–पत्रक
- समेकन

परिचय

कक्षाकक्ष का विद्यालय में अपना एक प्रमुख स्थान है जहां बच्चों को शिक्षित करने का काम अधिकृत रूप से चलता रहता है। यह विदित है कि किसी भी विद्यालय में बच्चों का अधिकतर समय कक्षाकक्ष के अन्दर ही व्यतीत होता है। अतः ज़ाहिर है कि बच्चों की शिक्षा पर कक्षाकक्ष के स्वरूपों का विशेष प्रभाव पड़ता होगा। इसलिए इन कक्षाओं के भीतर किस प्रकार से शिक्षा की प्रक्रियाएं चलती हैं और उनमें किन–किन की भूमिका होती है, इसपर आलोचनात्मक रूप से विचार करना जरूरी है। इस प्रबल मान्यता की पड़ताल भी आवश्यक है, 'क्या कक्षाकक्ष के अस्तित्व के बिना शिक्षा की प्रक्रिया नहीं चल सकती?'

साथ–ही, यह भी स्पष्ट है कि बदलते परिवेश में शिक्षक की भूमिका भी बदल रही है। अतः शिक्षकों के लिए न सिर्फ अपने कार्य की नई चुनौतियों को जानने की आवश्यकता है बल्कि उनके लिए स्वयं को तैयार करना भी जरूरी है। एक सुव्यवस्थित कक्षाकक्ष हेतु शिक्षक का विषय ज्ञान, कक्षा के पूर्व की तैयारियाँ, कक्षा के दौरान बेहतर प्रस्तुतीकरण एवं प्रबंधन सभी महत्वपूर्ण हैं जिनकी विवेचनात्मक समझ उन्हें होनी चाहिए।

बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षकों को केवल कक्षाकक्ष के शैक्षणिक प्रक्रियाओं तक सीमित नहीं होना चाहिए बल्कि विद्यार्थियों को पाठ्य–सहगामी क्रियाओं में शामिल करने एवं बेहतर वातावरण निर्माण के लिए भी सदैव तत्पर रहना चाहिए। यह तभी संभव है जब शिक्षक स्वयं में कक्षाकक्ष प्रक्रियाओं के प्रति एक आलोचनात्मक व विकासात्मक दृष्टिकोण का निर्माण करें।

सीखने के उद्देश्य

- कक्षाकक्ष की बुनियादी व्यवस्था को समझते हुए उनके प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण विकसित कर पाएंगे।
- कक्षाकक्ष में चलनेवाली विभिन्न प्रक्रियाओं एवं उनके प्रकृति का विश्लेषण कर सकेंगे।
- कक्षाकक्ष की प्रक्रियाओं में पाठ–योजना की भूमिका को समझ सकेंगे।
- अपने विद्यालय के संदर्भ में अनुपूरक शिक्षण के महत्त्व एवं आवश्यकताओं से अवगत हो सकेंगे।

- कक्षाकक्ष की प्रक्रियाओं से संबंधित विभिन्न चुनौतियों के सम्बंध में विस्तृत समझ विकसित कर पाएंगे।

कक्षाकक्ष की प्रकृति

सामान्य अवधारणा के अनुसार, कक्षाकक्ष एक ऐसी भौतिक व्यवस्था है जहां अध्यापकों की सहायता से विद्यार्थिंयों द्वारा ज्ञानसृजन का कार्य किया जाता है। भौतिक संरचना के दृष्टिकोण से कक्षाकक्ष विद्यालय की एक सरल इकाई है परन्तु कक्षा को मात्र भौतिक इकाई के रूप में सीमित करके नहीं समझा जा सकता। इसके माध्यम से चलनेवाली प्रक्रियाओं की समझ के लिए इसको समझने के दायरे को भी विस्तृत करना होगा। आगे प्रसिद्ध शिक्षाविद् प्रो. कृष्ण कुमार की पुस्तक, 'राज, समाज और शिक्षा' के अध्याय 'कक्षा का ढाँचा' से कुछ अंशों को दिया गया है, जिनके माध्यम से हम कक्षाकक्ष की अवधारणा व संरचना पर विश्लेषण करेंगे।

कई वर्ष पहले एक कहानी लिखते हुए मेरा वास्ता एक ऐसे बच्चे से पड़ा, जो स्कूल में अपने वार्षिक प्रगति से क्षुब्ध है। कक्षा में उसके मास्टर साहब अकसर कहा करते हैं कि अमुक बात उसे दो साल पहले जान लेनी चाहिए थी। बच्चा सोचता रह जाता है कि जो बात वह दो साल पहले नहीं जान सका, क्या वह अब नहीं जानी जा सकती? आखिर ये दो–दो साल के टुकड़े कब तक चलेंगे? इस बच्चे की दुविधा आधुनिक विश्व में नई पीढ़ी की सबसे व्यापक और गहरी दुविधा की बानगी है। वह जीवन के अत्यन्त रूढ़ विभाजन से उत्पन्न हुई है। जीवन का विभाजन बहुत नई बात नहीं है; बचपन, जवानी, प्रौढ़ावस्था और बुढ़ापा पुराने समय से संसार की तमाम जातियों में जीवनखण्डों की तरह मान्य रहे हैं। लेकिन युवावस्था का शेष जीवन से अलगाव तथा युवावस्था के भीतर विकासक्रम का अत्यन्त यांत्रिक तथा बारीक विभाजन आधुनिक व्यवस्था की देन है। इसी विभाजन की अभिव्यक्ति है कक्षा की अवधारणा, जो पश्चिम में अधिक–से–अधिक चार सौ और भारत में दो सौ वर्ष पुरानी है। आज विश्व भर में शिक्षा की आधारशिला कक्षा है। इवान इलिच ने अपनी पुस्तक 'डीस्कूलिंग सोसाइटी' में बतलाया है कि शिक्षा हम सब पर कक्षा का लेबल लगा देती है जिसे जीवन भर लटकाए रहते हैं। कौन कितनी कक्षाएँ पढ़कर शिक्षा से अलग हुआ, इसी पर जीवन में उसकी सम्भावनाएँ निर्भर होती हैं।

कक्षाओं में विभक्त कर देने से शिक्षा एक बाधा–दौड़ बन जाती है। हर 'ऊँची' कक्षा की शिक्षा बच्चे को आमंत्रित करने के स्थान पर उसके रास्ते में बाधा बनकर खड़ी हो जाती है। शिक्षा का इससे ज़्यादा विकृत रूपान्तरण और कुछ नहीं हो सकता कि वह आकर्षित करने की जगह रोके। इस रूपान्तरण की पृष्ठभूमि में किसी शासन की यह अघोषित इच्छा छिपी हो सकती है कि शिक्षा

के माध्यम से समाज सीढ़ियों के आकार में व्यवस्थित हो जाए। ऐसी व्यवस्था के अन्तर्गत कक्षाओं की बाधा किसी–न–किसी स्तर पर अधिकांश विद्यार्थियों को रोक लेगी और उनका अल्पांश ही अन्तिम कक्षाओं तक पहुँच सकेगा। इस शिक्षा पद्धति का सारा जोर अधिक–से–अधिक विद्यार्थियों को किसी–न–किसी स्तर पर अयोग्य घोषित कर देना है। कक्षाओं के क्रम में जो जितने अधिक समय रह लेता है, वह उतना ही अधिक शिक्षित कहलाता है तथा समाज में उतने ही ऊँचे मुआवज़े और सम्मान का अधिकारी होता है। कक्षा और समाजिक प्रतिष्ठा का यह गठबन्धन स्कूल में ही आरम्भ हो जाता है। छोटे और बड़े बच्चों को स्कूल में भिन्न किस्म की सुविधाएँ मिलती हैं। स्कूल के बाहर, घर तथा अन्य स्थानों पर बच्चे अपनी कक्षा से जाने जाते है; वयस्क समाज में उनका स्थान उनके स्तर से तय होता है। छोटे बच्चे को कदम–कदम पर महसूस होता है कि यह दुनिया वयस्कों की है। अतः इसमें भाग लेने के लिए जल्दी–से–जल्दी वयस्क हो जाना ज़रूरी है। ऐसी अनेक शिकायतें स्कूलों में प्रतिदिन सुनने को मिलती हैं जिनमें बच्चा जल्दी बड़ा हो जाने या दिखने की चिन्ता में कोई अपराध या स्कूल के नैतिक और अनुशासनिक व्यवस्था का उल्लंघन कर बैठता है।

बचपन का सामाजिक जीवन से पृथकरण कक्षा–व्यवस्था की सबसे बड़ी उपलब्धि है। शिक्षा की पुरानी व्यवस्थाओं में बच्चे और बड़े का भेद नहीं था। हमारे यहाँ पुरानी गुरूकुल प्रणाली में बड़ों के सानिध्य में बच्चों का रहना बहुत ज़रूरी समझा जाता था। पैमाना पाठ्यक्रम का होता है, आयु का नहीं। पांडिचेरी के श्री अरविन्द आश्रम के अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र में बच्चों को यह छूट दी जाती है कि वे अपनी दिलचस्पी के अनुसार विषय का चुनाव करके किसी भी कमरे में चल रहे काम में जुट जाएँ। बिहार में श्रमशाला नामक संस्था में बच्चे अपने अध्यापकों तथा संस्था से सम्बन्धित अन्य वयस्कों के साथ खेतों में काम करते हैं। लेकिन, सच्चाई यही है कि ये संस्थाएँ अपवादस्वरूप हैं क्योंकि सामान्य नियम के रूप में हमारी कायदा पसन्द सभ्यता यह मान चुकी है कि हर उम्र की आवश्यकताएँ पृथक और सुनिश्चित होती हैं।

कहा जा सकता है कि जनशिक्षा के व्यापक प्रसार ने कक्षाओं में बँटी शिक्षा व्यवस्था को आवश्यक बना दिया। आजकल प्रचलित जनशिक्षा के सन्दर्भ में कक्षाक्रम की व्यवस्था निश्चय ही सुविधाजनक प्रतीत होती है। कक्षाक्रम से प्राप्त होने वाली सुविधा का मुख्य कारण यह है कि वर्तमान जनशिक्षा का आधार साक्षरता और पुस्तकज्ञान है, सामाजिक अनुभव और समझ नहीं। जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूँ, साक्षरता एक नई धारणा है जिसका सम्बन्ध प्रचारित ज्ञान से है। इसके विपरित शिक्षा एक पुरानी धारणा है जिसका सन्दर्भ सामाजिक जीवन और सभ्यता है। इस अर्थ में देखें तो शिक्षा के लिए कक्षाक्रम आवश्यक

प्रतीत नहीं होता। उल्टे शिक्षा की कक्षाक्रम से मुक्ति समाज के अधिकाधिक लोगों की शिक्षा के विकास में मददगार हो सकती है।

शिक्षा पर कक्षा व्यवस्था के प्रभाव का अध्ययन करने की दृष्टि से यदि एक स्कूल सन्दर्भ चुना जाए तो कक्षा का अस्तित्व इन दो रूपों में दिखाई देता है :

1. स्कूल को सीढ़ीनुमा ढाँचा प्रदान करनेवाली व्यवस्था;
2. बच्चों के एक निश्चित समूह को शेष स्कूल से अलग करने वाला, एक निश्चित विन्यास में व्यवस्थित कमरा।

कक्षा इन दोनों भूमिकाओं को एक साथ बखूबी निभाती है। स्कूल को सीढ़ीनुमा ढाँचे में बिठानेवाली व्यवस्था के रूप में वह निम्नाँकित चार उद्देश्यों के तहत काम करती है:

एक : कक्षा के बच्चों का अन्य कक्षाओं के बच्चों से अलगाव पैदा करना।

दो : ज्ञान को काल्पनिक वार्षिक खण्डों में बाँटना।

तीन : बच्चे के विकास को साँचे में ढालना।

चार : सामाजिक वर्ग–विभाजन का पूर्व संस्कार बच्चे को देना।

किसी एक कक्षा में होने के कारण बच्चे का परिचय क्षेत्र अपनी आयु के बच्चों तक सीमित हो जाता है। अपने से छोटे और बड़े बच्चों से अलग कर दिए जाने से वह न केवल घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं बना पाता, बल्कि उनके प्रति एक ऐसा रवैया अपनाना सीख लेता है, जिसे सामन्ती कहना अनुचित न होगा। बच्चों में पारिवारिक स्तर पर जैसा सौहार्द और आयु भिन्नता के बावजूद जैसा हेलमेल पाया जाता है, वैसा–ही स्कूल में होना चाहिए। जीवन के उन तमाम छोटे–छोटे अनुभवों और दिक्कतों, जिनका सामना बच्चों को करना होता है, वे अपने बड़े मित्रों की मदद से ज़्यादा आसानी से समझ सकते हैं। सच तो यह है कि अपने से कुछ बड़े और छोटे बच्चों के साथ रहना वैसा–ही शिक्षाप्रद अनुभव हो सकता है जैसा वयस्क या प्रौढ़ शिक्षक के साथ काम करने से मिलता है। कक्षायी व्य वस्था ऐसा अनुभव असम्भव बना देती है। वह न केवल बच्चों को अपने से कुछ छोटे और बड़े बच्चों से अलग कर देती है, बल्कि स्कूल के उन अनेक अध्यापकों से भी अलग कर देती है, जो उन्हें नहीं पढ़ाते। बच्चों का वयस्कों से परिचय और उनके साथ काम करने का अनुभव बहुत ज़रूरी है। मौजूदा सामाजिक व्यवस्था में बच्चे केवल उन वयस्कों के सम्पर्क में आ पाते हैं, जिनसे उनके अभिभावकों के सम्बन्ध होते हैं। कक्षा में एक अध्यापक से बँधकर वे स्कूल में उपलब्ध अन्य वयस्कों से परिचय की सम्भावना खो देते हैं। देश में लगभग हर सरकारी प्राथमिक शालाओं की ऐसी व्यवस्था है, जिसमें एक अध्यापक के ज़िम्मे एक कक्षा पूरी तरह से दे दी जाती है। बच्चे लगातार प्रत्येक दिन एक व्यक्ति के साए में रहकर ऊब जाते हैं। उस व्यक्ति से कुछ नया सीखने की क्षमता और उसके साथ काम करने की दिलचस्पी उनमें नहीं रह जाती। उनके बीच की सेतु किताबें रह जाती हैं जो वैसे भी बहुत जीवन्त नहीं होतीं। कुछ गैर–सरकारी, तकनीकी शिक्षा संस्थाओं में और प्राथमिक कक्षाओं में अलग–अलग विषयों के लिए अलग–अलग अध्यापक होते हैं। बच्चे एक व्यक्ति से बँधे नहीं रहते लेकिन उनका दायरा सीमित ही रहता है।

स्रोत : कृष्ण कुमार (2001), राज समाज और शिक्षा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

कक्षाकक्ष के विविध स्वरूप – पारम्परिक, सृजनात्मक व नवाचारी

किसी कक्षा को पारम्परिक, सृजनात्मक अथवा नवाचारी कहने के कई आधार हो सकते हैं। उदाहरण के तौर पर, कक्षा की संरचना, कक्षा में सीखने–सिखाने की प्रक्रिया, कक्षागत गतिविधियां इत्यादि। इन बिन्दुओं के आधार पर भी आप कक्षा के विषय में किसी मत पर पहुंच सकते हैं किन्तु उन मतों को संदर्भ में देखना आवश्यक हैं क्योंकि प्रत्येक दशा में कक्षा की पड़ताल के लिए निश्चित मानकों व आधारों को नहीं लिया जा सकता।

पारम्परिक कक्षाओं की छवि को हम उपरोक्त लेख–अंश के माध्यम से विश्लेषित कर सकते हैं। पारंपरिक कक्षाएँ मूल रूप से शिक्षक–केन्द्रित होती थी। समय के साथ शिक्षा के बदलते हुए परिदृश्य में आपने यह भी पाया होगा की कक्षाकक्ष के पारंपरिक स्वरूप में भी परिवर्तन हो रहा है। वर्तमान शैक्षणिक परिवेश में कक्षाकक्ष का स्वरूप भी छात्र अधिगम की सहजता को बढ़ाने के लिए परिवर्तित किया गया है। ऐसे में अधिगम के लिए कक्षाकक्ष को ही एकमात्र स्रोत नहीं माना गया है बल्कि अधिगम/सीखने के लिए सबसे आवश्यक शैक्षणिक परिवेश के निर्माण को माना गया है। शिक्षक अपनी सृजनात्मकता से सीखने को और भी रोचक बना सकते हैं और किसी विशेष पाठ के सीखने हेतु विद्यालय परिसर या विद्यालय उद्यान को भी कक्षाकक्ष का स्वरूप दे सकते हैं। अर्थात्, सृजनात्मकता से किसी भी वैसे स्थल को कक्षाकक्ष का रूप दिया जा सकता है जहाँ अधिगम संभव हो, अर्थात्, अधिगम स्थल कक्षाकक्ष का दूसरा रूप है।

कक्षाकक्ष में नवाचार के प्रयोग से तात्पर्य है कि पाठ के अवधारणा की स्पष्टता के लिए तकनीकी का प्रयोग तथा अधिगम की प्रक्रिया को रूचिकर बनाने के लिए पाठ्सहायक सामग्री का प्रयोग एवं शिक्षण हेतु उचित शिक्षण विधियों का चयन, छात्रों को गतिविधियों के माध्यम से कक्षा सहभागिता को बढ़ाना तथा छात्रों को विभिन्न परियोजना कार्यों के माध्यम से करके सीखने की क्षमता विकसित करना नवाचार की सबसे बड़ी चुनौती है।

कक्षाकक्ष संचालन : व्यवस्थाओं की समझ

कक्षाकक्ष में विद्यार्थी एवं शिक्षक दोनों महत्वपूर्ण घटक के रूप में हैं। कक्षाकक्ष में अधिगम की प्रक्रिया दोनों घटकों के संयुक्त प्रयासों से आरंभ होती है परंतु उस प्रक्रिया को जारी रखने तथा उसके सफल संचालन में शिक्षक की भूमिका अति महत्वपूर्ण रहती है। एक अच्छी, सुव्यवस्थित कक्षाकक्ष हेतु शिक्षक का विषय–ज्ञान, कक्षा के पूर्व की तैयारियाँ, कक्षा के दौरान बेहतर प्रस्तुतीकरण एवं प्रबंधन सभी महत्वपूर्ण हैं। ये साथ मिलकर शिक्षक को कक्षाकक्ष में सुव्यवस्थित परिवेश के निर्माण को प्रभावी व बेहतर शिक्षण–अधिगम सुनिश्चित करने में

सहायता प्रदान करते हैं। कक्षा की व्यवस्था के दौरान यह आवश्यक है कि उन सभी घटकों पर समुचित ध्यान दिया जाए जो कक्षा की व्यवस्था को प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं। साथ–ही कक्षाकक्ष के संचालन से संबंधित रूढ़ अवधारणाओं का बच्चों के अधिगम पर पड़ने वाले प्रभावों को भी समझना जरूरी है। उदाहरण के तौर पर कक्षा की एक रूढ़ अवधारणा यह है कि उसमें कोई बिना शिक्षक की अनुमति के हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। आधुनिक कक्षा की व्यवस्था को इस बंद कमरे की व्यवस्था से अलग करके देखने की आवश्यकता है जहां पर ज्ञान की प्रक्रिया में हस्तक्षेप करने की मनाही नहीं है। इस व्यवस्था में सब की सहभागिता और स्वप्रबंधन की नीति होनी चाहिए।

कक्षाकक्ष की व्यवस्था–प्रबंधन से संबंधित कुछ तकनीकी बातें

कक्षा प्रबंधन हेतु आपको निम्न बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए।

1. मानव संसाधनों का प्रबंधन
2. भौतिक संसाधनों का प्रबंधन

मानव संसाधनों का प्रबंधन

मानव संसाधनों के प्रबंधन के अंतर्गत कक्षा में उपलब्ध दो घटक हैं – शिक्षक तथा विद्यार्थी। शिक्षा के बदलते परिदृश्य में जहाँ कक्षा का स्वरूप बालकेन्द्रित हो रहा है उसमें अधिगम का एक स्रोत स्वयं विद्यार्थी भी है। इसके अलावा कक्षा में अधिगम के वातवरण को बनाये रखने के लिए शिक्षक को प्रभावी कक्षा प्रबंधन हेतु मानव संसाधनों के संदर्भ में निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है।

छात्र सहभागिता – शिक्षण–अधिगम की प्रक्रिया के संचालन के क्रम में आप निम्न प्रश्नों पर विचार करें।

- शिक्षण–अधिगम की प्रक्रिया में कितने विद्यार्थियों ने भाग लिया?
- कक्षा–सहभागिता में भाग लेने वाले बालक एवं बालिकाओं की संख्या ज्ञात करें।
- यह भी देखें कि कक्षा सहभागिता में बालक या बालिकाओं में किसकी बारंबारता अधिक थी?

अनुशासन – कक्षा में अनुशासित न होने पर एक शिक्षक का अधिक समय एवं उर्जा कक्षा को शांत करने तथा अधिगम का वातावरण तैयार करने में ही लग

जाता है। अनुशासित कक्षा सफल कक्षा प्रबंधन की एक महत्वपूर्ण कड़ी है परन्तु यह ध्यान देने की बात है कि कक्षा में स्वानुशासन हो न कि आरोपित–अनुशासन।

भौतिक संसाधनों का प्रबंधन

भौतिक संसाधनों के प्रबंधन में आपके अनुसार अधिगम हेतु कौन–कौन से आवश्यक संसाधन हैं? इनकी एक सूची तैयार करें।

आप पाएंगे कि इस सूची में सर्वप्रमुख स्थान निम्नांकित बिन्दुओं का होगा।

(i) विद्यार्थी सुलभ सुविधाएँ

(ii) शिक्षा तकनीकी के विभिन्न आयाम

विद्यार्थी सुलभ सुविधाएँ – इन सुविधाओं के अंतर्गत वैसी सारी सुविधाएँ आती हैं जो अधिगम के वातावरण के निर्माण का घटक हैं। इनमें से कुछ प्रमुख घटक हैं छात्रों की संख्या के अनुरूप बैठने की उचित व्यवस्था, कक्षाकक्ष में उचित रौशनी एवं हवा।

शिक्षा तकनीकी के विभिन्न आयाम – शिक्षा तकनीकी के विभिन्न आयामों की उपलब्धता एवं उनका समुचित प्रयोग कक्षा में अधिगम को उत्प्रेरित करता है। सामान्य एवं जटिल प्रकरणों की समझ बढ़ाने के लिए तकनीकी संसाधन अत्यंत उपयोगी हैं।

समय का प्रबंधन – कक्षाकक्ष प्रबंधन में उपरोक्त घटकों के अतिरिक्त समय प्रबंधन एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटक है तथा कक्षा की प्रत्येक गतिविधि समय से आरंभ होकर निश्चित समय पर समाप्त होना ही समय प्रबंधन का सूचक है।

कक्षा की व्यवस्था के लिए समय प्रबंधन

- शिक्षक को समय सारणी में कितना समय आवंटित किया गया है?
- उपलब्ध समय में से कितना समय शिक्षक विद्यार्थियों को विभिन्न निर्देश देने के लिए रखना चाहते हैं?
- कितना समय शिक्षक पाठ–योजना में विद्यार्थियों की गतिविधियों के लिए एवं अन्य संबंधित कार्यो के लिए रखना चाहते हैं?
- कितना समय विद्यार्थियों को पुनरावृत्ति, प्रश्न पूछने तथा आवश्यक बिन्दुओं को कॉपी पर लिखने के लिए दिया जाना है?

इस प्रकार यदि शिक्षक समय को भिन्न मदों में बाँट लें तथा इसके अनुपालन को सुनिश्चित करें तो कक्षा–व्यवस्था को काफी हद तक प्रभावशाली बनाया जा

सकता है। साथ–ही निर्धारित निर्देशों के अनुपालन में लचीलापन भी होना चाहिए।

बालेकेन्द्रित व लोकतांत्रिक कक्षा की संकल्पना

बाल केन्द्रित शिक्षा से हमारा तात्पर्य यह है कि सीखने की वैसी प्रक्रिया जो बच्चे सहज स्वभाव से सहमत होते हुए आगे सीखने के लिए प्रेरित हों चाहे वह खेल के माध्यम से हो या किसी क्रियाकलाप के माध्यम से कर के सिखाने की प्रक्रिया हो।

परंपरागत शिक्षण में अध्यापक पूरी कक्षा को एक साथ निर्देशित करता है तथा किसी भी विद्यार्थी/छात्र को स्वतंत्र रूप से कार्य करके सीखने का अवसर नहीं रहता है। रट लेने की प्रवृति को ही श्रेष्ठ माना जाता है और इसके आधार पर विषय के निर्देशों को पढकर सवाल हल करने की आधारभूत दक्षता विकसित कर ले इसे ही छात्र के भविष्य के लिए उपयोगी माना जाता है।

बाल–केन्द्रित शिक्षा ठीक इसके विपरीत है। इसमें छात्रों को आपस में विचार–विमर्श के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप छात्र किसी भी समस्या के बारे में सहज होकर बात कर पाते हैं तथा समस्याओं को हल करने के लिए एवं अपनी जिम्मेदारी से पहल करते हैं। बालकेन्द्रित शिक्षा में छात्रों को मात्र सामग्री तथा अवसर उपलब्ध करवाया जाए और प्रोत्साहित किया जाए तब आप पाएंगे कि छात्र के अंदर एक उत्सुकता व सृजनात्मकता छुपी रहती है, जो उभर कर सामने आ पाता है। बालकों में वैयक्तिक विभिन्नता के कारण प्रत्येक बालक की सृजनशीलता के अनुरूप अधिगम की प्रक्रिया गतिशील रहती है।

अब आप यह सोच रहे होंगे कि फिर ऐसे अधिगम में शिक्षक की क्या भूमिका होगी?

शिक्षक की भूमिका ऐसे वातावरण का निर्माण करना है जिससे छात्र को अधिगम हेतु संसाधन व परिस्थितियाँ सुलभ हो। अध्यापक के कार्य–प्रक्रिया की विधि बताने तथा उसमें परिवर्तन करने जैसे कार्य रहते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि इस प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका एक सलाहकार, मार्गदर्शक और संसाधनों के प्रबंधक व परिस्थितियों के सृजनकर्ता के रूप में होती है। इस प्रकार हम यह पाते हैं कि अधिगम के लिए उचित वातावरण, उत्साह और समूह एवं संसधनों की आवश्यकता, हल्की सहायता, मार्गदर्शन या निर्देशन के आधार पर भी सुगमतापूर्वक अधिगम हो सकता है।

बालकेन्द्रित उपागम की कुछ मान्यताएं

- विमर्श/खेल के माध्यम से तथा गतिविधियों में बच्चों को सीखने में व्यस्त करके भी अधिगम संभव है।
- शिक्षक–अधिगम का एकमात्र स्त्रोत नहीं है बल्कि छात्र दूसरे छात्रों से अंतःक्रिया करके भी सीखते हैं।
- अवधारणाओं का पूर्ण अधिगम तभी संभव है जब हम स्वयं से करके सीखते हैं।
- कर के सीखने की प्रक्रिया में उत्पन्न कौतुहल छात्र को चिंतन के लिए अभिप्रेरित करता है।
- किसी के अनुभव को सुनकर/देखकर भी छात्र पुनरावृत्ति कर सीखते हैं।

अतः हम यह कह सकते हैं कि बालकेन्द्रित उपागम में विद्यार्थियों में करके सीखने के विभिन्न अनुभव प्राप्त होते हैं और यह सफलता उन्हें आनन्द प्रदान करती है तथा उनमें आत्मविश्वास का विकास होता है।

लोकतांत्रिक कक्षा की संकल्पना

कक्षा ऐसे विद्यार्थियों का समूह है जिसमें प्रत्येक विद्यार्थी की सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक पृष्ठभूमि भिन्न है। ऐसी स्थिति में सभी विद्यार्थियों के बीच अधिगम की प्रक्रिया को संचालित करना शिक्षक के लिए एक बड़ी चुनौती है। कक्षा को लोकतांत्रिक स्वरूप प्रदान करने में शिक्षक के व्यवहार की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है। कक्षाकक्ष के संदर्भ में लोकतंत्र की अवधारणा को मुख्यतः दो रूपों में देखा जा सकता है:–

- **विद्यार्थी के संदर्भ में लोकतंत्र** – इस संदर्भ में लोकतंत्र से हमारा आशय यह है कि छात्रों के बीच किसी खास वर्ग या धर्म या जाति के आधार पर कक्षा में किसी के बीच विभेद न हो बल्कि सभी विद्यार्थियों को समान सीखने का अवसर मिले।
- **शिक्षक के संदर्भ में लोकतंत्र** – इससे हमारा तात्पर्य यह है कि शिक्षक में उन लोकतांत्रिक भावनाओं को विकसित करना है जिससे वह कक्षा के स्वरूप को अधिगम के एक ऐसे सदन के रूप में विकसित कर सके जिसमें वह अपने विद्यार्थियों की भावनाओं का सम्मान करें और अधिगम प्रक्रिया को नियंत्रित न करे बल्कि उसे उचित दिशा प्रदान करता रहे।

बालकेन्द्रित कक्षाओं का स्वरूप सदैव लोकतांत्रिक ही होता है और यदि इसका स्वरूप परिवर्तित हुआ अर्थात्, शिक्षक की भूमिका यदि कक्षा पर हावी होने लगी तो कक्षा का स्वरूप लोकतांत्रिक न होकर शिक्षक–केन्द्रित हो जाएगा। लोकतांत्रिक अधिगम प्रक्रिया में अधिगमकर्ता मार्गदर्शक द्वारा सम्मानित महसूस करता है और मार्गदर्शक अधिगमकर्ता की भावनाओं का सम्मान कर उसकी योग्यता को बढ़ाने के लिए अभिप्रेरित करते हैं।

सीखने की योजना : पाठ–योजना से आगे

पाठ योजना कैसी होनी चाहिए? क्या इसमें बदलाव होना चाहिए? इन सवालों की समझ आगे दिए गए गद्यांश से मिलती है। यह गद्यांश गिजुभाई बधेका द्वारा लिखी गई पुस्तक 'दिवास्वप्न' से ली गई है।

मैंने देखा कि इन लड़कों को मुझे पढ़ाना था! इन मसखरे, ऊधमी, ऐंठबाज और विचित्र लड़कों को! मन थोड़ा डर सा गया, छाती भी धड़क गई, लेकिन फिर सोचा–परवाह नहीं, धीरे–धीरे देख लूँगा।

मैं रात नोट की हुई बातें जेब से निकाल कर देखने लगा। लिखा था – पहले शान्ति का खेल, फिर कक्षा की सफाई की जाँच, फिर सहगान, फिर वार्तालाप इत्यादि।

मैंने लड़कों से कहा, 'आओ, हम शान्ति का खेल खेलें। देखो, मै जब 'ओम् शान्तिः' कहूँ, तुम सब चुपचाप बैठ जाना। बराबर पालथी मारकर बैठना। देखना, कोई हिलना–डुलना तक नहीं। फिर मैं खिड़कियाँ बंद करूंगा तो हर तरफ अंधेरा होगा। तुम सब शान्त रहना। तुम्हें आसपास का कोलाहल सुनाई देगा। उसको सुनने में बड़ा मज़ा आएगा। मक्खियों की भिनभिनाहट सुनाई पड़ेगी। अपनी सांसों की आवाज भी सुनाई पड़ेगी। फिर मै गाऊंगा और तुम सब चुपचाप सुनना।'

इतना कह चुकने के बाद मैंने शान्ति का खेल शुरू किया। मैं 'ओम् शान्तिः' बोला, लेकिन लड़के तो धक्का–मुक्की और बातों में लगे थे। दो–चार बार बोला, लेकिन मानो मेरी आवाज किसी को सुनायी ही न दी हो जैसे! मैं मन–ही–मन सकपकाया। यह कैसे कहता कि 'चुप रहो! गड़बड़ मत करो!' तमाचा मारकर डराता भी कैसे? खैर, मैं आगे बढ़ा और खिड़कियाँ बन्द कर दीं। अंधेरा हुआ और ध्यान चला। लड़कों में से कोई 'ऊँ–ऊँ' करने लगा, कोई 'हाऊ–हाऊ' करने लगा, तो कोई 'धम–धम' पैर पटकने लगा। इतने में एक ने ताली बजाई और सब ताली बजाने लगे। फिर कोई हँसा और हँसी उड़ने लगी। मैं खिसिया गया। मुँह फीका पड़ गया। मैंने खिडकियाँ खोल दीं

और थोड़ी देर कमरे से बाहर जाकर वापस आया। सारी कक्षा ऊधम मचाने में लगी थी। लड़के एक–दूसरे से 'ओम् शान्तिः' कह रहे थे। कुछ खड़े होकर खिड़कियाँ बन्द कर रहे थे।

मैंने सोचा – मेरे ये नोट्स बेकार हैं। घर में बैठे–बैठे अटकलें लगाना और कल्पना में पढ़ा लेना सहज था, लेकिन यह तो लोहे के चने चबाने जैसा है। जो अब तक कोलाहल और उधम में ही पले हैं, उनके सामने शान्ति का खेल अभी तो भैंस के सामने बीन बजाने के समान है। लेकिन चिन्ता नहीं। अच्छा ही हुआ कि पहले ही कौर में मक्खी आ गयी। कल से अब नया काम आरम्भ करूँगा।

स्रोतः बधेका, गिजुभाई (2011). दिवास्वप्न, अठारहवीं आवृत्ति. नई दिल्लीः नेशनल बुक ट्रस्ट.

विद्यालयी शिक्षण में पाठ–योजना को एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में देखा जाता रहा है। लेकिन पाठ–योजना का प्रारूप इतना पुराना और अप्रभावी हो चुका है कि वह प्रशिक्षुओं में किसी प्रकार के शैक्षणिक चिंतन को बढ़ावा देने में सक्षम नहीं है। इस क्रम में पाठ–योजना के पारंपरिक स्वरूप में क्रांतिकारी बदलाव लाने की अपेक्षा है जिसके नए स्वरूप में बालकेन्द्रित शिक्षा, लोकतांत्रिक सोच, सृजनशीलता, आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र इत्यादि अवधारणाओं को बढ़ावा दिया जा सके। इसी संदर्भ में यहां 'पाठ–योजना' (Lesson Plan) के पारंपरिक प्रारूप के स्थान पर 'सीखने की योजना' (Learning Plan) के एक लचीले, तार्किक एवं नवाचारी स्वरूप को लाने की कोशिश है।

पाठ–योजना के पारंपरिक स्वरूप को देखें तो उसके विभिन्न हिस्सों के बीच कोई तालमेल नहीं दिखता है। हर हिस्से को मूलतः औपचारिकता के लिए लिख दिया जाता है और शिक्षक अपने चिंतन–मनन में उनका शायद ही उपयोग कर पाते हैं। साथ–ही, पाठ योजना के सभी भागों के मायनों को बहुत ही निश्चित कर दिया गया है। टी.एल.एम. से तात्पर्य वहीं निरस वस्तुएं हैं जो शिक्षक बना कर ले आते हैं और कई बार सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में उन्हे जबरदस्ती थोप दिया जाता है।

प्रस्तुत 'सीखने की योजना' (Learning Plan) में कई ऐसे सवालों को उठाया गया है जिससे प्रशिक्षु शिक्षण की प्रक्रिया तथा उसमें अपनी भूमिका को बेहतर तरीके से समझ सकेंगे। इसके साथ–साथ, नये प्रारूप में प्रशिक्षुओं से कई अपेक्षाएं भी हैं, जैसे, अलग–अलग नीतिगत दस्तावेजों से अपने लर्निंग प्लान को जोड़कर देखना, अलग–अलग पाठ्यपुस्तकों से लेकर पाठ्यक्रम तक को संदर्भ में रखकर लर्निंग प्लान को बनाना।

सीखने की योजना में कक्षा के लिए रणनीति निभाने की भूमिका एक नियंत्रक की नहीं है, न ही उसका कार्य विद्यार्थियों पर अपना ज्ञान और अपनी समझ को थोपना है बल्कि कक्षा में शिक्षक की भूमिका एक मार्गदर्शक, सृजनकर्त्ता तथा सहयोगी की होती है। उसे इस तथ्य के प्रति संवेदनशील होना चाहिए कि प्रत्येक विद्यार्थी कक्षाकक्ष के बाहर भी लगातार कई बातों का ज्ञान पा रहा है व सीख रहा होता है। सीखने की योजना के निर्माण के लिए एक शिक्षक को निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए :–

- कक्षा में चर्चा किए जानेवाले विषयवस्तु के संबंध में बच्चों एवं शिक्षक का पुर्व अनुभव क्या है?
- पढ़ाये जाने वाले विषय की प्रकृति कैसी है?
- पढ़ाये जाने के लिए चयनित पाठ/पाठ्यांश की प्रकृति तथा स्वरूप क्या है?
- बच्चों को पढ़ाया जानेवाला विषयवस्तु क्यों महत्वपूर्ण है?
- किस प्रकार की शिक्षण–विधियों के माध्यम से कक्षा में वैसे विषयवस्तु को समझाना बेहतर होगा? उन शिक्षणविधियों को चुनने का क्या आधार है?
- क्या शिक्षा के मौलिक सिद्धांतों का उन शिक्षण–विधियों में समावेश है अर्थात शिक्षणशास्त्र के अनुसार सीखने की योजना को बनाया जा रहा है या नहीं।
- विद्यार्थियों की सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि क्या है जिसे कक्षाकक्ष में शिक्षण–अधिगम के लिए सीखने की योजना में विभिन्न गतिविधियों तथा उदाहरणों को विचार पूर्ण रूप से चयनित तथा समायोजित किया जा सके?
- सीखने की योजना कितनी लचीली है तथा उसकी चुनौतियां क्या हैं? शिक्षण के जीवन्त माहौल में यह आवश्यक नहीं है कि सीखने की योजना का क्रियान्वयन वैसे ही हो जिस प्रकार से सोचा गया था। इसलिए, शिक्षण में आनेवाले सम्भावित चुनौतियों को भी सीखने की योजना का अभिन्न अंग बनाया गया है।

पाठ्य सहगामी क्रियाएं

शिक्षण–अधिगम की प्रक्रिया में वैसी सभी गतिविधियां या क्रियाकलाप जो विषय–शिक्षण के साथ–साथ चलती रहती हैं तथा विद्यार्थियों के अधिगम को प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं, पाठ्यसहगामी क्रियाएं कहलाती हैं। इन क्रियाओं के माध्यम से अधिगम को रूचिकर तथा सरल भी बनाया जाता है। जैसे – खेल–कूद, संगीत, नृत्य, अभिनय, बागवानी, वाद–विवाद, भ्रमण, प्रदर्शनी इत्यादि क्रियाओं में विद्यार्थी अपनी योग्यता, रूचि तथा चुनाव के अनुसार भाग लेते हैं। ये क्रियाएँ सभी विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य नहीं होते हैं। शैक्षणिकीय क्रियाएँ पाठ्य–सहगामी क्रियाएँ कहलाती हैं।

पाठ्यसहगामी क्रियाएँ विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास में सहायक, उनकी छिपी हुई प्रतिभाओं को बाहर निकालने में, रूचियों को जानने आदि में उनके शैक्षणिक कार्य के संपूरक तथा समाजीकरण की क्रिया में सहायक होती हैं।

पाठ्यसहगामी क्रियाएँ विद्यार्थियों के शारीरिक, मोटर (मांसपेशी संबंधी) साहित्यिक, सांस्कृतिक, नागरिकता, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा सौन्दर्यात्मक विकास में सहायक होती हैं जिससे उनका दृष्टिकोण व्यापक होता है।

पारंपरिक तौर पर, पहले पाठ्यगामी क्रियाओं पर ही अधिक जोर दिया जाता था और इन्हें विद्यालय की प्राथमिक क्रियाएँ समझा जाता था। अन्य पाठ्य सहगामी गतिविधियों पर बहुत कम महत्त्व दिया जाता था। यहाँ तक कि ऐसा समझा जाता था कि इन क्रियाओं में समय लगाना व्यर्थ है। परन्तु अब पाठ्यसहगामी क्रियाओं को बराबर महत्त्व दिया जाता है क्योंकि इन गतिविधियों द्वारा विद्यार्थी

आनंददायक वातावरण में बहुत–सी दक्षताएँ और कौशल अर्जित कर लेते हैं। इससे बच्चों में व्यक्तित्व का पूर्ण विकास होता है। विद्यार्थियों के अधिगम के समग्र विकास हेतु इन क्रियाओं को आवश्यक माना जाता है। विद्यालय में पाठ्य सहगामी क्रियाओं के आयोजन हेतु निम्न महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर ध्यान रखने की आवश्यकता हैः–

- गतिविधियों के आयोजन/संचालन हेतु समय तथा स्थान की उपलब्धता
- उपलब्ध समय तथा संसाधनों के अधिकतम उपयोग हेतु स्थान है।
- न्यायपूर्ण ढंग से क्रियाकलापों का चुनाव
- सुझावों का प्रावधान
- गतिविधियाँ संख्या में इतनी अधिक हों कि सभी विद्यार्थियों को विभिन्न गतिविधियों में भाग लेने का अवसर मिले।
- गतिविधियाँ कम लागत की हों ताकि वे विद्यालय के सीमित संसाधनों में भी आयोजित की जा सकें।
- गतिविधियां विद्यार्थियों की रूचि व योग्यता के अनुरूप हों।
- गतिविधियां ऐसी हों जो विद्यार्थियों को लगातार भाग लेने के लिए आकर्षित करें।

आप विद्यार्थियों द्वारा दैनिक जीवन में की जाने वाली गतिविधियों की सूची बनाएँ तथा ये सोचें कि क्या यह पाठसहगामी क्रिया हो सकती है? अपने उत्तर की पुष्टि तर्क द्वारा करें।

आपने पाया होगा कि इन गतिविधियों के माध्यम से भी विद्यार्थी अप्रत्यक्ष रूप से अधिगम करते हैं।

- प्रत्येक विद्यार्थी में व्यक्तिगत विभिन्नता के सिद्धांत के कारण कुछ–न–कुछ असमानताएँ रहती हैं। साथ–ही प्रत्येक बालक में कुछ क्षमताएँ जन्मजात होती हैं। शिक्षक द्वारा कक्षा में संचालित पठन–पाठन की प्रक्रिया तभी गुणात्मक मानी जाएगी जब छात्रों में अधिगम का स्तर उच्च हो।
- शिक्षण की यह गुणवता करके सीखने की प्रक्रिया के माध्यम से सरलता से हासिल की जा सकती है। बच्चे तब बेहतर ढंग से सीखते हैं जब अनौपचारिक वातवरण में खेलकूद करते हुए अपने तौर–तरीकों से काम करते हैं। यह सर्व–विदित है कि सुनने की अपेक्षा देखने से अधिक अधिगम होता है।

- महत्व – बच्चे जब स्वयं किसी भी कार्य को करते हैं तब उन्हें अनेक प्रकार के अनुभव प्राप्त होते हैं। यदि कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न हो तो छात्र आनंद का अनुभव करते हैं। यह आनंद उन्हें और आगे नये अनुभवों के लिए अभिप्रेरित करता है तथा उनमें आत्मविश्वास बढ़ता है। इस आत्मविश्वास से छात्रों में सीखने की प्रवृति जागृत होती है तथा अधिगम को बल मिलता है।
- गतिविधियाँ किसी प्रकार के सैद्धांतिक अधिगम की प्रक्रिया को व्यवहारिक रूप प्रदान करती हैं। गतिविधियों के माध्यम से किया गया अधिगम संपूर्ण अधिगम है। प्रारंभिक स्तर पर पढ़ने–सीखने की प्रक्रिया को गतिविधियों पर आधारित बनाने का मूल कारण यह है कि इस प्रक्रिया में विद्यार्थी में सीखने की प्रवृति, आत्मविश्वास, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, जिज्ञासा इत्यादि जैसे गुणों का विकास होता है।
- गतिविधियां जितनी अधिक होंगी, ज्ञानेन्द्रियां उतनी सक्रिय रहती हैं और अधिगम उतना ही स्थायी होता है।

योजना और क्रियान्वयन

पाठ्य सहगामी क्रियाओं की योजना बनाना तो सरल है किन्तु पूर्ण क्रियान्वयन जटिल है। इसी परिपेक्ष्य में कुछ पाठ्यसहगामी क्रियाओं की चर्चा अधिगम के विभिन्न संदर्भों में की जा रही है।

1. भाषा विकास के संदर्भ में :

(i) वाद विवाद प्रतियोगिता,
(ii) निबंध प्रतियोगिता,
(iii) कहानियाँ कहना
(iv) कविता वाचन,
(v) गीत गाना,
(vi) पहेलियाँ सुनाना,
(vii) अंतराक्षरी खेलना

2. शारीरिक विकास के संदर्भ में :

(i) दौड़ना,
(ii) झूलना,
(iii) तैरना,
(iv) खेल खेलना,

(v) फिसलना

(vi) पी. टी. और ड्रिल करना,

(vii) उछलना,

(viii) उछालना,

(ix) लटकना,

(x) रस्सी कूदना

3. सामाजिक एवं नैतिक विकास के संदर्भ में :

(i) दूसरों की सहायता करना,

(ii) दूसरों के साथ प्रेम का व्यवहार करना,

(iii) बड़ों का आदर करना,

(iv) सामाजिक कार्यों में रूचि लेना,

(v) सौंपे गये कार्यों को समय पर सम्पादित करना,

(vi) पर्यावरण की सुरक्षा के प्रति समर्पण,

(vii) विनम्रतापूर्वक अपनी बात को रखना

4. हस्तकौशल के विकास के संदर्भ में :

(i) रेखाचित्र बनाना,

(ii) मूर्ति कला,

(iii) रंगोली निर्माण प्रतियोगिता

(iv) खिलौने, गुड़िया, मुखौटे इत्यादि बनाना,

(v) कागज की कलाकृतियाँ बनाना

5. गणित विषय–वस्तु के लिए पाठसहगामी के संदर्भ में :

(i) गणितीय गीत लिखना/गाना,

(ii) गणितीय खेल

(iii) गणितीय पहेलियों का निर्माण,

(iv) व्यवहार से संबंधित खेल

6. विज्ञान से संबंधित पाठ साहगामी क्रियाएँ :

(i) परिवेश को अवलोकित करते हुए विभिन्न तथ्यों की सूची बनाना,

(ii) प्राकृतिक घटनाओं का अवलोकन कर समझने का प्रयत्न करना कि घटनाएँ कैसे होती हैं,

(iii) शैक्षणिक भ्रमण,

(iv) कक्षा स्तर पर छोटे–छोटे प्रयोग

7. सृजनशीलता के विकास के के संदर्भ में :

(i) क्रमबद्ध करना,

(ii) आरोही क्रम में करना,

(iii) अवरोही क्रम में करना,

(iv) गुणों एवं रंगों के आधार पर छाँटना,

(v) कल्पना करना,

(vi) अनुपयोगी वस्तुओं से निर्माण करना,

(vii) निष्कर्ष निकालना

(viii) वर्गीकरण करना,

(ix) चित्रों में रंग भरना,

(x) नृत्य एवं संगीत

अनुपूरक शिक्षण : अवधारणा एवं योजना

कक्षा में सभी विद्यार्थियों के अधिगम की गति एक समान नहीं रहती है। इसका कारण व्यक्तिगत विभिन्नता है। कक्षा में मौजूद प्रत्येक विद्यार्थी में समझने, सीखने, अभिव्यक्त करने तथा समस्या समाधान की क्षमता अलग–अलग होती है। कई बार कक्षा के किसी एक या एक से अधिक विद्यार्थी की क्षमता कक्षा के अन्य विद्यार्थियों से इतनी अलग हो सकती है कि वह कक्षा के अन्य विद्यार्थियों के साथ अधिगम प्रक्रिया में सक्रिय रूप से हिस्सा नहीं ले पाते। इसके परिणामस्वरूप वह अन्य विद्यार्थियों के मुकाबले अच्छा प्रदर्शन नहीं कर पाता। शिक्षक बहुधा तुलनात्मक रूप से समान क्षमता वाले बहुसंख्यक को ध्यान में रखकर योजना बनाते तथा कार्यान्वित करते हैं। ऐसे में भिन्न क्षमतावाले विद्यार्थी जो अधिगम में कठिनाई का सामना कर रहे होते हैं वे और अधिक समस्याग्रस्त होते चले जाते हैं। अगर ऐसे विद्यार्थियों को समय पर चिन्हित कर उनके लिए अनुपूरक शिक्षण की व्यवस्था नहीं की गई तो इसके परिणाम विद्यार्थी के सम्पूर्ण शैक्षणिक जीवन को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकते हैं। अनुपूरक शिक्षण की अवधारणा अति विस्तृत है जहां प्रत्येक विद्यार्थी को उसकी क्षमता व आवश्यकता के अनुरूप अतिरिक्त ध्यान देना होता है। विद्यार्थियों की क्षमताएँ

भिन्न–भिन्न होती हैं। यहाँ तक कि दो विद्यार्थियों की समान प्रतीत होने वाली समस्याओं के कारण अथवा आधार समान नहीं होते। अतः अनुपूरक शिक्षण की प्रक्रिया में शिक्षक को समय समय पर सम्बंधित आवश्यक आंकड़े एकत्र करने होते हैं ताकि विद्यार्थी के विकास के विषय में वे आगे की योजना बना सकते हैं।

यहाँ यह स्पष्ट करना अति आवश्यक है कि अनुपूरक शिक्षण का अर्थ 'उपचारात्मक शिक्षण' नहीं है। 'उपचारात्मक शिक्षण' की संकल्पना में विद्यार्थी को एक रोगी के तौर पर देखा जाता है जबकि अनुपूरक शिक्षण की संकल्पना है कि कोई भी विद्यार्थी अनेक क्षमताओं से परिपूर्ण है, आवश्यकता है तो बस उनका उचित विकास करना। अनुपूरक शिक्षण कई रूपों में हो सकती हैं – यह कक्षा के साथ–साथ ही हो सकती है अथवा कक्षा के बाद भी। इस प्रकार के शिक्षण में लचीलापन होना चाहिए ताकि विद्यार्थी अपने समयानुसार उसमें भाग ले सके।

योजना निर्माण एवं क्रियान्वयन

- सीखने की योजना–निर्माण के दौरान ही शैक्षणिक कठिनाईयों से जूझ रहे विद्यार्थियों को चिन्हित कर उनके अनुरूप योजना में आवश्यक परिवर्तन किए जाएँ।
- सीखने की योजना में शामिल गतिविधियों में अधिगम संबंधी समस्याओं से जूझ रहे विद्यार्थियों का विशेष ध्यान रखा जाए।
- सीखने की योजना में विद्यार्थियों की पृष्ठभूमि तथा उनके अनुभवों को स्थान दिया जाए। इस प्रक्रिया में यह सुनिश्चित किया जाए कि उन विद्यार्थियों का विशेष ध्यान रखा जाए जिनके लिए शैक्षणिक निदान की आवश्यकता है।
- शैक्षणिक कठिनाई का सामना कर रहे विद्यार्थियों को कक्षा मे चल रही शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में सक्रिय सहभागिता के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित करें।
- आवश्यकता पड़ने पर पाठ के बाद भी व्यक्तिगत रूप से विद्यार्थियों से मिलकर एवं उन्हें अपने संदेह, भय, जिज्ञासाओं तथा उत्सुकताओं को अभिव्यक्त करने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करें।

कक्षाकक्ष की प्रमुख चुनौतियाँ

प्रतिदिन कक्षा में अध्यापन के क्रम में एक शिक्षक को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। ये चुनौतियां मात्र समस्यात्मक नहीं होती बल्कि इनके माध्यम से शिक्षक में भी अनुभवों का विकास होता है। आगे उन्हीं चुनौतियों में से कुछ की व्याख्या की गई है।

अनुशासन : इस समस्या की शिकायत अक्सर शिक्षक किया करते हैं। वास्तव में अनुशासन क्या होता है और कक्षा में किस प्रकार के अुनशासन से सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में लाभ होगा, इसको समझना जरूरी है। अनुशासन ऐसा होना चाहिए जो काम को सम्पन्न होने में मदद करे और जो बच्चों की सक्षमता को बढ़ाए। अनुशासन शिक्षक एवं बच्चे दोनों के लिए आजादी, विकल्प एवं स्वायत्तता बढ़ाने वाला होना चाहिए। यह जरूरी है कि बच्चों को नियम विकसित करने की प्रक्रिया में शामिल किया जाए ताकि वे नियम के पीछे के तर्क को समझें और उसके पालन की अपनी जिम्मेदारी को भी महसूस करें। इस तरह से बच्चे स्वशासन के लिए बनाई गई प्रक्रिया के बारे में जानेंगे और लोकतांत्रिक क्रियाओं एवं निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने के लिए जरूरी कौशल विकसित कर पाएँगे। इस तरह से बच्चे शिक्षकों और विद्यार्थियों के आपस में होने वाले मनमुटाव को सुलझाने के लिए विद्यार्थी खुद भी कुछ तरीके ईजाद कर पाएँगे।

राष्टीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 ने भी विद्यालय अनुशासन और प्रबंधन में विद्यार्थियों की सहभागिता को विशेष रूप से महत्वपूर्ण समझा है। शिक्षकों और विद्यार्थियों में परस्पर निर्भरता होती है, खासकर आज के दौर में जब सीखने का काम सूचना की उपलब्धि पर निर्भर करता है और ज्ञान का सृजन उन संसाधनों के नींव पर आधारित होता है जिनको अकेले शिक्षक नहीं जुटा सकते। अतः शिक्षक और विद्यार्थी दोनों ही एक–दूसरे के परस्पर सहयोग से ही शिक्षण–अधिगम को प्रभावी व संसाधन युक्त बना सकते हैं।

अनुशासन मुख्य रूप से संकेत करता है स्व–अनुशासन की ओर, जो एक प्रक्रिया है, जिसमें विद्यार्थी अपने व्यवहार को उद्देश्य प्राप्ति के लिए स्वयं से नियंत्रित/संचालित करते हैं या दूसरों की आवयश्यकता के अनुसार उसमें सार्थक बदलाव लाते हैं।

विद्यालय के संदर्भ में अनुशासन कक्षाकक्ष व्यवस्था से संबंध रखता है जो जिम्मेवारी का अहसास दूसरों के प्रति संवेदनशीलता और आत्म सम्मान पर आधारित है। हालांकि एक विद्यार्थी में स्वयं के व्यवहार के प्रति जिम्मेदारी की भावना उत्पन्न करने से पहले उसमें अपनत्व की भावना का विकास करना होगा। तभी विद्यार्थी अपने आपको कक्षाकक्ष का समग्र हिस्सा मानेगा। उसके

बाद ही यह जिम्मेदारी की भावना का विकास होगा। अतः कक्षाकक्ष में अनुशासन बनाने की शुरूआत अध्यापक–विद्यार्थी के सकारात्मक संबंध से होता है जिसमें एक–दूसरे के प्रति सम्मान, और जिम्मेदारी की भावना का अहसास होता है।

प्रभावकारी कक्षाकक्ष प्रबंधन के लिए अनुशासन संबंधी समस्याओं को रोकना अत्यंत आवश्यक है। यदि अध्यापक रूचिपूर्ण ढंग से शिक्षण–अधिगम क्रियाकलाप करते है तभी वे विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित करने में सफल होंगे। वे उन्हें कक्षाकक्ष क्रियाकलाप में संलग्न रखते हैं तो ऐसी स्थिति में अनुशासनहीनता की घटना कम होगी।

बहुकक्षीय शिक्षण : वर्तमान शैक्षणिक परिवेश में गुणवत्तापूर्ण शिक्षण एक बड़ी चुनौती है। इस चुनौती के मूल में कई छोटे–छोटे कारक हैं जो इस चुनौती की समाप्ति के मार्ग में बाधक बन कर खड़े हैं। ऐसे ही कारकों में से एक कारक या चुनौती वैसे शिक्षकों के समक्ष है जो कक्षाओं की संख्या के अभाव से या शिक्षकों की संख्या के अभाव में है। सामान्यतः ऐसे शिक्षण में गुणवत्ता कम होती जाती है और वर्गवार पाठ्यक्रम का अध्यापन भी नहीं हो पाता है। विद्यार्थी भी विभिन्न वर्गों के होने के कारण आयु में अधिक विषमता रहती है।

बहुकक्षीय शिक्षण को प्रत्येक वर्ग के वैसे विद्यार्थियों की अनदेखी हो जाती है जो विशेष आवश्यकता वाले बच्चे हैं। शिक्षकों के लिए ऐसे में सीखने की योजना निर्माण की एक बड़ी चुनौती होती है क्योंकि अधिगम का प्रकरण स्पष्ट नहीं रहता है। बहुकक्षीय शिक्षण एक ऐसी स्थिति है जहाँ एक शिक्षक एक ही समय में कई कक्षाओं में शिक्षण कार्य करता है। बहुकक्षीय शिक्षण का अर्थ मुख्यतः दो रूपों में लिया जाता है।

1. एक शिक्षक का एक समय में ही कक्षाकक्ष में एक से अधिक कक्षाओं के विद्यार्थियों के साथ शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में संलग्न होना।
2. एक शिक्षक का एक समय मे एक से अधिक कक्षाकक्ष में अलग–अलग कक्षा के विद्यार्थियों के साथ शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में संलग्न होना।

समावेशी शिक्षण : शिक्षक के लिए महत्वपूर्ण है कि कक्षाकक्ष में सभी बच्चों के लिए समावेशी माहौल तैयार किया जा सके। विशेषकर उनके लिए जिनके हाशिए पर छूट जाने का खतरा है। जैसे – वे विद्यार्थी जिनमें भिन्न क्षमताएं हैं। ऐसे विद्यार्थियों या विद्यार्थी समूहों को अपंग/असमर्थ/अयोग्य इत्यादि शब्दों से संबोधित करने से उनमें एक प्रकार की हीन भावना घर कर जाती है। कई शिक्षक भी जाने–अनजाने इन कार्यों को करते हैं और कक्षा में शिक्षण की प्रक्रिया को समावेशी बनाने के प्रति संवेदनशील नहीं हो पाते। विद्यार्थियों के

बीच मतभेदों को समस्या के रूप में न देख कर शिक्षण के सहयोगी संसाधन के रूप में देखा जाना चाहिए।

संसाधनों की अनुपलब्धता : पूर्व की इकाइयों में हम कक्ष प्रबंधन के विमर्श–वर्णन के क्रम में विभिन्न घटकों के विषयों में जान चुके हैं। अब सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि यदि अधिगम के लिए उन सारे घटकों की आवश्यकता है तो उन घटकों/संसाधनों के अभाव में शिक्षण–अधिगम की प्रक्रिया कैसे चलेगी? अपेक्षित संसाधनो की अनुपलब्धता की चुनौती भी शिक्षक के समक्ष होती है।

विद्यालय में आकलन एवं मूल्यांकन की व्यवस्था सतत एवं व्यापक आकलन प्रगति–पत्रक

परिचय

आकलन व मूल्यांकन शिक्षण–अधिगम के साथ–साथ चलनेवाली प्रक्रिया है परन्तु, पारम्परिक तौर पर इसे केवल परीक्षा के रूप में ही देखा जाता रहा है जिसके कारण कक्षाकक्ष की प्रक्रियाओं में इसका समावेश बाधित रहा है। अतः यह आवश्यक है कि इसे सीखने–सिखाने के महत्वपूर्ण तरीकों के संदर्भ में समझा जाए। शिक्षकों के लिए यह आवश्यक है कि वे मूल्यांकन की विधियों को जानें तथा उसका प्रभावी उपयोग करें। अतएव इस इकाई में सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में आकलन व मूल्यांकन की तकनीक, इसकी आवश्यकता तथा कक्षाकक्ष प्रक्रियाओं में इसका स्थान, जैसे तमाम बिन्दुओं की चर्चा की गई है। इस इकाई में सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की अवधारणा, आवश्यकता एवं क्रियान्वयन के तकनीकों को भी समझने का प्रयास किया गया है। साथ–ही, विद्यालय में उपलब्ध विविध प्रकार के प्रगति–पत्रकों का उपयोग मूल्यांकन में कैसे होगा, इसकी जानकारी दी गई है।

सीखने के उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से आप :

- आकलन व मूल्यांकन की अवधारणा व आवश्यकता को समझ पाएंगे।
- मूल्यांकन की विभिन्न विधियों से अवगत हो सकेंगे।
- मूल्यांकन की चुनौतियों को समझ सकेंगे।
- सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की अवधारणा व महत्त्व को समझ पाएंगे।
- सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के विविध तरीकों से अवगत हो पाएंगे।
- विभिन्न प्रकार के प्रगति–पत्रकों का विश्लेषण करने में सक्षम होंगे तथा विद्यालय एवं बच्चों के विकास में उसका उपयोग कर पाएंगे।

आकलन व मूल्यांकन

आपने अक्सर देखा होगा कि कोई भी बच्चा जब पहली बार विद्यालय आता है तो शिक्षक बच्चों से बातचीत के क्रम में बहुत सारी बातें जानना चाहते हैं। यह बातचीत बच्चों, उसके परिवार, बच्चों की पसंद, जानकारी का स्तर इत्यादि से संबंधित होते हैं।

• **सोचिए** – आखिर शिक्षक ऐसा क्यों करते हैं?

ठीक इसी प्रकार जब बच्चा पहली बार स्कूल से घर लौटता है तो उसके माता–पिता एवं घर के अन्य सदस्य विद्यालय एव विद्यालय में उसकी दिनचर्या से संबंधित बातचीत करते हैं।

• **सोचिए** – आखिर ऐसा क्यों होता है।

वास्तव में इन गतिविधियों के माध्यम से शिक्षकों को इस बात को समझने में सहुलियत होती है कि बच्चों के पूर्वानुभव क्या हैं और इस जानकारी के आधार पर उन्हें यह तय करने में सुविधा होती है कि वे बच्चों के साथ बातचीत कहाँ से प्रारंभ करें। अभिभावक भी यह जानने का प्रयास करते हैं कि विद्यालय में बच्चों का अनुभव कैसा रहा। इसी प्रकार कोई भी कार्य कितना बेहतर तरीके से संपादित हो रहा है, इसके लिए आकलन एवं मूल्यांकन की आवश्यकता पड़ती

है। इसके द्वारा आगे के कार्य संपादन की रणनीति बनाने में सहुलियत होती है। आइए इसके बारे में विस्तार से जानें।

आकलन की अवधारणा

आकलन का तात्पर्य उन प्रक्रियाओं से है जो अधिगमकर्ता की उपलब्धियों को निरंतर मापने के लिए किया जाता है। इसके अंतर्गत आँकड़ों का संग्रह कर व्याख्या के लिए उसे व्यवस्थित किया जाता है। उदाहरण के लिए – बाजार से हम कोई भी समान खरीदने जाते है। इस क्रम में कई दुकानों से उसका मूल्य, ब्रांड, रंग, आकार का मिलान करते हैं। अपनी जरूरत के हिसाब से तथा आर्थिक स्थिति के आलोक में यह तय करते हैं कि वह सामग्री लेना उपयुक्त होगा या नहीं। इसी प्रकार अगर हम विद्यालय में किसी बच्चे की उपलब्धि का आकलन करते हैं तो इसके लिए भी कई विधियाँ अपनाते हैं। उदाहरण स्वरूप, अगर हम पर्यावरण की कक्षा ले रहे होते हैं तो पाठ्य विषय–वस्तु की जानकारी देने के उपरांत उपलब्धि परीक्षण हेतु कुछ मौखिक या कुछ लिखित प्रश्न भी पूछ सकते हैं। इसके अतिरिक्त कोई परियोजना कार्य या कक्षा से बाहर पर्यावरण अध्ययन के पाठ से जुड़ी जानकारियों के उपयोग से संबंधित बच्चों की क्रियाओं का अवलोकन कर सकते हैं। इस प्रकार आकलन में अधिगम से जुड़े सभी आँकड़ों एवं प्रमाणों का संकलन किया जाता है। ये आँकड़े या सूचनाएँ विभिन्न स्तरों से अलग–अलग प्रकार के क्षेत्रों एवं प्रक्रियाओं द्वारा एकत्रित किए जा सकते हैं। आकलन का उद्देश्य हमेशा बच्चों की शैक्षणिक प्रगति की जानकारी एवं उसके स्तर में सुधार होता है।

आकलन का उद्देश्य निश्चय ही सीखने–सिखाने की प्रक्रियाओं का चुनाव एवं सामग्री का सुधार करना है और उन लक्ष्यों पर पुनर्विचार करना है जो विद्यालयों के विभिन्न चरणों के लिए तय किए गए हैं। आकलन के द्वारा यह तय किया जाता है कि अधिगमकर्ता की क्षमता किस हद तक विकसित हुई। यह अलग से न कर दैनिक गतिविधियों एवं अभ्यास के क्रम में किया जाता है।

आकलन के माध्यम से सीखने में आनेवाली कठिनाईयों का पता लगाया जाना चाहिए ताकि उचित समाधान भी किया जा सके। इसमें अंकन एवं ग्रेड दोनों का उपयोग किया जा सकता है। विषयों से संबंधित उपलब्धि आकलन में जहाँ अंक दिए जा सकते हैं वहीं छात्रों के स्वास्थ्य, संगीत, कला, कार्यानुभव इत्यादि क्षेत्रों का आकलन ग्रेड की सहायता से भी किया जा सकता है।

मूल्यांकन की अवधारणा

हमारी कक्षा में कौन–कौन से विद्यार्थी तेजी से प्रगति कर रहे हैं? किन विद्यार्थियों की प्रगति धीमी है? ऐसी अनेक बातें कहते हुए अक्सर आप

मूल्यांकन ही करते हैं। ऐसे तथ्यों के जबाव बिना मूल्यांकन के नहीं प्राप्त किए जा सकते। इसके माध्यम से न केवल विद्यार्थियों की प्रगति और उपलब्धियों का मापन किया जाता है बल्कि अध्यापन के तरीकों के प्रभाव का भी मूल्यांकन किया जाता है। इस प्रकार, मूल्यांकन विद्यार्थियों की उपलब्धि के आकलन के साथ–साथ पिछड़ रहे बच्चों के लिए शिक्षण–योजना निर्माण में भी मार्गदर्शक का काम करता है। मूल्यांकन शिक्षण प्रक्रिया का यह एक अभिन्न अंग है। अगर मूल्यांकन को सिर्फ विद्यार्थियों को उत्तीर्ण अथवा अनुत्तीर्ण करने के माध्यम के रूप में देखा जाएगा तो यह अति सीमित अवधारणा मात्र होगी और इससे विद्यार्थियों पर प्रतिकूल दबाव पड़ेगा। लेकिन, अगर मूल्यांकन को शिक्षण प्रक्रिया एवं अधिगम के अंदर सम्मिलित कर लिया जाए तो शिक्षार्थी इसे भय के रूप में नहीं देखेंगे। इस प्रकार का मूल्यांकन शिक्षा प्राप्ति के क्रम में आनेवाली समस्याओं को दूर करने में सहायक हो सकता है तथा शिक्षार्थियों की उपलब्धि में भी वृद्धि का माध्यम बन सकता है।

आकलन और मूल्यांकन

भारतीय शिक्षा में मूल्यांकन शब्द परीक्षा, तनाव और दुश्चिंता से जुड़ा हुआ है। पाठ्यचर्या की परिभाषा और नवीनीकरण के सभी प्रयास विफल हो जाते हैं, अगर वे स्कूली शिक्षा प्रणाली में जडें जमाए मूल्यांकन और परीक्षा तंत्र के अवरोध से नहीं जूझ सकते। हमें परीक्षा के उन दुष्प्रभावों की चिंता है जो सीखने–सिखाने की प्रक्रिया को सार्थक बनाने और बच्चों के लिए आनंददायी बनाने के प्रयासों पर पड़ते हैं। वर्तमान में बोर्ड की परीक्षाएँ स्कूली बच्चों में होने वाले हर आकलन और हर तरह के परीक्षण को नकारात्मक रूप से ही प्रभावित करती हैं। इसमें शाला पूर्व–स्तर में होनेवाला आकलन और परीक्षण भी शामिल हैं।

एक अच्छी मूल्यांकन और परीक्षा पद्धति सीखने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग बन सकती है जिसमें शिक्षार्थी और शिक्षा तंत्र दोनों को ही विवेचनात्मक और आलोचनात्मक प्रतिपुष्टि से फायदा हो सकता है। यह भाग मूल्यांकन और आकलन को संबोधित करते हुए शुरू होता है क्योंकि ये सीखने–सिखाने की प्रक्रिया के लिए पाठ्यचर्या के भाग की तरह प्रासंगिक होते हैं।.........

शिक्षा का सरोकार एक सार्थक व उत्पादक जीवन की तैयारी से होता है और मूल्यांकन आलोचनात्मक प्रतिपुष्टि देने का तरीका होना चाहिए। यह प्रतिपुष्टि इस बात की होती है कि हम ऐसी शिक्षा लागू करने में किस हद तक सफलता प्राप्त कर पाएँ। इस परिप्रेक्ष्य से देखें तो वर्तमान में चल रही मूल्यांकन की प्रक्रियाएँ जो केवल कुछ ही योग्यताओं को मापती और

आकलित करती हैं बिलकुल ही अपर्याप्त हैं और शिक्षा के उद्देश्यों की ओर प्रगति की संपूर्ण तस्वीर नहीं खींचती हैं।

लेकिन मूल्यांकन का यह सीमित प्रायोजन भी अकादमिक और शैक्षणिक विकास पर प्रतिपुष्टि देने वाला तभी बन सकता है जब शिक्षक पढ़ाने से पहले ही न केवल आकलन के तरीकों की तैयारी करें बल्कि मूल्यांकन के मानकों और उसके लिए प्रयुक्त होने वाले औजारों की भी तैयारी करें। विद्यार्थियों की उपलब्धि की गुणवत्ता की जाँच के अलावा एक अध्यापक को विभिन्न विषयों में उनकी उपलब्धि की जानकारी इकट्‌ठा कर, उसका विश्लेषण कर और उसकी व्याख्या करनी होगी। तभी अध्यापक विभिन्न क्षेत्रों में विद्यार्थियों के अधिगम की सीमा की एक समझ बना पाएँगे। आकलन का प्रायोजन निश्चय ही सीखने–सिखाने की प्रक्रियाओं एवं सामग्री का सुधार करना है और उन लक्ष्यों पर पुनर्विचार करना है जो स्कूल के विभिन्न चरणों के लिए तय किए गए हैं। यह पुनर्विचार और सुधार इस आधार पर किया जा सकता है कि शिक्षार्थियों की क्षमता किस हद तक विकसित हुई। यह कहने की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए कि यहाँ इस आकलन का मतलब विद्यार्थियों की नियमित परीक्षण कतई नहीं है बल्कि, दैनिक गतिविधियाँ और अभ्यास के उपयोग से अधिगम का बहुत ही अच्छा आकलन हो सकता है।

आकलन की रूपरेखा और उसका संचालन

आकलन और परीक्षाओं को विश्वसनीय होना चाहिए एवं अधिगम को मापने के वैद्य तरीकों पर आधारित होना चाहिए।

जब तक परीक्षाएँ बच्चों की पाठ्‌यपुस्तकीय ज्ञान को याद करने की क्षमताओं का परीक्षण करती रहेंगी तब तक पाठ्‌यचर्या को सीखने की तरफ मोड़ने के सभी प्रयास विफल होते रहेंगे। पहला बिंदु यह है कि ज्ञान–आधारित विषय क्षेत्रों में परीक्षाएँ ये समझ पाएँ कि बच्चों ने क्या सीखा और उस ज्ञान को समस्या सुलझाने और व्यवहार में लाने की उनकी क्षमता को जाँच पाएँ। इसक अलावा, परीक्षाएँ यह भी जाँचने में सक्षम होनी चाहिए कि विद्यार्थियों की सोचने की प्रक्रियाएँ कैसी हैं तथा यह पता लगा पाएँ कि क्या शिक्षार्थी ने यह सीखा कि जानकारी कहाँ मिलती है, उस जानकारी का इस्तेमाल कैसे करते हैं और उसका विश्लेषण और मूल्यांकन कैसे करते हैं?

आकलन के लिए जो प्रश्न निर्धारित किए जाते हैं उन्हें किताब में दी गई जानकारी से आगे बढ़ाने की ज़रूरत है। कितनी ही बार बच्चों का अधिगम इसलिए बहुत ही सीमित रह जाता है क्योंकि शिक्षक उन उत्तरों को स्वीकार नहीं करते जो कुंजियों में दिए गए उत्तरों से भिन्न होते हैं।

ऐसे प्रश्नों को भी इस्तेमाल करना चाहिए जिनका कोई एक उत्तर नहीं होता और जो बच्चों के सामने चुनौती पेश करते हैं। अच्छे प्रश्न और परीक्षा–पत्र बनाना भी एक कला है और शिक्षकों को ऐसे प्रश्न बनाने पर बल देने की ज़रूरत है। शिक्षकों की अच्छे प्रश्न बनाने की क्षमता और रुचि को बढ़ावा देने के लिए ज़िला या राज्य के स्तर पर प्रतियोगिताएँ की जा सकती हैं। सारे प्रश्न–पत्र कठिनाई की ऐसी रूपरेखा लिए हुए होने चाहिए कि सभी बच्चे सफलता के स्तर को अनुभव कर पाएँ और उत्तर देने एवं समस्या सुलझाने की क्षमता में आत्मविश्वास विकसित कर पाएँ।......

.......स्पर्धा प्रोत्साहन तो देती है लेकिन वह प्रेरणा का आंतरिक रूप न होकर बाह्य रूप ही होता है। निश्चय ही इसे स्थापित करना और संचालित करना बड़ा आसान होता है इसीलिए शिक्षक और स्कूली व्यवस्थाएँ उत्कृष्टता की प्रेरणा को पोषण देने के लिए अक्सर इसका सहारा ले लेती हैं। स्कूल पूर्व–प्राथमिक स्तर से ही बच्चों को प्रथम, द्वितीय की श्रेणियों में बाँटने लगते हैं, जिससे उनमें स्पर्धा की भावना आत्मसात हो। इस तरह की प्रतियोगी प्रेरणा के अधिगम पर कई नकारात्मक प्रभाव हो सकते हैं। अक्सर प्रभाव बनाने के लिए सतही स्तर पर सीखना भर पर्याप्त होता है। समय के साथ बच्चे अपनी रुचि के अनुसार पहल करने की क्षमता खो देते हैं और इस प्रक्रिया में वे क्षेत्र जिनमें पाठ्यचर्या में 'अंक' नहीं दिए जाते उपेक्षित हो जाते हैं। इसका कक्षा की संस्कृति पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है, क्योंकि बच्चे व्यक्तिवादी बनते हैं और सामूहिक कार्य करने की क्षमता खो बैठते हैं।

'परीक्षा' को बिलकुल असंगत महत्त्व दिया जाता है और उन पर अनावश्यक ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिसमें अक्सर गोपनीयता और निरीक्षण की सख्त व्यवस्था की जाती है। माध्यमिक कक्षाओं तक तो इनके शारीरिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव आसानी से नहीं दिखते हैं लेकिन यह बच्चों में बेहद तनाव को जन्म देता है जिससे वह बहुत जल्दी उत्तेजित होने की हालत में पहुंच जाते हैं। स्कूल और शिक्षकों को अपने आप से पूछने की ज़रूरत है कि क्या इस तरह के व्यवहारों से सच में बहुत ज्यादा लाभ होता है और अधिगम को दरअसल किस हद तक अंक देने और श्रेणीकृत करने की ज़रूरत है?

शिक्षकों का यह प्रयास होना चाहिए कि शिक्षण–अधिगम की प्रक्रिया में बच्चों के सीखने के स्तर का आकलन इस प्रकार करें कि बच्चे किसी विषय–वस्तु के बारे में अपनी भाषा में व्याख्या कर सकें और लिख सकें तथा इसके साथ–ही अपने दैनिक जीवन में विषय–वस्तु के ज्ञान का उपयोग कर सकें। बच्चों का

ज्ञान और समझ की परिपक्वता से बच्चों में परीक्षा का भय और तनाव तब नहीं रहेगा।

मूल्यांकन की विधियाँ

मूल्यांकन की विधियों का निर्धारण शिक्षण प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए शिक्षण उद्देश्य के अनुसार किया जाता है। मूल्यांकन केवल इस बात का नहीं किया जाना चाहिए कि बच्चे ने प्रश्न का सही उत्तर लिखा या नही बल्कि बच्चों को अपने विचार, अवलोकन, तर्क करना, प्रयोग द्वारा सीखने इत्यादि के आधार पर किया जाना चाहिए। बच्चे के सीखने की प्रक्रिया में गुणात्मक सुधार लाने के लिए निम्नांकित प्रक्रियाओं को आधार बना सकते है :—

- चर्चा करना — सुनना, बोलना, अपनी राय देना।
- अवलोकन — वर्णन करना, चित्र बनाना, नक्शे बनाना।
- व्याख्या — तर्क देना, संबंध स्थापित करना।
- वर्गीकरण — समूह बनाना, समानता और अंतर करना।
- प्रश्न करना — पाठ के बीच में प्रश्न और अभ्यास।
- अभिव्यक्ति — चित्र द्वारा, हाव भाव एवं सृजनात्मक कार्य द्वारा।
- प्रयोग करना — स्वयं करके सीखना।
- विश्लेषण — निष्कर्ष निकालना, परिकल्पना करना।
- सहभागिता — जिम्मेदारी लेना, मिलकर कार्य करना।
- उदाहरण — स्थानीय उदाहरण, समाचार पत्रों के द्वारा प्राप्त तथ्य।
- परियोजना कार्य — दैनिक जीवन से संबंधित/दैनिक जीवन के अनुभवों से जुड़े।
- साक्षात्कार — पूर्व अनुभवों को जानना।

इस तरह हम कह सकते हैं कि जब हम मूल्यांकन करते हैं तो मूल्यांकन केवल बच्चों की स्मरण शक्ति या लिखने की क्षमता का मूल्यांकन नहीं है, बल्कि उनकी समझ और विषयवस्तु में सिखाई गई अवधारणाओं का मूल्यांकन है। यह भी समझना आवश्यक है कि मूल्यांकन की प्रकृति हरेक विषय के लिए उस विषय के स्वरूप के अनुसार होंगे, जैसे — विज्ञान और भाषा के विषयों के लिए एक ही प्रकार की मूल्यांकन प्रणाली ठीक नहीं हो सकती है। भाषा के कौशल जैसे — सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना, विज्ञान के कौशल अवलोकन, संकलन, वर्गीकरण, विश्लेषण, निष्कर्ष इत्यादि से अलग है।

मूल्यांकन के कई प्रकार हैं। उनमें से कुछ प्रमुख हैं – रचनात्मक मूल्यांकन (Formative Evaluation), संकलनात्मक मूल्यांकन (Summative Evaluation), कसौटी संदर्भित मूल्यांकन (Criterion referenced Evaluation), आदर्श संदर्भित मूल्यांकन (Norm referenced Evaluation) और सतत एवं व्यापक मूल्यांकन (Continuous and Comprehensive Evaluation)। इन सब की चर्चा आगे की जा रही है।

रचनात्मक मूल्यांकन

गणित की शिक्षिका ने लाभ–हानि की अवधारणा को कक्षा में समझाने के बाद, आगे बढ़ने से पहले पूरी कक्षा को एक कार्य करने को दिया। शिक्षिका ने सभी विद्यार्थियों को समूहों में बाँटकर कुछ समूह को गणित के वैसे प्रश्नों का निर्माण करने को कहा जिसमे हानि से संबंधित प्रश्न हो तथा कुछ समूह को वैसे प्रश्नों का निर्माण करने को कहा जिसमें लाभ से संबंधित प्रश्न हों। इसके बाद शिक्षिका ने प्रत्येक समूह को अपने द्वारा बनाए गए प्रश्नों को प्रस्तुत करने को कहा। प्रत्येक समूह ने अपने–अपने प्रश्नों को प्रस्तुत किया और बीच–बीच में अन्य समूहों ने अनेक प्रश्नों को लेकर कई शंकाएं भी प्रस्तुत कीं। प्रस्तुतिकरण और समूहों द्वारा उठाए गए शंकाओं के आधार पर शिक्षिका ने आगे शिक्षण–योजना को बनाया।

जब कोई शिक्षण–प्रक्रिया अपनी प्रारंभिक या निर्माणावस्था में हो और उसका मूल्यांकन कर उसमें सुधार किया जा सके तो इस प्रकार के मूल्यांकन को संरचनात्मक मूल्यांकन कहते हैं। किसी भी शिक्षण प्रक्रिया का मूल्यांकन जब उसकी प्रभावशीलता, गुणवत्ता, वांछनीयता या उपयोगिता को बढ़ाने के लिए किया जाता है तो वह संरचनात्मक मूल्यांकन कहलाता है। इस प्रकार, स्पष्ट है किसी भी शिक्षण–प्रक्रिया को अंतिम रूप देने से पूर्व उसका मूल्यांकन कर उसमें सुधार करने की प्रक्रिया को ही संरचनात्मक मूल्यांकन कहा जाता है। इस प्रकार के मूल्यांकन का उद्देश्य शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को बेहतर बनाकर बच्चों की उपलब्धि में सुधार लाना है। इसके द्वारा अधिगम की प्रक्रिया को सही दिशा में ले जाने में मदद मिलती है। साथ–ही परिस्थिति के आलोक में शिक्षण–प्रक्रिया में बदलाव करने में भी सहायता मिलती है। रचनात्मक मूल्यांकन के माध्यम से विद्यार्थियों को उनकी क्षमता को पहचानने तथा उनकी उपलब्धि स्तर को बढ़ाने में मदद की जा सकती है।

इसके माध्यम से सीखने–सिखाने में आनेवाली विभिन्न समस्याओं की पहचान की जा सकती है तथा उनका उचित समाधान किया जा सकता है। रचनात्मक मूल्यांकन के प्रयोग आप आये दिन अपनी कक्षाओं में किया करते हैं।

आवश्यकता है कि इसके महत्व एवं विद्यार्थियों के सीखने पर पड़नेवाले सकारात्मक प्रभाव के प्रति सजग होया जाए और विद्यालय के रोज़मर्रा के सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में इसको उपयोग में लाया जाए।

संकलनात्मक मूल्यांकन

एक शिक्षक ने पिछले चार माह में पढ़ाए गए पाठों के आधार पर अपनी कक्षा के विद्यार्थियों का मौखिक एवं लिखित मूल्यांकन किया तथा इसका अभिलेखन भी किया। इस प्रक्रिया को उसने प्रत्येक चार माह पर की तथा इसके समेकन के आधार पर बच्चों की प्रगति का अभिलेखन किया।

यह मूल्यांकन सामान्यतः किसी कोर्स के अंत में या कोर्स की इकाई के अंत में किया जाता है। इस मूल्यांकन का अभिप्राय अधिगम के उस आकलन से है जो एक निर्धारित समय पर बच्चों की समझ का पता लगाने तथा उसका प्रतिफल बताने के लिए किया जाता है। कोर्स के अंत में किया गया मूल्यांकन, सार्वाधिक सत्रांत परीक्षायें आदि इस प्रकार के मूल्यांकन के उदाहरण हैं। इसके माध्यम से यह जानने की कोशिश की जाती है कि विद्यार्थियों ने पूरे कोर्स को करने के बाद क्या–क्या सीखा है? इसका आयोजन औपचारिक तरीके यथा – क्विज, निबंध, टेस्ट या परियोजना के रूप में भी हो सकता है। इससे प्राप्त परिणाम का प्रयोग विद्यार्थियों की रैंकिंग या ग्रेडिंग के लिए किया जाता है। प्राप्त अंक या ग्रेड से ही विद्यार्थी की उपलब्धि के स्तर का पता लगता है। उदाहरण के लिए, पारंपरिक मूल्यांकन के अंतर्गत वार्षिक परीक्षाएं होती थीं। कुछ हद तक इसे संकलनात्मक मूल्यांकन के रूप में माना जा सकता है।

इसके अतिरिक्त किसी शैक्षणिक कार्यक्रम को अंतिम रूप देने या किसी कार्यक्रम संचालन के पश्चात् उस कार्यक्रम को आगे जारी रखा जाए या नहीं, यह ज्ञात करने के लिए भी यह किया जाता है। इस मूल्यांकन का उपयोग अनेक विकल्पों में से सर्वोतम विकल्प का चयन करने के लिए भी किया जाता है। इस मूल्यांकन में अगर बच्चों की उपलब्धि का स्तर संतोषजनक नहीं होता है तो शिक्षक अगले शैक्षणिक सत्र में अपने शैक्षणिक विधियों में बदलाव कर सकते हैं।

कसौटी संदर्भित मूल्यांकन

किसी विद्यालय में विभिन्न विषयों के लिए शिक्षकों व शिक्षिकाओं की आवश्यकता है। अतः विद्यालय प्रबंधन समिति ने विज्ञापन निकालने का सोचा। इसके लिए विद्यालय की प्रधानाचार्या को उस विज्ञापन को तैयार करने के लिए कहा गया। शिक्षक/शिक्षिकाओं की न्यूनतम योग्यता क्या हो, इसके लिए प्रधानाचार्या ने विभिन्न दस्तावेजों जैसे – शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009,

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (एन.सी.टी.ई.) द्वारा निर्धारित मापदंडों, राज्य द्वारा निर्धारित मापदण्डों इत्यादि का अध्ययन किया और उनके आधार पर विज्ञापन में शिक्षक/शिक्षिकाओं के लिए अपेक्षित न्यूनतम योग्यताओं को प्रकाशित किया।

इस प्रकार, शिक्षक/शिक्षिकाओं के चयन के लिए एक पूर्व कसौटी बना दी गई, जिसके होनेपर ही कोई व्यक्ति शिक्षक/शिक्षका बनने के लिए आवेदन कर सकता है। एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि इस कसौटी को पूरा करने वाले आवेदकों से ही यह अपेक्षा की जा सकती है कि वे विद्यालय में गुणवत्तापूर्ण शिक्षण कर सकते हैं, अर्थात्, आवेदकों की गुणवत्ता के स्तर को निर्धारित करने के लिए इस कसौटी को बनाना आवश्यक है।

इसी प्रकार, विद्यार्थियों के मूल्यांकन के लिए भी शिक्षक कुछ–न–कुछ कसौटियाँ बनाते हैं। विद्यार्थियों के प्रदर्शन के स्तर निर्धारण से संबंधित अनेक बिन्दु उनके ध्यान में रहते हैं। वह निर्धारित लक्ष्यों तक पहुँचने के क्रम में अनेक छोटे–छोटे चरण निर्धारित करते हैं तथा वहाँ तक पहुँचने के क्रम में अनेक कसौटियों के माध्यम से यह पता लगाते हैं कि बच्चों ने कितना समझा है। शिक्षक कुछ कसौटियों का निर्माण करते हैं और उसके आधार पर बच्चों के समझ को आंकते हैं।

कसौटी संदर्भित मूल्यांकन द्वारा ज्ञान की निरपेक्ष स्थिति का पता चलता है। कसौटी संदर्भित मूल्यांकन में किसी कसौटी के संदर्भ में योग्यता का मूल्यांकन किया जाता है। उदाहरण के रूप में, किसी बच्चे को किसी विद्यालय में अंक के आधार पर प्रवेश लेना है उस विद्यालय में नामांकन हेतु अंक की निम्नतम सीमा तय कर रखी है जिसके आधार पर उन बच्चों को ही नामांकन के लिए योग्य पाया जाएगा। यह एक प्रकार की कसौटी संदर्भित मूल्यांकन है। कसौटी संदर्भित मूल्यांकन के अंतर्गत विद्यार्थियों की योग्यता को वांछित स्तर के अनुसार परखा जाता है। जिससे यह ज्ञात होता है कि शैक्षणिक उद्देश्यों में से विद्यार्थी ने क्या अर्जित किया और क्या अर्जित नहीं किया। उदाहरण के रूप में किसी विद्यार्थी को अलग–अलग उद्देश्यों और कसौटियों से संबंधित 10 प्रश्न हल करने के लिए दिया गया। बच्चे ने 7 प्रश्नों का हल किया, 3 प्रश्न का नहीं। जिन तीन प्रश्नों का उत्तर बच्चे को ज्ञात नहीं है, वे किन उद्देश्यों और कसौटियों से संबंधित हैं तथा जिन प्रश्नों के उत्तर ज्ञात हैं वे किन कसौटियों एवं उद्देश्यों से संबंधित हैं? यह पता कसौटी आधारित मूल्यांकन से ही लगता है। इस मूल्यांकन द्वारा शिक्षण विधियों के माध्यम से विद्यार्थियों के अधिगम स्तर को सुनिश्चित करने का प्रयास किया जाता है। कसौटी आधारित मूल्यांकन में

परीक्षण के पद विशिष्ट उद्देश्य को ध्यान में रखकर बनाए जाते है तथा वहीं तक सीमित रहते हैं।

आदर्श संदर्भित मूल्यांकन

एक शिक्षिका ने कोई पूर्व निर्धारित कसौटी नही बनाई और परीक्षा उपलब्धि के आधार पर न किसी को उत्तीर्ण किया और न किसी को अनुत्तीर्ण किया। उसने केवल यह समझा दिया कि परीक्षा परिणामों के आधार पर कक्षा के सबसे ज्यादा अंक प्राप्त करनेवाले विद्यार्थी और सबसे कम अंक प्राप्त करनेवाले विद्यार्थी की तुलना में प्रत्येक विद्यार्थी का क्या स्थान है। अर्थात, विद्यार्थियों के समक्ष, कक्षा में अधिकतम और न्यूनतम प्रदर्शन का आदर्श प्रस्तुत किया गया और सभी को यह कहा गया कि वे स्वयं यह आंके कि अधिकतम आदर्श प्रदर्शन और उनके प्रदर्शन में कितना अन्तर है और इसे कैसे कम किया जा सकता है। इस प्रकार, जब छात्रों की उपलब्धि की व्याख्या छात्रों के किसी समूह विशेष के संदर्भ में की जाती है तो आदर्श संदर्भित परीक्षण किया जाता है।

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन

सामान्यतः विद्यालयी गतिविधियों में विद्यार्थियों के सीखने की गति, क्षमता, दक्षता या उसके द्वारा प्राप्त उपलब्धि स्तर का आकलन एवं मूल्यांकन परंपरागत रूप से होता रहा है। वर्गकक्ष में शिक्षक द्वारा पाठ्य विषयवस्तु की जानकारी देने के उपरांत यह अपेक्षा की जाती है कि विद्यार्थियों ने उसे पूरी तरह ग्रहण कर लिया होगा। परंपरागत तौर पर ऐसी जानकारी के लिए सावधिक एवं संकलनात्मक मूल्यांकन का सहारा लिया जाता रहा है। ऐसे मूल्यांकन से विद्यार्थियों की जानकारी के स्तर का मोटा आकलन तो होता है परंतु उसकी वास्तविक प्रगति, उपलब्धि एवं समझ का वास्तविक आकलन नहीं हो पाता, न ही विद्यार्थियों के सह–संज्ञानात्मक पक्षों की जानकारी हो पाती है। पारंपरिक मूल्यांकन की एक बड़ी समस्या यह थी कि इसमें मूल्यांकन के आधार पर बहुत सीमित थे और बच्चों की रटने और उसे ढ़ाई तीन घंटे में लिख देने की क्षमताओं का ही मूल्यांकन होता था। चूंकि, यह मूल्यांकन अंकों पर आधारित होता था इसलिए बच्चों में अधिक–से–अधिक अंकों की प्राप्ति के लिए होड़ लगी रहती थी, जिसकी वजह से बोर्ड परीक्षाओं के आने पर वे अत्यधिक तनाव का शिकार हो जाते थे।

पारंपरिक मूल्यांकन की इन्हीं विसंगतियों को ध्यान में रखते हुए सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की अवधारणा को विकसित किया गया। सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की अवधारणा बिल्कुल नई अवधारणा नहीं है बल्कि इनके अंतर्गत

आनेवाली मुख्य बिन्दुओं की चर्चा NCF 1975 से मिलती है। 1986 की नई शिक्षा नीति में भी सतत एवं व्यापक मूल्यांकन शब्द प्रयुक्त हुआ है। सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के महत्व को देखते हुए प्रारंभिक विद्यालय में इसे लागू करने हेतु प्रयास प्रारंभ हुए। विभिन्न शैक्षणिक योजनाओं/शिक्षक प्रशिक्षणों के माध्यम से शिक्षकों तक इसकी समझ बनाने का प्रयास किया गया। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 एवं बिहार पाठ्यचर्या 2008 में भी इनके स्वरूप को स्वीकार किया तथा लागू करने के लिए उपाय किए गए। इसे सीखने–सिखाने की आधुनिक नीति के रूप में व्याख्यायित किया गया।

कालान्तर में इसे बच्चों की मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार कानून में भी जगह मिली। आज यह तथ्य सर्वमान्य है कि वर्गकक्ष के अंदर सशक्त तरीके से शिक्षण–प्रक्रिया को संचालित करने तथा बच्चों के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास हेतु सतत एवं व्यापक मूल्यांकन महत्वपूर्ण है। आज विद्यालयों में इसका प्रयोग हमारी संवैधानिक बाध्यता भी है।

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की अवधारणा

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन का उद्देश्य विद्यालय में ऐसी शिक्षण–प्रक्रिया के उपयोग से है जिसके द्वारा विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास किया जा सके, न कि सिर्फ शैक्षणिक विकास। सीखने–सिखाने के क्रम में बच्चों की आवश्यकता के अनुसार सिखाने की प्रक्रिया में आवश्यक अपेक्षित बदलाव किया जा सके एवं बच्चों की व्यक्तिगत विशेषताओं को उभारते हुए उनके सर्वांगीण विकास हेतु ठोस पहल किया जा सके। सतत एवं व्यापक मूल्यांकन का यह भी उद्देश्य है कि बच्चों के जीवन के शैक्षणिक पक्ष अर्थात संज्ञानात्मक पक्ष के साथ–साथ भावनात्मक पक्ष एवं मनोक्रियात्मक पक्ष के विकास पर भी समान रूप से बल दिया जाए ताकि ये पक्ष गौण न रह जाएं।

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन का शाब्दिक अर्थ सीखने के सभी क्षेत्रों का लगातार मूल्यांकन है। लेकिन सवाल यह उठता है कि सीखने के क्षेत्र क्या हैं? मूल्यांकन के सापेक्ष इसकी सीमायें क्या हैं? इसी प्रकार सतत का क्या तात्पर्य है, इन्हें भी समझने की आवश्यकता है। आइए हम इसे बारी–बारी से समझें –

विद्यार्थियों की सीखने की क्रियाओं के दौरान उनकी सक्रियता, सहभागिता, कठिनाईयों इत्यादि को पहचानना और इनके आधार पर उनके विकास में मदद करनेवाली योजना बनाकर अपनी शिक्षण–प्रक्रिया में बदलाव लाना आदि चरणों का सतत आकलन अर्थात् लगातार अवलोकन किया जाना सतत के अंतर्गत आता है।

बच्चा दिए गए पाठ को कैसे सीखता है, सीखने की प्रक्रिया मनोरंजन एवं चुनौतीपूर्ण है या नहीं, बच्चा स्वयं करके सीख रहा है या समूह में, शिक्षक का अपने अवलोकन के दौरान लगातार इन बिन्दुओं का ध्यान रखना चाहिए। यदि किसी विशेष विद्यार्थी को उस विषयवस्तु को समझने में परेशानी या कठिनाई आ रही हो तो वे उसे दूसरे तरीके से या अलग से समय देकर भी सिखाने का प्रयास करना चाहिए।

सतत मूल्यांकन शिक्षकों से यह अपेक्षा करता है कि वे बच्चों के सीखने की प्रक्रियाओं तथा मूल्यांकन के उपकरणों एवं बच्चों की उपलब्धियों का नियमित अभिलेखन करें तथा इस अभिलेखन के आधार पर हर बच्चे का सीखना सुनिश्चित करें।

व्यापक का अर्थ सीखने–सिखाने के संदर्भ में उन सभी आयामों को सीखने के दायरे में लाने से है जिसकी विद्यालय अक्सर उपेक्षा करता रहता है। व्यक्ति का संपूर्ण विकास तभी संभव है जब उसके विकास के सभी आयामों जैसे – शारीरिक, मनोक्रियात्मक, सामाजिक, शैक्षणिक इत्यादि का साथ–साथ विकास हो। संज्ञानात्मक पक्ष का संबंध जहाँ विषयगत ज्ञान और सम्मान से है वहीं सह–संज्ञानात्मक पक्ष का संबंध उसके व्यवहार एवं चरित्र से है। सह संज्ञानात्मक पक्ष में चूंकि बच्चों के व्यक्तित्व के पहलुओं जैसे – दया, सहयोग की भावना, प्रेम, स्वास्थ्य की देखभाल, सौदर्य बोध इत्यादि शामिल हैं। अतः इनके मूल्यांकन का कोई ठोस तरीका हमारे पास नहीं है। इनके मूल्यांकन का मूल आधार सतत एवं व्यापक अवलोकन ही है।

इसी प्रकार मनोक्रियात्मक क्षेत्र में बच्चों की कलात्मक क्षमता, सृजनात्मक गतिविधियाँ जैसे – हस्तकला, काष्ठकला, चित्रकला, स्वयं से नया स्वरूप प्रदान करना, वाचन, विश्लेषण और विमर्श इत्यादि आते हैं। अतएव, इन गतिविधियों में बच्चों की सक्रियता एवं रूचि का मूल्यांकन भी अवलोकन द्वारा ही संभव है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यापक' के अन्तर्गत हम शैक्षणिक उपलब्धि के साथ–साथ अन्य कई पहलुओं का प्रमुखता से शामिल करते हैं।

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन सीखने–सिखाने की प्रक्रिया का मूल है। यह मूल्यांकन जितना बच्चों को सिखाने में कारगर है उतना ही शिक्षकों को अपने शिक्षण–प्रक्रिया को समझने एवं परखने का मौका देता है। साथ–ही, शिक्षकों को सिखाने की नई पद्धति एवं प्रक्रिया अपनाने के लिए प्रेरित करता है। सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के लिए आवश्यक है कि हम सतत एवं व्यापक शिक्षण सुनिश्चित करें। इसके लिए यह आवश्यक होगा कि हम शिक्षण की विधियों को बच्चों की आवश्यकताओं के अनुसार निर्धारित करें तथा उनमें आवश्यक बदलाव करते रहें। अतएव हमें शिक्षण की शुरूआत बच्चों के अनुभवों से करनी होगी।

बच्चों को अपने ही अनुभव पर किए गए चिंतन द्वारा सीखने के लक्ष्य की ओर बढ़ना होगा। स्वयं करते हुए बार–बार नतीजे निकालना, अपनाए गए तरीकों के बारे में सोचते रहना तथा यह भी कि ''सीखा कैसे जाता है?'' इस प्रक्रिया की शुरूआत भी विद्यालयों में करनी होगी।

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रक्रिया

सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन को कैसे किया जाए, यह भी एक चुनौतिपूर्ण एवं जिम्मेदारी भरा कार्य है। इसे करने के लिए अलग–अलग विधाओं से मूल्यांकन को सदैव करते रहना होगा। दो मुख्य बातों को ध्यान में रखना जरूरी है – पहला यह कि मूल्यांकन मे एक निरंतरता बनी रहे तथा दूसरा यह कि मूल्यांकन में विद्यार्थी के विभिन्न पक्षों को शामिल किया जाए। सतत एवं व्यापक मूल्यांकन कैसे किया जाए, इससे संबधित कुछ विधाओं का उल्लेख आगे किया जा रहा है :

- विद्यालय परिवार अर्थात् शिक्षकों से औपचारिक एवं अनौपचारिक बातचीत कर माहौल बनाना।
- विद्यालय में बच्चों के लिए भयमुक्त वातावरण का निर्माण करना।
- यह जानना कि बच्चे कहाँ तक सीख चुके हैं। इसके लिए अभिलेखन की रूपरेखा बनाना एवं उसका अभिलेखन करना।
- जहाँ से बच्चों सीखने का स्तर का पता चले, वहीं से अपनी योजना एवं रणनीति शुरू करना।
- प्रत्येक बच्चे का प्रोफाइल बनाना अर्थात्, पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, शैक्षणिक स्थिति, भाषागत ज्ञान, आयु, शारीरिक स्थिति की जानकारी रखना।
- बच्चों के परियोजना कार्य एवं अन्य गतिविधियों यथा – चित्रांकन लेखन, कविता एवं अन्य गतिविधियों में सक्रियता का रिकार्ड (Portfolio) बनाना।
- बच्चों को क्या–क्या सीखना/सिखाना है, इसके लिए पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तक (विषयवस्तु) की जानकारी रखना।
- प्रत्येक पाठ के शिक्षण बिन्दु तय करना।
- त्रैमासिक/मासिक/साप्ताहिक/दैनिक शिक्षण योजना बनाना।
- बच्चों में छिपे विशेष कौशल को पहचान कर उसे बढ़ाने के लिए योजना बनाना।
- विषयवस्तु में चिन्हित शिक्षण बिन्दु के अनुरूप सीखने एवं सिखाने के तरीकों की समझ बनाना।

- बच्चों के सीखने की गति के अनुरूप शिक्षण विधि/योजना में लगातार परिवर्तन एवं उस विधि का उपयोग करना।
- सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में सभी बच्चों की भागीदारी सुनिश्चित करना।
- प्रत्येक बच्चे में आत्मविश्वास पैदा करना कि वे हर अवधारणा एवं कौशल सीख सकते हैं।
- प्रत्येक बच्चे के संबंध में यह जानना कि बच्चे को 'किस प्रकार की' और कहाँ मदद की आवश्यकता है।
- बच्चे के विभिन्न क्रियाकलापों का सुक्ष्म अवलोकन करना एवं अभिलेखन टिप्पणियों के साथ रखना।
- प्राप्त परिणाम की व्याख्या कर निष्कर्ष निकालना एवं सुधारात्मक उपाय करना।
- बच्चों के लिए विभिन्न प्रकार की शैक्षणिक तथा सह–शैक्षणिक गतिविधियाँ यथा – वाद–विवाद, खेलकूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम हस्तकला, बागवानी इत्यादि का आयोजन करना।
- वर्ग शिक्षक द्वारा प्रत्येक बच्चे के उपलब्धियों का अवलोकन कर अभिलेखन करना।
- विषय शिक्षक द्वारा अपने विषय से संबंधित बच्चों की प्रगति का रिकार्ड वर्ग शिक्षक को उपलब्ध कराना।
- प्रधानाध्यापक द्वारा बच्चों की प्रगति की मासिक/त्रैमासिक समीक्षा कर अपना मंतव्य दर्ज करना।

शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के दौरान अधिगम के लगातार आकलन के लिए जो भी कार्य किए जाते हैं ये सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की ही प्रक्रियाएँ हैं। ये प्रक्रियाएँ पर्याप्त लचीली, समय एवं स्थान के अनुसार उपयोगी तथा रचनात्मक होनी चाहिए। इसे बच्चों के संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास हेतु वर्ग कक्ष विनिमयन के दौरान भी किया जाएगा तथा सावधिक भी। कुछ प्रक्रियाएँ निम्नवत् हो सकती हैं –

1. **दैनिक शिक्षण योजना :** इसके अंतर्गत शिक्षक एक दिन पूर्व बैठकर अगले दिन अलग–अलग कक्षाओं में पढ़ाई जाने वाली विषयवस्तु का चयन करते हैं तथा चयनित विषयों को पढ़ाने के लिए कार्य–योजना बनाते है।
2. **पूछताछ :** इसके अन्तर्गत शिक्षक बातचीत द्वारा बच्चों से संबंधित जानकारी उनके पूर्व ज्ञान, सिखाए गए बिन्दुओं के संबंध में जानकारी प्राप्त करते हैं एवं उनका मूल्यांकन करते हैं।

3. **अवलोकन** : इसके अंतर्गत संज्ञानात्मक और सहसंज्ञानात्मक क्षेत्रों में व्यक्तिगत/छोटे समूह में किए गए क्रियाकलापों के क्रम में अवलोकन द्वारा मूल्यांकन किया जाता है।
4. **प्रश्नावली** : इसके अंतर्गत प्रश्नावली के माध्यम से अधिगम बिन्दुओं के समझ की लिखित जानकारी ली जा सकती है।
5. **गतिविधि** : रोचक एवं चुनौतीपूर्ण गतिविधियों के माध्यम से शिक्षण जिसमें सभी बच्चों की सहभागिता सुनिश्चित हो सके तथा बच्चे स्वयं अपनी समझ विकसित कर सकें।
6. **चाइल्ड पोर्टफोलियो** : यह प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अलग–अलग बनाया जाना चाहिए। इसमें बच्चों से संबंधित सभी प्रकार की जानकारियों का संकलन होता है जिसे देखकर उसकी सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक स्थिति का मूल्यांकन किया जा सकता है। इसमें तीन प्रकार की चीजें होंगी –
   i. चाईल्ड प्रोफाइल 'अ' : इसमें बच्चे एवं उसके परिवार के बारे में सामान्य जानकारी एवं उसके स्वास्थ्य संबंधी टिप्पणियाँ होंगी।
   ii. चाईल्ड प्रोफाइल 'ब' : संज्ञानात्मक और सह–संज्ञानात्मक प्रगति का ब्योरा इसमें अंकित होगा। साथ–ही, शिक्षकों के सुझाव एवं टिप्पणियाँ भी लगी रहेंगी।
   iii. बच्चों द्वारा बनाई और जुटाई गई सामग्री, उसके द्वारा लिखी गई सामग्री, पूछे गए सवाल एवं किए गए उल्लेखनीय कार्यो का ब्योरा भी उसके पोर्टफोलियो में होगा।
7. **परियोजना कार्य** : इसके अंतर्गत निश्चित अधिगम बिन्दु के अनुसार किए गए परियोजना कार्य मूल्यांकन के आधार हो सकते हैं। जैसे – भाषा में किसी पाठ का चयन कर उसमें आए संज्ञा शब्दों की सूची तैयार करना आदि। इसी प्रकार पाठ्यपुस्तक में वर्णित परियोजना कार्य भी मूल्यांकन के लिए काफी उपयोगी है। पर्यावरणीय मुद्दे से संबंधित स्थानीय समस्या का अवलोकन एवं समाधान हेतु कई परियोजना कार्य अलग मुद्दों पर की जा सकती है।

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के क्रम में आनेवाली चुनौतियां

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के क्रम में शिक्षक के समक्ष अनेक चुनौतियाँ आती हैं। ये चुनौतियाँ बहुत स्वाभाविक हैं क्योंकि मनावैज्ञानिक दृष्टि से यह सर्वमान्य तथ्य है कि हरेक विद्यार्थी अद्वितीय है तथा उसके कुछ विशेष गुण और कौशल हैं। इसी तरह से शैक्षणिक मनोविज्ञान वैयक्तिक अंतरो को सकारात्मक रूप से

स्वीकार करता है तथा शिक्षकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे बच्चों के बीच में मौजूदा व्यक्तिगत अंतरों को समझते हुए प्रत्येक बच्चे की आवश्यकता के अनुसार उसके शिक्षण का प्रयास करें, जिसका आशय है कि यह जरूरी नहीं है कि हरेक बच्चे की सीखने की गति समान होगी। यदि बच्चे अलग–अलग स्तरों पर अलग–अलग गति से सीख रहे हैं तो शिक्षक को उनकी गति के अनुसार ही कार्य–योजना बनानी होगी जो निम्नवत हो सकती हैं –

- बच्चों की व्यक्तिगत समझ को बढ़ाना।
- बच्चों के सशक्त पक्ष की पहचान करना।
- बच्चों के अनुरूप रूचिकर विधियों की पहचान।
- वर्गकक्ष में बच्चों की सहभागिता बढ़ाना।
- बच्चों के चहुमुखी विकास पर बल।
- पाठ के अनुरूप अधिगम बिन्दु की पहचान।
- बच्चों के हिसाब से गतिविधियों का चयन एवं आवश्यकतानुसार उसमें बदलाव लाना।
- विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों के अनुरूप योजना बनाना।
- प्रतिभावान बच्चों के लिए योजना बनाना।
- छात्रों के ज्ञान के स्तर में अंतर का होना।
- छात्रों में समता का अहसास कराना।
- धारदार प्रश्नों का चयन करना।
- रोचक एवं चुनौतीपूर्ण गतिविधि का अंतर करना।

अतएव यह आवश्यक है कि शिक्षक उपर्युक्त चुनौतियों का ध्यान रखते हुए अपनी कार्य–योजना का निर्माण करें ताकि बेहतर तरीके से बच्चों में उपलब्धि की संप्राप्ति का प्रयास किया जा सके।

प्रगति रिपोर्ट का विश्लेषणात्मक अध्ययन

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के क्रम में यह आवश्यक हो जाता है कि शिक्षक द्वारा शिक्षण–प्रक्रिया, आवश्यकतानुसार उसमें लाए जानेवाले बदलाव, बच्चों की उपलब्धि स्तर में वास्तविक परिवर्तन इत्यादि का अभिलेखन किया जाए। इसके लिए शिक्षा के अधिकार कानून–2009 के अनुसार प्रत्येक बच्चों का संचयी प्रगति–पत्रक तैयार करना है। सिर्फ लिखित और मौखिक परीक्षा के द्वारा बच्चों की प्रगति का आकलन न्यायपूर्ण नहीं है। शिक्षक द्वारा बच्चों का लगातार अवलोकन कर यह पता लगाना कि बच्चा क्या नहीं जानता है के स्थान पर

बच्चा क्या जानता है को मूल्यांकन का आधार बनाना चाहिए। इस संबंध में राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, बिहार ने शिक्षा का अधिकार कानून–2009, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 एवं बिहार पाठ्चयचर्या की रूपरेखा–2008 को ध्यान में रखकर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के तरीकों के लिए विभिन्न सामग्रियों का निर्माण किया है। ये सामग्रियां निम्नवत् हैं:–

1. शिक्षण सहयोग संदर्शिका
2. बच्चों का प्रगति–पत्रक
3. विद्यालय का प्रगति–पत्रक

ये तीनों सामग्रियाँ आपस में खास संबंध रखती हैं। शिक्षण सहयोग संदर्शिका वर्गकक्ष संचालन में सहयोग करती हैं। साथ–ही पाठवार बच्चों की प्रगति को संधारित करने के संकेतक भी बताती हैं। इन संकेतकों को समेकित कर बच्चेवार प्रगति–पत्रक तैयार किया जाता है। संदर्शिका में दिए गए संकेतकों में से कुछ मुख्य संकेतकों को प्रगति–पत्रक में शामिल किया गया है। बच्चेवार प्रगति–पत्रक के आधार पर विद्यालय का प्रगति–पत्रक तैयार किया जाना है।

प्रगति–पत्र (रिपोर्ट कार्ड) तैयार करने से शिक्षक को अपने प्रत्येक विद्यार्थी के बारे में यह सोचने का मौका मिलता है कि उसने सत्र के दौरान क्या सीखा और किस क्षेत्र में उसको ज्यादा मेहनत करने की ज़रूरत है। ऐसे रिपोर्ट कार्ड को लिख पाने के लिए शिक्षक को प्रत्येक विद्यार्थी के बारे में सोचना होगा और इसीलिए रोज़मर्रा के शिक्षण के दौरान उस पर ध्यान देना होगा। इसके लिए विशिष्ट परीक्षाओं की ज़रूरत नहीं है। स्वयं सीखने वाली गतिविधियाँ बच्चों में निरंतर चलने वाले अवलोकनात्मक एवं गुणात्मक आकलन का आधार बनती हैं। अवलोकन के आधार पर रोज़ की दैनंदिनी रखने से निरंतर, सतत एवं व्यापक मूल्यांकन में मदद मिलती है। एक शिक्षक की साप्ताहिक डायरी से लिया गया अंश – ''किरण को अपने काम में मज़ा आया। उसको वे किताबें फौरन पसंद आईं जो छोटी थीं और जिनमें जानकारी थी। वह कहता है कि उसे साफ और सादी भाषा पसंद है। तथ्यों को लिखते हुए वह अक्सर संक्षिप्त उत्तर लिखता है। उसका कहना है कि इससे वह चीज़ों को आसानी से समझ पाता है। उसे व्यावहारिक तरीका पसंद है''। इसी तरह विभिन्न स्तर पर बच्चों के काम और उनके बारे में लिखने से शिक्षार्थी और शिक्षक को उसके अधिगम की प्रगति का व्यवस्थित रिकॉर्ड मिल जाता है।

यह विश्वास कि आकलन से सीखने में आने वाली कठिनाइयों का पता लगना ही चाहिए ताकि उनका उपचार हो सके अक्सर बहुत ही

अव्यावहारिक हो जाता है और यह शिक्षाशास्त्रीय प्रयास की ठोस समझ पर आधारित नहीं होता। अवधारणात्मक विकास से जुड़ी समस्याएँ पहचाने जाने के लिए औपचारिक परीक्षण का इंतज़ार नहीं कर सकतीं। पढ़ाने के क्रम के दौरान ही एक शिक्षक ऐसी समस्याओं से अवगत हो सकता है।

(राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005, पृ.84–83)

विद्यार्थियों का प्रगति–पत्रक

प्रगति–पत्रक से आशय उस दस्तावेज से है जिसमें बच्चों से संबंधित सामान्य सूचनाएं एवं प्रगति का विवरण दर्ज किया जाता है। प्रत्येक बच्चों का अलग–अलग सत्रवार प्रगति–पत्रक तैयार किया जाना है। बच्चों के प्रगति–पत्रक में बच्चों की सामान्य जानकारी के अलावा बच्चों के सीखने के स्तर को भी प्रत्येक सत्र के बाद अंकित करना है। इसे अंकित करने के लिए शिक्षण सहयोग संदर्शिका एवं रजिस्टर की सहायता ली जाती है।

जहाँ शिक्षण संर्दिशका उपलब्ध नहीं हो वहाँ प्रगति–पत्रक में अंकित शैक्षणिक क्षेत्रों के **सीखने के बिन्दुओं** का उपयोग कर 'कितने बच्चों ने क्या सीखा' को अंकित करने हेतु रजिस्टर का निर्माण किया जा सकता है। अंग्रेजी एवं पर्यावरण के लिए प्रगति–पत्रक से **'सीखने के बिन्दु'** लेकर रजिस्टर का निर्माण करना होगा ताकि सभी बच्चों का प्रगति–पत्रक तैयार करने में आपको कठिनाई न हो तथा बच्चों की प्रगति से आप लगातार अवगत होते रहेंगे। भाषा एवं गणित के लिए बनाए गए रजिस्टर की तरह इस रजिस्टर को भी बनाया जा सकता है।

प्रगति–पत्रक निम्न प्रकार से है :–

प्रगति–पत्रक का विवरण निम्नवत् है –

सर्वप्रथम प्रगति–पत्रक में बच्चों से संबंधित सारी सूचनाएं विस्तारपूर्वक भरी जाती हैं। प्रत्येक बच्चे को एक आई डी नम्बर आवंटित किया जाता है। यह नम्बर बच्चे की प्रारंभिक शिक्षा पूरी होने तक एक ही रहेगा । इसके दूसरे भाग में बच्चों के सीखने के स्तर से संबंधित सूचनाएँ अंकित की जाती हैं जिसका विवरण निम्नवत् है –

सीखने के बिन्दु	ckrksa dks lqurk ,oa le>k gSA	अपनी बात समझाता है।	कविता सुनाता है	कहानी सुनाता है	वाक्यों को समझकर पढ़ता है।	प्रश्नों के मौखिक उत्तर देता है।	अक्षरों एवं छोटे शब्दों को पहचानकर पढ़ता है।	अक्षरों से शब्द बनाता है।	शब्दों को देखकर लिखता है।	क से ह तक के अक्षरों को पहचान कर लिखता है।	तीन–चार शब्द वाले वाक्य को पढ़ता है।	दो अक्षरों वाले शब्द को सुनकर लिखता है।
पहला सत्र	☆	☆☆	☆	☆☆	☆							
दूसरा सत्र	☆☆	☆☆☆	☆☆	☆☆☆	☆☆	☆	☆☆	☆	☆	☆☆		☆☆
तीसरा सत्र	☆☆☆	☆☆☆	☆☆	☆☆☆	☆☆	☆☆☆	☆☆	☆	☆☆	☆☆	☆	☆☆☆

प्रयास की प्रयास की आवश्यकता।

★★ सीख रहें है।

★★★ सीख चुका है।

★

प्रगति–पत्रक का प्रारूप

छात्रों के प्रगति–पत्रक में सीखने के बिन्दुओं को सत्रवार भरा जाना है ताकि बच्चे की शैक्षणिक स्तर का आकलन किया जा सके। इसके लिए एक, दो या तीन स्टार अंकित करना है।

इस सत्र की अवधि का निर्धारण निम्नवत किया गया है।

सत्र	अवधि	प्रपत्र भरे जाने का महीना
पहला सत्र	अप्रैल, मई, जून, जुलाई	जुलाई
दूसरा सत्र	अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर, नवम्बर	नवम्बर
तीसरा सत्र	दिसम्बर, जनवरी, फरवरी, मार्च	मार्च

विद्यालय का प्रगति–पत्रक

विद्यालय का प्रगति–पत्रक विद्यालय–दर्पण के समान है जिसमें विद्यालय से जुड़ी लगभग सारी जानकारियों को सम्मिलित किया गया है। यह प्रगति–पत्रक प्रत्येक सत्र के अंत में अर्थात्, जुलाई, नवम्बर एवं मार्च में भरा जाना है।

विद्यालय प्रगति–पत्रक पाँच खंड में विभक्त हैं :

क. सामान्य जानकारी
ख. भौतिक स्थिति
ग. प्रबंधन एवं सामुदायिक सहभागिता

घ. अकादमिक उपलब्धियाँ

ङ विद्यालय की ग्रेडिंग

क) सामान्य जानकारी : इसके अन्तर्गत विद्यालय की सामान्य जानकारी भरा जाना है। इसे प्रधानाध्यापक द्वारा प्रत्येक सत्र के अन्त में भरा जाएगा। विद्यालय कोड से आशय है – डायस में विद्यालय को दिया गया कोड। इसके अतिरिक्त इसमें विद्यालय अन्य सामान्य सूचनाएं भरी जाती है।

ख) भौतिक स्थिति : प्रत्येक सत्रांत में अपने विद्यालय की भौतिक स्थिति के आधार पर प्रगति–पत्रक विद्यालय के प्रधानाध्यापक द्वारा भरा जाएगा तथा श्रेणीकरण का अंक दिया जाएगा। उदाहरणस्वरूप – शौचालय, रसोईघर, पेयजल व्यवस्था इत्यादि से संबंधित सूचनाएं। प्रत्येक मानक के लिए 2 या उससे अधिक विकल्प/स्थिति दी गई हैं तथा प्रत्येक विकल्प/स्थिति के लिए श्रेणीकरण के अंक निर्धारित हैं। विद्यालय की स्थिति के अनुसार श्रेणीकरण का प्राप्तांक सत्रवार भरा जाएगा।

ग) प्रबंधन एवं सामुदायिक सहभागिता : प्रबंधन एवं सामुदायिक सहभागिता के जुड़े मानकों यथा – 'विद्यालय का समय पर खुलना, बाल संसद तथा मीना मंच का गठन, विद्यालय अनुदान का उपयोग, विद्यालय शिक्षा समिति की बैठक की स्थिति' इत्यादि मानकों के लिए दो या उससे अधिक विकल्प/स्थिति दिए गए हैं तथा प्रत्येक विकल्प/स्थिति के लिए श्रेणीकरण के अंक निर्धारित हैं। विद्यालय की स्थिति के अनुसार श्रेणीकरण का प्राप्तांक सत्रवार भरा जाएगा।

घ) अकादमिक उपलब्धियाँ : अकादमिक उपलब्धियों को भरने के लिए बच्चों के प्रगति–पत्रक एवं रजिस्टर की सहायता ली जाएगी। वर्ग–वार विभिन्न दक्षता प्राप्त करने वाले बच्चों की संख्या के आधार पर श्रेणीकरण के प्राप्तांक निर्धारित हैं।

विषयवार सीखने के स्तर हेतु प्रत्येक कक्षा के तीन–तीन विषयों भाषा, गणित एवं अंग्रेजी में शैक्षणिक दक्षता रखने वाले बच्चों की संख्या के आधार पर प्राप्तांक निर्धारित हैं। जैसे – कक्षा–1 में 40 बच्चे नामांकित हैं एवं प्रथम सत्र के अंत में 20 बच्चों ने एक दक्षता 'अपनी बात समझाता है' को प्राप्त कर लिया है तो बच्चों के प्रतिशत कॉलम में 50 प्रतिशत तथा प्राप्तांक में $50 \div 10 = 5$ अंक भरा जाएगा।

ङ) विद्यालय की ग्रेडिंग : अकादमिक उपलब्धियों के कुल प्राप्तांक के लिए यदि विद्यालय में केवल कक्षा 1 से 5 तक की कक्षाओं का संचालन होता है तो अकादमिक उपलब्धियों के लिए अधिकतम प्राप्तांक 500 होगा। इसी प्रकार कक्षा 1 से 8 तक की कक्षाओं के संचालन होने वाले विद्यालयों के लिए अकादमिक

उपलब्धियों का अधिकतम प्राप्तांक 770 होगा। इसके आधार पर विद्यालय के अकादमिक उपलब्धियों का आकलन किया जा सकेगा।

विद्यालयों की ग्रेडिंग भौतिक स्थिति, प्रबंधन एवं सामुदायिक सहभागिता तथा अकादमिक उपलब्धियों में प्राप्तांक के आधार पर किया जाएगा। कुल अधिकतम प्राप्तांक कक्षा 1–5 वाले विद्यालयों के लिए 560 तथा कक्षा 1–8 वाले विद्यालयों के लिए 830 है। इनमें प्राप्त अंकों के आधार पर प्रत्येक सत्र के अंत में विद्यालयों की ग्रेडिंग की जाएगी। जैसे–

मानक	अधिकतम निर्धारित अंक	प्राप्त अंक			प्राप्त अंकों का प्रतिशत		
		प्रथम सत्र	द्वितीय सत्र	तृतीय सत्र	प्रथम सत्र	द्वितीय सत्र	तृतीय सत्र
A. भौतिक स्थिति	20	5	10	18	25.00%	50.00%	90.00%
B. प्रबंधन एवं समुदायिक सहभागिता	40	15	15	30	37.50%	37.50%	75.00%
C. अकादमिक उपलब्धियाँ	500/770*	225	240	405	45.00%	48.00%	81.00%
कुल प्राप्तांक	560/830**	245	265	453	43.75%	47.32%	80.89%

* कक्षा I-V के लिए 500, कक्षा I-VIII के लिए 770

**कक्षा I-V के लिए 560, कक्षा I-VIII के लिए 830

विद्यालय को प्राप्त ग्रेड		
प्रथम सत्र	द्वितीय सत्र	तृतीय सत्र
D	D	B

गेडिंग के मानक : प्राप्त अंकों का प्रतिशत 90% से 100% - A, 80% से 89% - B, 70% से 79% - C, 70% से कम – D

प्रारंभिक विद्यालय (1–8) के लिए ग्रेडिंग

मानक	अधिकतम निर्धारित अंक	प्राप्त अंक			प्राप्त अंकों का प्रतिशत		
		प्रथम सत्र	द्वितीय सत्र	तृतीय सत्र	प्रथम सत्र	द्वितीय सत्र	तृतीय सत्र
A. भौतिक स्थिति	20	15	16	18	75.00%	80.00%	90.00%
B. प्रबंधन एवं समुदायिक सहभागिता	40	25	32	38	62.50%	80.00%	95.00%
C. अकादमिक उपलब्धियाँ	500/770*	560	590	640	72.73%	76.62%	83.12%
कुल प्राप्तांक	560/830**	600	638	696	72.29%	76.87%	83.86%

* कक्षा I-V के लिए 500, कक्षा I-VIII के लिए 770

**कक्षा I-V के लिए 560, कक्षा I-VIII के लिए 830

विद्यालय को प्राप्त ग्रेड		
प्रथम सत्र	द्वितीय सत्र	तृतीय सत्र
C	C	B

गेडिंग के मानक : प्राप्त अंकों का प्रतिशत 90% से 100% - A, 80% से 89% - B, 70% से 79% - C, 70% से कम – D

इस प्रकार विद्यालय प्रगति–पत्रक के आधार पर विद्यालयों की ग्रेडिंग भी की जा सकेगी। साथ–ही प्रत्येक विद्यालय एवं प्रत्येक बच्चों के विकास के गति का संधारण किया जा सकेगा एवं उसके आधार पर विद्यालय विकास योजना निर्माण को बल मिलेगा। उपरोक्त सभी कार्य प्रधानाध्यापक की देखरेख में शिक्षको के सहयोग से किए जाएंगे।

यह विद्यालय प्रगति–पत्रक ही विद्यालय का राज्य स्तर पर उत्कृष्ट विद्यालय के रूप में चयन का मुख्य आधार है। इसके लिए जिन विद्यालय शिक्षा समितियों के लोगों ने अपने विद्यालय एवं उसके आलोक में भरे गये विद्यालय प्रगति–पत्रक में विद्यालय को 'A' ग्रेड पाता है उन्हें संबंधित जिले के जिला शिक्षा पदाधिकारी के माध्यम से अपने विद्यालय को उत्कृष्ट होने का दावा पेश करना होता है। राज्य स्तरीय टीम उस दावे के आलोक में उस विद्यालय के द्वारा भरे गये प्रगति–पत्रक के आधार पर उस विद्यालय का स्थनीय पर्यवेक्षण करती है तथा दर्ज सूचनाएं सही पाए जाने की स्थिति में इस विद्यालय को 'A' श्रेणी के विद्यालय घोषित करने के प्रस्ताव को स्वीकृति देती है जिसके आलोक में राज्य सरकार उक्त विद्यालय के प्रधान शिक्षक, अध्यक्ष एवं समिति के समक्ष राज्य स्तरीय समारोह में उक्त विद्यालय को उत्कृष्ट घोषित कर पुरस्कार एवं प्रमाण–पत्र प्रदान करती है। इस क्रम में पहली बार 2013 में राष्ट्रीय शिक्षा दिवस 11 नवम्बर के अवसर पर राज्य के 273 विद्यालय को राज्य स्तर पर उत्कृष्ट घोषित किया गया।

उक्त सभी प्रगति–पत्रकों के माध्यम से शिक्षक समुदाय, अभिभावक एवं सभी को यह सोचने में मदद मिलती है कि बच्चे के सीखने की प्रक्रिया किस प्रकार से चल रही है। जिन विषयों को सीखने में बच्चों को कठिनाई हो रही है उनके लिए शिक्षक एवं अभिभावक को क्या करने की आवश्यकता है? इससे शिक्षकों की यह स्पष्ट दृष्टि बनती है कि कक्षायी क्रियाकलाप में उन्हें क्या–क्या करने की आवश्यकता है? किन–किन गतिविधियों में उन्हें अपनी, बच्चों की, अभिभावकों की सहभागिता सुनिश्चित करनी है? किन–किन गतिविधियों का अभिलेखन करना है? उन्हें यह भी दृष्टि मिलती है कि किन–किन नवीन गतिविधियों का उपयोग शिक्षण प्रक्रिया में करना पड़ेगा?

विद्यालय प्रगति–पत्रक के माध्यम से समुदाय अपने विद्यालय की भौतिक एवं शैक्षणिक के साथ–साथ सह–शैक्षणिक गतिविधियों में विद्यालय के प्रदर्शन को भी जान सकता है। इसके माध्यम से वह अपने विद्यालय के शिक्षकों को और बेहतर करने के लिए प्रेरित कर सकता है।

समेकन

शिक्षण–अधिगम की प्रक्रिया में कक्षाकक्ष की समझ व प्रबन्धन की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रभावी शिक्षा के लिए एक शिक्षक को शिक्षण कौशल, कक्षाकक्ष प्रबन्धन कौशल तथा कक्षाकक्ष की व्यवस्था का उचित ज्ञान होना आवश्यक है। अध्यापन के पूर्व सीखने की योजना का निर्माण एवं अध्यापन की पूर्व तैयारी भी कक्षाकक्ष प्रबन्धन के अवश्यक घटक हैं। गतिविधियों एवं क्रियाकलापों के माध्यम से विद्यार्थियों की कक्षा सहभागिता को बढ़ाकर शिक्षण–अधिगम की प्रक्रिया को रोचक बनाना भी आवश्यक है।

मूल्यांकन की अवधारणा, विधियां, सतत एवं व्यापक मूल्यांकन तथा विभिन्न प्रकार के प्रगति–पत्रकों के विषय में जाना तथा उनका विश्लेषण किया। आपने आकलन व मूल्यांकन की जटिलता, तकनीक तथा अपनाई जानेवाली प्रक्रिया को समझा। सतत एवं व्यापक मूल्यांकन को शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के अभिन्न अंग के रूप में किस प्रकार स्थापित किया जाए, इससे संबंधित विभिन्न बिन्दुओं से आप अवगत हो सकें। अब आवश्यकता है कि आप आकलन व मूल्यांकन की विभिन्न अवधारणाओं को अपने विद्यालय के कक्षा शिक्षण तथा अलग–अलग कार्यक्रमों से जोड़कर देखें।

मूल्यांकन के लिए प्रश्न

1. एक कक्षाकक्ष के विविध स्वरूप क्या है? व्याख्या करें।
2. सीखने की योजना से आप क्या समझते है?
3 पाठ्य सहगामी क्रियाओं से विद्याथियों के व्यक्तित्व का विकास होता है। कैसे?
4 आप एक शिक्षक के रूप मे कक्षाकक्ष में किस तरह अनुशासन की चुनौतियों का सामना करेंगे?
5. मूल्यांकन एवं आकलन से आप क्या समझते हैं?
6. परीक्षा से मूल्यांकन भिन्न है। कैसे?
7. संकलनात्मक एवं निर्माणात्मक मूल्यांकन में आप किसे बेहतर मानेंगे? अपने उत्तर के पक्ष में पर्याप्त तर्क दें।

8. सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की अवधारणा स्पष्ट करते हुए इसकी उपयोगिता स्पष्ट कीजिए।
9. शैक्षणिक प्रक्रिया के निर्धारण में विद्यार्थी प्रगति–पत्रक की उपयोगिता पर एक विश्लेषणात्मक टिप्पणी लिखिए।
10 विभिन्न प्रकार के प्रगति पत्रकों की विद्यालय, विद्यार्थी एवं शिक्षक हित में उपयोगिता से संबंधित एक विश्लेषणात्मक टिप्पणी कीजिए।
11. शिक्षण सहयोग संदर्शिका शिक्षकों के लिए सहायक है। इसके पक्ष में अपना पाँच तर्क दीजिए।

इकाई **4**

शिक्षक वृत्तिक विकास के आयाम

- परिचय
- शिक्षक वृत्तिक विकास
    - शिक्षक वृत्तिक विकास की अवधारणा
    - शिक्षक वृत्तिक विकास के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों के स्वरूप
    - शिक्षक में नेतृत्व गुण का विकास
    - शिक्षक अस्मिता की संकल्पना
    - शिक्षक अस्मिता और वृत्ति से सम्बंधित तनावों की समझ
- मूल्यांकन के लिए प्रश्न

परिचय

आज समाज में शिक्षा का जो स्वरूप है, उसके लिए शिक्षकों से विशेष तैयारी की आवश्यकता है। शिक्षण वृत्ति को कई प्रकार से सम्वर्द्धित करने के लिए शिक्षक से संबंधित विभिन्न आयामों को स्वयं उन्हें ही पहले समझने की जरूरत है। शिक्षक के लिए आवश्यक कौशलों की जानकारी के विभिन्न आवश्यक कौशलों की आवश्यकता को भी महसूस कर उसके विकास हेतु प्रयत्नशील होंगे। इन वृत्तिक कौशलों के अभाव में कई शिक्षकों को अनावश्यक दवाब एवं तनाव का भी शिकार होना पड़ता है। आप तनाव के उन कारणों की पहचान कर उसे दूर करने में सक्षम हो पाएंगे तथा जिन माध्यमों के द्वारा आपमें वृत्तिक कौशलों का विकास हो सकता है उन माध्यमों की जानकारी प्राप्त कर उसके उपयोग द्वारा आप स्वयं में इन आवश्यक वांछित कौशलों का विकास कर सकेंगे। इसके साथ–ही अध्यापक अस्मिता का प्रश्न भी महत्वपूर्ण होता जा रहा है क्योंकि अध्ययनों से यह निकलकर आ रहा है कि अध्यापक की अस्मिता का उसके शिक्षण से गहरा सम्बंध है। साथ–ही, शिक्षक वृत्तिक विकास एवं अस्मिता के दृष्टिकोण से उसमें नेतृत्व गुण का विकास भी महत्वपूर्ण हैं।

प्राचीन काल से शिक्षा देना सेवा का काम माना जाता है। यही कारण है कि इस कार्य से जुड़े लोग समाज में काफी आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। गुरूओं के आते ही राजा अपना सिंहासन छोड़ उन्हें अपने सिंहासन पर आदर के साथ बिठाते थे। हालाँकि विद्याथियों की संख्या भी गिनी–चुनी होती थी। इसलिए शिक्षा लेने और देने वालों का निकट का सम्बन्ध स्थापित होता था। शिक्षक के अपने आचरण, रहन, सहन, भाषा–व्यवहार, से ही शिक्षार्थी काफी सीख लेते थे। दोनों में पिता–पुत्र सा स्नेह उत्पन्न होता था।

कालान्तर में बडी संख्या में विद्यार्थी शिक्षा लेने आने लगे। ऐसे में प्राचीन परिपाटी में बदलाव समय की माँग हो गई। धीरे–धीरे शिक्षण संस्थान खुलते गए और औपचारिक रूप से मेहनताना प्राप्त करके लोग शिक्षण कार्य करने लगे। इस पूरी प्रक्रिया में शिक्षण अब सेवा करने जैसा कार्य न रहकर औपचारिक रूप से ज्ञान देने वाला कार्य हो गया। अब ज्ञान के अतिरिक्त कौशल एवं अभिवृत्ति की जरूरत ज्यादा हो गई और धीरे–धीरे यह एक पेशे के रूप में स्वीकार कर लिया गया ।

अब बड़ी संख्या में शैक्षणिक संस्थान हैं और शिक्षण कार्य करने वालों की बड़ी संख्या है। दरअसल अब यह रोजगार प्रदान करने वाला क्षेत्र के रूप में स्थापित हो गया है। अब कक्षाओं में छात्रों की भारी आमद है।

आज समाज में शिक्षा का जो स्वरूप है उसके लिए शिक्षकों को विशेष तैयारी की आवश्यकता है। आज शिक्षण एक ऐसा पेशा के रूप में स्वीकृत है। 'पेशा' से अर्थ उस कार्य से है जिसे करने के बदले मुख्य रूप से 'अर्थ' की प्राप्ति हो। ऐसी स्थिति में शिक्षण एक पेशा हो गया है और शिक्षक पेशेवर। अतः अपने पेशे का निर्वहन उच्चतर स्तर पर करने के लिए आवश्यक कौशल की जरूरत होती है। यही कारण है कि शिक्षण के पेशे में पेशेवर कुशलता की मांग बढ़ने लगी। उसके लिए प्रशिक्षण और अभिवृत्ति विकास की जरूरत पड़ने लगी। जैसे एक लकड़हारा का समय–समय पर कुल्हाड़ी को पजाने की जरूरत होती है, एक कुशल डॉक्टर को हमेशा नई तकनीक और दवाओं से परिचित होना होता है, एक गायक नर्तक–वादक को हमेशा अभ्यास करना पड़ता है, एक वकील को नए न्यायनिर्णयों से परिचित होना होता है, ठीक उसी तरह यह जरूरी होता है कि एक शिक्षक भी पढ़ाने की नई विधियों, अध्यताओं की रूचि–कमजोरियों को समझना जरूरी होता है। यही पेशेवर रूप शिक्षक को समस्त शिक्षक बनाता है। पेशे में कुशलता का अमान, सीखने के प्रति उदासीनता, नवचारों के इसी और पेशे के प्रति सम्मान का अभाव गैर–पेशवर रवैया है। उन वृत्तिक कौशलों के अभाव में नए शिक्षकों को अनावश्यक दबाव एवं तनाव का शिकार होना पड़ता है। अतः तनाव के कारणों की पहचान कर उसे दूर कर पाना एवं वांछित कौशलों का विकास करना जरूरी है। अब तो अध्यापकों की अस्मिता उसके शिक्षण से गहरी रूप से जुड़ी होती है। इस पाठ में शिक्षक के वृत्तिक विकास की चर्चा की जाएगी।

शिक्षक वृत्तिक विकास

शिक्षा आयोग की रिपोर्ट (1964–66) के अनुसार ''इसमें कोई संदेह नहीं कि शिक्षा के स्तर और राष्ट्रीय विकास में शिक्षा योगदान को जितनी भी बातें प्रभावित करती हैं उनमें शिक्षक के गुण, क्षमता और चरित्र सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।'' शिक्षा से संबंधित आगामी रिपोर्टों में भी अध्यापक के महत्त्व को लगातार रेखांकित किया जाता रहा है। राष्ट्रीय शिक्षक आयोग–1 (1983–85) की रिपोर्ट ने यह रेखांकित किया कि ''शिक्षक का दर्जा एक जटिल वैज्ञानिक संकल्पना है और विभिन्न सांस्कृतिक संदर्भों में इसका अर्थ भिन्न–भिन्न हो सकता है।'' राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समीक्षा रिपोर्ट (1990) ने भी इस बात पर जोर दिया, ''सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में शिक्षकों को एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। उन्हें राष्ट्रीय विकास में सक्रिय सहभागी के रूप में जटिल कार्य करना होगा। इस संदर्भ में शिक्षकों का सामाजिक दर्जा,

उनके जीवन की भौतिक दशाएँ तथा उनके कार्य का वातावरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बाते हैं।''

यदि इन तीनों रिपोर्टों के उद्धृत अंशों का विश्लेषण करें तो उनमें शिक्षक की वृत्तिक भूमिका के व्यापक आयामों को रेखांकित किया गया है, जो केवल कक्षा शिक्षण से नहीं बल्कि उसके पूरे व्यक्तित्व से जुड़ी हुई भूमिका है। साथ–ही, यह भी देखने में आया है कि शिक्षक की वृत्तिक भूमिका धीरे–धीरे उसके अधिगम तथा अनुभवों के आधार पर बनती है। यह प्रक्रिया शिक्षक के सायास तथा अनायास दोनों तरह के अनुभवों के माध्यम से चलती रहती है। इस संदर्भ में विशेष चर्चा अगले खण्ड में की जा रही है।

शिक्षक वृत्तिक विकास की अवधारणा

शिक्षक द्वारा अपने वृत्तिक विकास के लिए कई तरीकों को अपनाया जाता है, जिसके लिए शिक्षक शिक्षा में शिक्षक वृत्तिक विकास के नवीन संकल्पनाओं को समझना होगा। ये संकल्पनाएं लगातार बदलती रही हैं। उदाहरण के तौर पर, पहले शिक्षक के कार्य को मूलतः कौशल के रूप में देखा जाता था जिसे प्रशिक्षण देकर तैयार किया जा सकता था। लेकिन, अब यह माना जा रहा है कि शिक्षक का कार्य उसके जीवन अनुभवों से जुड़ा हुआ है। अतः कक्षा में वह जिस प्रकार से अपनी वृत्तिक भूमिका को निभाता या निभाती है, उसमें उसकी अपनी सोच शामिल होती है। इसके साथ–ही, जहाँ, पहले शिक्षक को ज्ञानदाता माना जाता था वहीं आज इसकी भूमिका सुगमकर्त्ता की हो गई है। इस तरह, शिक्षक के वृत्ति को समझने के नजरिए में भी कई परिवर्तन आए हैं।

इस तरह, शिक्षक शिक्षा में आए नव विचारों के आलोक मे शिक्षक वृत्तिक विकास की संकल्पना में भी सैद्धांतिक परिवर्तन हुए। इससे संबंधित पुरातन संकल्पनाएं प्रमुखतः व्यवहारवादी उपागम से प्रभावित प्रक्रिया, परिणाम प्रतिमान पर केन्द्रित रही है, जिसमें एक शिक्षक के स्वानुभवों को उसके विकास के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण नहीं माना जाता था। नए उपागम में शिक्षक वृत्तिक विकास को एक चिंतनशील प्रतिमान के रूप में स्वीकारा जा रहा है। इस तरह नए सिद्धांतों के अनुरूप शिक्षक वृत्तिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक शिक्षक अपने कार्यों को निरन्तर विश्लेषित करता रहता है। इससे प्राप्त अनुभवों से स्वज्ञान का संवर्धन भी करता है। इस संदर्भ में यह मान्यता है कि चिंतनशील प्रक्रिया के अपनाने से ही एक शिक्षक स्वदृष्टिकोण को वास्तविक रूप से विकसित कर सकता है। इस प्रकार शिक्षक वृत्तिक विकास की संकल्पना में आए नव–परिवर्तनों ने शिक्षक के अधिगम एवं कार्यों की एक नई छवि प्रस्तुत की जिसमें इसे एक सीमित व लघु प्रक्रिया से परे एक सतत एवं दीर्घकालिक प्रक्रिया माना गया है। वृत्तिक विकास की इस संकल्पना में शिक्षण

कौशलों के साथ–साथ एक शिक्षक के वैयक्तिक एवं सामाजिक पहलुओं को भी उसके विकास के लिए महत्वपूर्ण माना गया है।

ऐसी मान्यता है कि हमारी शैक्षणिक व्यवस्था अति संरचित प्रकृति की है, जिसमें पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तकों से लेकर मूल्यांकन प्रणाली तक पूर्व निर्धारित एवं पूर्वस्थापित है। ऐसी व्यवस्था में भी शिक्षक सिर्फ पुस्तकीय ज्ञान का देयता मात्र नहीं है बल्कि वह उस ज्ञान को स्वयं से परिभाषित व व्याख्यायित भी करता है। इससे तात्पर्य यह है कि शिक्षकों का कार्य उनकी पूर्वमान्यताओं, मूल्यों और पूर्वानुभवों से निरन्तर प्रभावित होता रहता है। इनके आधार पर वे अपने सिद्धांतों को गढ़ते हैं। शिक्षकों का यही सैद्धांतिक ज्ञान उनके शिक्षण की वृत्ति में प्रकट होता है।

शिक्षक की कार्य संस्कृति व सामाजिक परिदृश्य भी उसके वृत्तिक विकास का महत्वपूर्ण अंग है। उन सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा वैचारिक संदर्भों का एक शिक्षक के कार्य करने पर विशेष प्रभाव होता है जिनसे वह जुड़ा हुआ है। वस्तुतः ये संदर्भ गतिहीन नहीं बल्कि निरन्तर परिवर्तनशील होते हैं। साथ–ही उसके अपने मूल्य तथा कार्य संस्कृति की मान्यताओं के मध्य होनेवाले जटिल अंर्तसम्बंधों का भी उसके कार्य प्रणाली पर असर पड़ता है। एक सामाजिक व्यवस्था में शिक्षक अपने कार्यों को निष्पादित करता है, उत्पन्न होनेवाली समस्याओं एवं द्वंदों का सामना करता है तथा संगठनात्मक एवं प्रशासनिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करता है।

शिक्षक के कार्य का व्यक्तिगत आयाम जिसमें भावनात्मक व नैतिक पक्ष भी शामिल हैं, उसके वृत्तिक विकास को संवर्द्धित करते हैं। अपने विद्यार्थियों, सहकर्मियों तथा समुदाय के साथ प्रभावी संबंध स्थापित करने में उसके व्यक्तित्व की विशेष भूमिका होती है। इस संदर्भ में एक शिक्षक के लिए आवश्यक है कि वह अपने व्यक्तिगत गुणों को समझे तथा अपने प्रति दूसरों की प्रतिक्रियाओं को विश्लेषित करें।

वृत्तिक विकास के अन्तर्गत यह भी समझना आवश्यक है कि शिक्षक स्वयं से वृत्तिक उद्‌भव की प्रक्रिया के सहभागी बनते हैं तथा उनके कार्यों की अपनी जटिलता व विशेषता है। वे अपने कार्यकाल में कई चरणों से गुजरते हुए विविध अनुभव प्राप्त करते हैं। इस दौरान वे अपने वृत्तिक कार्य को भिन्न–भिन्न परिप्रेक्ष्य से देखते हैं। उदाहरणतः पाठ्यचर्या, पुस्तकें, शिक्षणशास्त्र, कक्षागत प्रक्रियाएं, अधिगमकर्ता की प्रकृति इत्यादि के विषय मे उनकी धारणायें और समझ प्राप्त अनुभवों के आधार पर निरन्तर विकसित और संवर्द्धित होती रहती है।

इस प्रकार शिक्षक वृत्तिक विकास की संकल्पना का यह मानना है कि इसको एक बार में सम्पूर्ण नहीं किया जा सकता। यह कई माध्यमों से लगातार चलनेवाली प्रक्रिया है। अपने विद्यालय में शिक्षक जो प्रतिदिन करते हैं या फिर समुदाय से उनकी जो अंतःक्रिया होती है, इन सबसे उसके वृत्ति का सम्वर्धन होता रहता है।

बच्चों को सीखने के अवसर उपलब्ध कराकर ज्ञान सृजन का माहौल तैयार करना शिक्षक का प्रमुख दायित्व है। इस हेतु शिक्षकों में आवश्यक विषय–वस्तु का ज्ञान, कक्ष प्रबंधन की तकनीक, सकारात्मक अभिवृत्ति एवं मूल्यांकन तकनीकी की जानकारी का होना आवश्यक है। शिक्षक अपनी कक्षा में जो अलग–अलग प्रकार की भूमिकाओं को निभाते हैं, उससे उनकी समझ विकसित होती है। कक्षा–प्रबंधन के साथ–साथ शिक्षकों को अधिगम आधारित अनेक क्रियाकलाप भी करने होते हैं। इनमें विद्यालय में चेतना सत्र, विभिन्न उत्सवों जयंतियों का आयोजन, विचारगोष्ठी, खेलकूद इत्यादि का आयोजन होता है। इन आयोजनों को कराने के दौरान शिक्षक जिस प्रकार की भूमिका निभाते हैं उससे भी उनका वृत्तिक विकास होता है।

शिक्षकों के वृत्तिक विकास में शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रमों की काफी अहम भूमिका होती है क्योंकि इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से नवीन सूचनाओं की संप्राप्ति, अभिवृत्ति में बदलाव, शिक्षण कौशलों का विकास शिक्षकों में हो पाता है।

प्रशिक्षण में कई लोग मिलकर शैक्षणिक समस्याओं के समाधान का प्रयास कर हल ढूँढ़ने का प्रयत्न करते हैं। साथ–ही शिक्षा के क्षेत्र के सभी बदलावों से अवगत होते हुए तदनुरूप स्वंय में आवश्यक दक्षता संवर्धन एवं विकास का भी कार्य करते हैं। प्रशिक्षण के माध्यम से उनमें अपने कार्य संचालन की एक विशेष दृष्टि उत्पन्न होती है जिससे विद्यालय को काफी लाभ होता है।

प्रशिक्षण के माध्यम में शिक्षकों में योग्यता, क्षमता और प्रतिबद्धता को विकसित करने का प्रयास किया जाता है। योग्यता, क्षमता और कुशलता आत्मविश्वास को जन्म देती है जो शिक्षण व्यवसाय और संबंधित आचार संहिता के प्रति प्रतिबद्धता उत्पन्न कर सकता है। शिक्षकों में शैक्षणिक बुद्धिमता के विकास के लिए स्वतंत्र रूप से पढ़ने का कौशल, परस्पर संबंध स्थापना का कौशल (Interpersonal Relationship), मानवीय संबंधों के विकास का कौशल, चिंतन मनन कौशल, प्रयोग करने एवं नित नये विषयों (नवाचार) को प्रस्तुत करने का कौशल, लेखा जोखा करने का कौशल एवं प्रभावशाली एवं आनंददायक शिक्षण का कौशल का होना आवश्यक है। इन सभी कौशलों एवं

अभिवृत्तियों के विकास में प्रशिक्षण की अहम भूमिका होती है। इससे शिक्षकों की सोच में परिवर्तन आता है और वे अपने वृत्ति को विशेष दृष्टिकोण से देखते हैं।

अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम वह पहला अनुभव होता है जो किसी व्यक्ति के अंदर अध्यापकीय कार्य की औपचारिक धारणा को विकसित करता है। अतः, इसके अनुभव का अध्यापकों की धारणा निर्माण में क्या भूमिका है, उनकी अस्मिता को समझने के दृष्टिकोण से बहुत महत्त्वपूर्ण है।

शिक्षक वृत्तिक विकास के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों के स्वरूप

शिक्षक के वृत्तिक विकास हेतु कई प्रकार के शिक्षक प्रशिक्षण कार्य आयोजित किए जाते हैं। सामान्तः इसे सेवापूर्व एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण, दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जाता है।

सेवापूर्व अध्यापक प्रशिक्षण : आप कई प्रकार के शिक्षकों को जानते होंगे जिन्होंने सेवा में आने के पूर्व ही शिक्षक–प्रशिक्षण प्राप्त किया होगा। शिक्षक बनने के पूर्व शिक्षकों में आवश्यक दक्षताओं के विकास हेतु इस प्रशिक्षण का प्रावधान है। प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तरों हेतु अलग–अलग तरह के प्रशिक्षणों की व्यवस्था है। इन प्रशिक्षणों के माध्यम से शिक्षकों को मनोविज्ञान, शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, वर्गकक्ष एवं विद्यालय प्रबंधन एवं विद्यालय में पढाए जाने वाले विभिन्न विषयों की विषय–वस्तु तथा वर्ग कक्ष विनिमयन की तकनीक सिखाई जाती है। साथ–ही, इन प्रशिक्षणों के माध्यम से अधिगम संसाधनों का चयन संगठन एवं उपयोग करने की दक्षता विकसित करने का कार्य भी होता है। छात्रों के लिए मार्गदर्शन एवं परामर्श की आवश्यकता से भी अवगत कराया जाता है। इसमें वास्तविक परिस्थिति में आकर बच्चों के बीच पाठ विनिमयन कर शिक्षण दक्षताओं की संप्राप्ति संभव हो पाती है, वहीं सूक्ष्म शिक्षण द्वारा बारी–बारी से प्रत्येक कौशलों का विकास भी इस प्रशिक्षण द्वारा होता है। इस प्रशिक्षण के द्वारा शिक्षकों में आवश्यक अभिवृत्ति विकसित करने का भी प्रयास किया जाता है। इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों में शिक्षकों को इस बात की भी जानकारी दी जाती है कि बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए समुदाय के साथ बेहतर संबंध आवश्यक है। शिक्षक का बच्चों एवं अभिभावकों से बेहतर व्यवहार शिक्षक को जहाँ सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाता है वहीं शिक्षक में आत्मसंतोष का भाव उत्पन्न होता है।

सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण : आपने अक्सर शिक्षकों को जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, प्रखंड संसाधन केन्द्र एवं संकुल केन्द्रों में प्रशिक्षण हेतु जाते देखा होगा। सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों को सेवारत शिक्षकों की कार्यक्षमता एवं कुशलता में वृद्धि करने हेतु निर्मित किया जाता है। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा

नीति में अध्यापक शिक्षा को जीवन पर्यन्त चलनेवाली प्रक्रिया के रूप में स्वीकृत किया गया है। अतएव सेवाकालीन प्रशिक्षण को भी अपरिहार्य बना दिया गया है। वर्तमान समय में प्रारंभिक स्तर तक के शिक्षकों के लिए बीस दिवसीय सेवाकालीन प्रशिक्षण का प्रावधान है।

आज का युग ज्ञान के विस्फोट का युग है। शिक्षा के क्षेत्र में हमेशा नवीन विचारधाराओं का उदय हो रहा है जिसके कारण पूरी शिक्षण प्रक्रिया में व्यापक बदलाव आया है। इन बदलावों को समझकर शिक्षक स्वंय में आवश्यक कुशलताएं विकसित करने की अनिवार्यता को समझकर उसके लिए प्रयास करते रहें। इसके लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता पड़ती है। पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों के स्वरूप में भी परिवर्तन होने के कारण इन परिवर्तनों के अनुरूप शिक्षकों को स्वयं को ढालने के लिए भी सेवाकालीन प्रशिक्षण चाहिए। कई बार शिक्षक अपने विद्यालय की समस्याओं का हल नहीं कर पाते। इन समस्याओं के कुछ हद तक हल बताने में सेवाकालीन शिक्षक–प्रशिक्षण की अहम भूमिका होती है। शिक्षण के क्रम में आनेवाली शैक्षणिक समस्याएं जिनका समाधान शिक्षक अपने स्तर से नहीं कर पाते, वे संकुल एवं प्रखंड स्तरीय प्रशिक्षण कार्यक्रमों के द्वारा आसानी से कर लेते हैं।

सेवाकालीन अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में ज्ञान के अद्यतनीकरण हेतु स्वाध्याय पर बल, साथी अधिगम, सामुदायिक अंतःक्रिया, आवर्ती प्रशिक्षण कार्यक्रमों में प्रतिभागिता एवं निरंतर शिक्षा कार्यक्रमों का उपयोग किया जाता है। अगर शिक्षक सदैव अपने ज्ञान को अद्यतन नहीं रखेंगे तो वे बच्चों को आगे बढ़ने में पूरी तरह मदद नहीं कर सकेंगे। शिक्षा में मल्टीमिडिया, सूचना संचार प्रौद्योगिकी ने भी आज अपनी पैठ बनाई है। चारों तरफ ज्ञान के स्रोत बिखरे पड़े हैं। इन स्रोतों के प्रभावी उपयोग के लिए प्रशिक्षण काफी उपयोगी हैं क्योंकि बिना उपयोगी दिशा–निर्देश के इनके उपयोग की कुशलता प्राप्त करना काफी मुश्किल है।

एक शिक्षक के रूप में यह आपकी अहम जिम्मेदारी है कि आप स्वयं अपने वृत्तिक विकास के अवसरों का सृजन करें। यह जरूरी नहीं है कि केवल किसी औपचारिक प्रशिक्षण के माध्यम से ही वृत्तिक विकास को किया जा सकता है। बल्कि, वृत्तिक विकास का बहुत व्यापक अवसर शिक्षक स्वयं उनके अपने विद्यालय में स्वतः ही प्राप्त होते हैं और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि शिक्षक अपने वृत्तिक विकास की योजना को स्वयं निर्मित कर सकते हैं।

आवृति प्रशिक्षणः एक वर्ष में लगभग बीस दिनों का आवृति प्रशिक्षण सेवाकालीन शिक्षकों के लिए निर्धारित है जिसके अन्तर्गत उन्हें नवचारों से अवगत कराया

जाता है। इससे दक्षता और कौशल बनी रहती है। यह प्रशिक्षण आमतौर पर शिक्षकों को प्रखण्ड केन्द्रों में दिया जाता है।

सतत पेशवेर विकास: यह शिक्षकों को अलग–अलग विषय क्षेत्रों यथा कला शिक्षा, खेल या निम्न वर्ग के बच्चों के अध्ययन–अध्यापन के पेशेवर दक्षता के विकास के लिए दी जाती है। यह प्रायः पाँच दिवस का होता है जो जिला मुख्यालय या किसी सुविधाजनक स्थान या खास प्रखण्डो के शिक्षकों के लिए आमंत्रित होता है।

शिक्षक में नेतृत्व गुण का विकास

समकालीन शैक्षिक विमर्शों में शिक्षक के वृत्तिक विकास के अंतर्गत उसमें नेतृत्व गुण को प्रोत्साहित करने पर जोर दिया जा रहा है। लेकिन, इसके साथ यह सवाल उठता है कि शिक्षक को किस प्रकार का नेतृत्व करना चाहिए। इस संदर्भ में नेतृत्व के कुछ प्रकारों को यहां दिया जा रहा है। इनके आधार पर विश्लेषण करें कि शिक्षक के लिए किस प्रकार का नेतृत्व गुण महत्वपूर्ण है।

सहयोगात्मक नेतृत्व : सहयोगात्मक नेतृत्व की धारणा दो आवश्यक विचारों पर आधारित है – कार्य दल और आम सहमति। इस दृष्टिकोण में बहुत सारे निर्णय लिए जाते हैं जो सभी शिक्षकों की आम सहमति पर आधारित होते हैं। यह आम सहमति समूह चर्चा या वृहद सलाहों/मशवरों के बाद बनाई जाती है। सभी के विचारों को दृष्टिगत रखने का प्रयास होता है। यद्यपि ऐसा लग सकता है कि सहयोगात्मक नेतृत्व अग्रणी और परिवर्तन के प्रबंधन में एक सकारात्मक दृष्टिकोण है, क्योंकि यह आम सहमति और एकता को मानकर चलता है। कुछ आलोचक इस दृष्टिकोण पर यह कहकर प्रश्नचिन्ह खड़ा करते हैं कि इसमें परिवर्तन की गति कभी–कभी आम सहमति बनाने के लिए पर्याप्त समय नही देती हैं। दूसरे भी इस पर अपना तर्क देते है कि किसी भी टीम लीडर को हमेशा ही यह महसूस होता है कि लिए गये निर्णयों के परिणामों के लिए अन्ततः वह स्वयं जवाबदेह होंगे। इसीलिए वे सामूहिक निर्णय लेने को ज्यादा कारगर नहीं मानते हैं।

वितरित नेतृत्व : हाल के वर्षों में शैक्षणिक नेतृत्व के तरीकों में सबसे अधिक चर्चा वितरित नेतृत्व का है। वितरित नेतृत्व का अर्थ विद्यालय के भीतर कार्यों की जवाबदेही के ऐसे वितरण से है जो कई सारे लोगों के बीच में बंटी हुई होती है। नेतृत्व का वितरण संगठनात्मक मूल्यों और व्यक्तिगत कुशलता के आधार पर हो सकता है। एक मत के अनुसार, विद्यालय में वितरित नेतृत्व को वास्तविक तौर पर संपादित कर पाना बहुत मुश्किल है क्योंकि यहां कार्यों को

करने का एक स्थापित पदानुक्रम है जो वितरित नेतृत्व की भावना का विरोध करती है।

प्रजातांत्रिक नेतृत्व : आवश्यक रूप से प्रजातांत्रिक विद्यालयी नेतृत्व एक ऐसा वातावरण बनाने की कोशिश करता है, जिसमें भागीदारी, मूल्यों की भागीदारी, खुलापन और लचीलापन हो। प्रजातांत्रिक विद्यालयी नेतृत्व के लिए सुनना, समझना, बातचीत, बोलना, तर्क और मतभेदों को एक अच्छे कार्य हेतु सहनिर्भरता से सुलझाने की आवश्यकता होती है। एक प्रकार से देखें तो नेतृत्व की इस भावना से विद्यालय के शिक्षकों एवं विद्यार्थियों में नेतृत्व गुण के विकास में स्वतः ही मदद मिलती है।

रूपान्तरित नेतृत्व : यह उन नये उद्देश्यों को पहचानने से संबंधित है जो प्रचलित कार्यशैली में परिवर्तन लाए और दूसरों को विश्वास दिलाए कि वे जितना सोचते हैं उससे अधिक पा सकते हैं। रूपान्तरित नेतृत्व एक लीडर की भूमिका पर सबसे अधिक जोर देता है। इसके लीडर के पास एक तरह की दृष्टि होती है कि भविष्य का संगठन कैसा दिखेगा, पहचानता है कि उसके सहयोगी उसकी दृष्टि (vision) के साथ इत्तेफाक रखते हैं और यदि वह पाने योग्य है तो उसके लिए वह उन्हें विश्वास दिलाता है कि यह अनुसरण योग्य (worth pursuing) है और उसको पाने के लिए एकसाथ मिलकर कार्य करते है।

यदि विद्यालय के संदर्भ में नेतृत्व गुण को समझें तो प्राधानाचार्य की बात सबसे पहले याद आती है। शिक्षक भी स्वयं भावी प्रधानाचार्य के रूप में ही होता है। अतः उसमें भी नेतृत्व गुण की उतनी ही अपेक्षा है जितनी की प्रधानाचार्य से।

शिक्षक अस्मिता की संकल्पना

अस्मिता के माध्यम से हम अपने बारे में अपनी धारणा व्यक्त करते हैं और अपनी उस छवि को व्यक्त करते हैं जैसा हम दूसरों के समक्ष रहना चाहते हैं। इसी तरह, अध्यापक अपने सकारात्मक एवं नकारात्मक सोच, आत्मविश्वास एवं आत्मसंतुष्टि, विद्यार्थियों के प्रति दृष्टिकोण, भावनातम्क लगाव इत्यादि के माध्यम से अपनी वृत्तिक अस्मिता को गढ़ते हैं। पहले के शोधों ने अस्मिता को स्थायी माना जाता रहा जो कि अपने कार्य के संदर्भ पर आधारित थे या फिर खण्डित रूप में थे। लेकिन नवीन शोध में यह पाया गया कि अस्मिता न तो स्थायी होती है और न ही खण्डित, बल्कि वे तो अध्यापक की उन क्षमताओं पर टिकी होती हैं जिनकी मदद से वह अलग–अलग परिस्थितियों से निपटता है।

पिछले दो दशकों में अध्यापक से संबंधित हुए शोधों में अस्मिता और अस्मिता निर्माण के मुद्दों ने केन्द्रीय स्थान लेना शुरू किया है जिसमें अध्यापकों के

विश्वास, प्रवृत्ति, जीवन इतिहास, और व्यक्तिगत वृत्तांतों को समझने पर जोर दिया जा रहा है। इसके साथ–साथ, शिक्षक शिक्षा और अस्मिता निर्माण में अध्यापक के भावनात्मक पक्षों पर शोध किया जा रहा है। इससे यह इंगित होता है कि अध्यापक के कार्यात्मक पक्षों से आगे बढ़ते हुए उनके मानवीय पहलुओं को भी महत्त्वपूर्ण माना जा रहा है तथा उनकी अस्मिता को एक प्रभावी कारक के रूप में स्वीकारा जा रहा है। विभिन्न सैद्धांतिक दर्शनों के माध्यम से अब यह विमर्श होने लगा कि अध्यापकों को अपनी अस्मिता का संज्ञान अवश्य होना चाहिए तथा उन्हें राजनैतिक, ऐतिहासिक या सामाजिक व्यक्तियों को भी समझना चाहिए जो उनकी अस्मिता को आकार देते हैं। एक अध्यापक का अस्मिता–निर्माण उसके कार्य के दृष्टिकोण से विशेष महत्त्व रखता है। अध्यापक के व्यक्तिगत संदर्भों, जैसे – जेण्डर, जाति, वर्ग, सामाजिक व आर्थिक स्थिति को वृत्तिक विकास से जोड़कर देखने पर भी बल दिया गया है। इसके साथ–ही, सिद्धांतवादियों ने इस बात पर भी बल दिया कि अध्यापक अपने अभिकरण (एजेन्सी) का इस्तेमाल करें, अपनी आवाज को मुखर करें तथा अपने प्राधिकार (ऑथोरिटी) का प्रयोग स्वयं के वृत्तिक विकास और अस्मिता को आकार देने के लिए करें। साथ–ही, अध्यापक अस्मिता को लेकर अवधारणात्मक अध्ययनों पर जोर बढ़ा और इसे शोध का एक विस्तृत क्षेत्र भी माना जाने लगा।

यह देखा जा रहा है कि अध्यापक की अस्मिता सामाजिक तौर पर निर्मित होती है, इसलिए समाज की सोच में परिवर्तन होने पर उसमें भी बदलाव आता है तथा अध्यापक की नयी अस्मिता का निर्माण होता है। साथ–ही, यह भी माना जा रहा है कि अध्यापक की मान्यताएं, अभिवृत्ति तथा व्यवहारिक प्रतिक्रियाएं सामान्यतः चिरकालिक और अपेक्षतया स्थायी होती हैं। उनकी संज्ञानात्मक और भावात्मक अस्मिता भी एक–दूसरे के अंतःक्रिया से चिरस्थायी मान्यताओं व विश्वासों का निर्माण करती है। अतः एक प्रकार से अध्यापक की धारणाओं में परिवर्तन की जड़ें उसके व्यक्तित्व के व्यापक आयामों जैसे सामाजिक, संज्ञानात्मक व भावनात्मक से जुड़ी हुई है। एक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलकर आया है कि अध्यापक बनने का अर्थ है–(अ) अस्मिता को बदलना, (ब) अपने व्यक्तिगत समझ और आदर्शों को संस्थागत वास्तविकता के साथ समंजित करना, और (स) यह निर्णय लेना कि अपने शिक्षण कार्य में स्वयं को किस प्रकार से प्रस्तुत करना है। इस प्रकार, अध्यापक जब कक्षा में अपने कार्य को करते हैं तो वे कई आंतरिक और बाह्य परिस्थितियों के मध्य अंतःक्रिया कर रहे होते हैं।

अस्मिता के निर्माण में भावनाओं की अहम भूमिका होती है। भावना एक मजबूत कड़ी है। कई शोधों में यह व्यक्त किया गया है कि अध्यापक जिन वृहत सांस्कृतिक, नीतिगत और सामाजिक संरचना में रहता और अपना काम करता

है, उनके भावनात्मक संदर्भ तथा जीवन के वैयक्तिक एवं वृत्तिक तत्वों, अनुभवों, विश्वासों एवं कार्यों के अंतर्सम्बंध होता है। इस सब के बीच एक तनाव भी होता है जो अध्यापक के अभिकरण को प्रभावित करता है और अंततः उसके वृत्तिक अस्मिता को भी प्रभावित करता है। अभिकरण से उनका तात्पर्य है वैसी क्षमता जिससे अपने लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

अध्यापक की अहम भूमिका सामाजिक पुनर्निर्माण में होती है। लेकिन अध्यापक और विद्यार्थियों के बीच बढ़ते सामाजिक एवं सांस्कृतिक अंतर चिंता का विषय है क्योंकि यह अध्यापक को अपने अहम भूमिका को निभाने से रोक सकते हैं। तालमेल में इस कमी के कारण अध्यापकों का विद्यार्थियों के अभिवृत्ति पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है, खासकर वैसे विद्यार्थियों के प्रति जिनका संदर्भ अध्यापक के अनुभव के बाहर है।

अध्यापक अपनी अस्मिता का बोध कैसे करते हैं, इस संदर्भ में सृजनवादी विकासात्मक दृष्टिकोण (Constructivist Developmental Theory) की पड़ताल करना अहम हैं। इस बारे में केगन का सिद्धांत महत्त्वपूर्ण है जिसने अपने सिद्धांत के माध्यम से वयस्कावस्था में विकासात्मक अवस्थाओं के अलग स्वरूप की चर्चा की है। उनके सिद्धांत में अध्यापक की अस्मिता को लेकर कुछ बुनियादी सवाल उठाए गए हैं, जैसे – अध्यापक अपने सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं ऐतिहासिक ताकतों का बोध कैसे करते हैं? वे अन्य के साथ अपने संबंधों का बोध कैसे करते हैं?

सर्जनवादी विकासात्मक दृष्टिकोण सिद्धांत के अनुसार, अध्यापक जिस प्रकार से अपने अनुभवों का अर्थ निकालते हैं वह अलग–अलग विकासात्मक अवस्थाओं में अलग–अलग होगा जो समय के साथ बनते हैं। ये अलग–अलग अर्थ अध्यापक के उन बदलती क्षमताओं की तरफ इशारा करते हैं जिनके आधार पर वे अपने अनुभवों को किसी परिप्रेक्ष्य में देख पाते हैं। अपने विकासात्मक अवस्थाओं के आधार पर ही वे अपने शिक्षण के विविध अनुभवों जैसे – शिक्षण विधि, अनुशासन, विषयवस्तु, अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम इत्यादि का अलग–अलग अर्थ निकाल पाते हैं। अतः विकासात्मक अवस्थाएं एक प्रकार से उन विशिष्ट तरीकों को समझने में मदद करते हैं जिस प्रकार से किसी विशेष अवस्था में अध्यापक सोचते हैं।

यदि सर्जनवादी विकासात्मक सिद्धांत के दृष्टिकोण से देखें तो कई बिन्दु उभर कर आते हैं। इसमें **यंत्रीकृत ज्ञाता** (instrumental knower), **समाजीकृत ज्ञाता** (socializing knower) और **स्वरचित ज्ञाता** (self-authoring knower) की अवधारणा महत्त्वपूर्ण है। यंत्रीकृत ज्ञाता के रूप में, एक

अध्यापक सामाजिक–सांस्कृतिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक कारकों को अपने से दूर मूर्त अवस्था में देखता है। इस अवस्था में वह अन्य के साथ अपने सम्बंधों को भी एक विशेष रूप में देखता है। उसके लिए अध्यापक की भूमिका बहुत ठोस और स्पष्ट होती है। उसके अन्य के साथ अंतःक्रिया के नियम निर्धारित होते हैं। दूसरों के साथ अपने संबंध पर उसका अपना कोई परिप्रेक्ष्य नहीं होता है। एक प्रकार से उनका व्यवहार वैसा ही होता है जैसा दूसरे उनके साथ करते हैं। वे अपने अनुभवों को भी बाहय और ठोस मानते हैं और उन्हें अच्छे या बुरे के सामान्य कोटियों में बांट देते हैं। वे चिंतन–मनन करने से स्वयं को बचाते हैं। केगन के अनुसार, इस अवस्था में अध्यापक अपनी भूमिका को सिर्फ इस रूप में लेता है कि उसे अपने उद्देश्यों व आवश्यकताओं की पूर्ति करनी है। चूंकि, अध्यापक के पास अपना कोई दृष्टिकोण नहीं होता है अतः वह स्वयं को अभिव्यक्त कर पाने में सक्षम नहीं होते हैं। उसका स्व–मूलतः उसकी आवश्यकताओं, आकांक्षाओं और रूचियों पर ही केन्द्रित रहता है। इसी कारण उसके द्वारा चिंतन–मनन का किया गया कोई भी काम मूलतः मूर्त और सीधे–सपाट होते हैं तथा उनमें गहराई नहीं होती है। इस अवस्था में अध्यापक पर अन्य के मत हावी होते हैं।

अपने समाजीकृत ज्ञाता अवस्था में, अध्यापक अपने संदर्भ के सामाजिक–सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं ऐतिहासिक कारकों के अनुरूप ही अपनी अस्मिता को बनाने की कोशिश करते हैं। वे उनके विचारों को ही समर्थन करते हैं तथा उनपर अपना कोई मत देने में असमर्थ हाते हैं। इस दौर में अध्यापकों पर उपरोक्त वर्णित कारकों के मूल्यों का दबाव बना रहता है। यदि इस बात की चर्चा करें कि इस अवस्था में अध्यापक अपने संबंधों को कैसे निर्मित करते हैं तो यह जान पड़ता है कि अध्यापक की अस्मिता मुख्यतः अन्य के विचारों और अपेक्षाओं के अनुसार ही बनता है। वे अन्य के भावनाओं के साथ अपने को जोड़कर देखते हैं और दूसरों को अपने प्रति तथा अपने को दूसरों के प्रति जिम्मेदार मानते हैं। चूंकि अध्यापक अन्य की नजरों में अच्छा बनना चाहते हैं अतः वे उन बातों के साथ द्वंद में रहते हैं जो दूसरों को पसन्द नहीं है और जिससे उनकी छवि खराब हो। अपनी आलोचना को अध्यापक अपने अपमान से जोड़कर देखते हैं। इस अवस्था में दूसरों के साथ सम्बंधों के आधार पर ही अध्यापक अपनी अस्मिता का निर्माण करता है। इस अवस्था में वे वैसे ही बातों को कहना चाहते हैं जैसा सामने वाले उनसे सुनना चाहते हैं। वे अपने भाव को प्रकट करने में अधिक मुखर होते हैं। इस अवस्था को केगन ने 'अंतर्वैयक्तिक संतुलन' भी कहा है। इस अवस्था में अध्यापक अपनी सफलता को बाह्य मानक की कसौटी ही निर्धारित करते हैं। यहां बाह्य मानक वे हैं जो यह निर्धारित करते हैं कि अध्यापक को कैसे काम करना चाहिए और अध्यापक भी उसी

अनुरूप कार्य करके यह मिलान करने कि कोशिश करते हैं कि क्या वे उनके अनुसार सफल हो पाए हैं। हालांकि वे इस अवस्था में चिंतन–मनन की तरफ बढ़ते हैं लेकिन उनका कार्य इस बात पह ही केन्द्रित रहता है कि सत्ता द्वारा परिभाषित अपेक्षाओं को वे कितनी बेहतरी से पूरा कर पाए हैं।

स्वरचित ज्ञाता अवस्था में, 'स्व' का निर्माण बाह्य कारकों के स्थान पर आंतरिक चिंतन के आधार पर होता है। इस अवस्था में, सामाजिक–सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं ऐतिहासिक कारकों के प्रति अध्यापक के पास अपना परिप्रेक्ष्य एवं दर्शन होता है। यहां अध्यापक अपने संज्ञान में आनेवाली सूचना या घटना पर अपने दर्शन के अनुसार चिंतन–मनन कर तथा उसके विश्लेषण के बाद कोई निष्कर्ष निकालता है। उनके पास इस बात की सोच भी होती है कि इन कारकों का उसके जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता हैं। अध्यापक के पास अपनी सोच होती है जिससे वह दुनिया को देखते हैं और दुनिया उनको देखती है। वे स्वयं के स्थिति को भी स्पष्टता में समझते हैं और यह स्वयं निर्धारित करते हैं कि उन सभी कारकों के मध्य उन्हें कहां खड़ा होना है। उन कारकों द्वारा स्वयं के स्थिति को निर्धारित करने का वे विरोध करते हैं। इस अवस्था में अध्यापकों को अपने 'स्व' की स्पष्ट समझ होती है तथा दूसरों से अपनी भावनाओं के भिन्न होने के प्रति उतरदायी होते हैं। वे दूसरों के परिप्रेक्ष्य को भी अपने में समावेशित कर पाने में सक्षम होते हैं, यहां तक कि उनकी आलोचनाओं को। वे अंतर्द्वंदात्मक भावनाओं को एकसाथ रख सकते हैं। इस अवस्था में अध्यापकों की यह समझ प्रबल होती है कि उनको समाज के साथ मिलजुलकर रहना चाहिए जिससे समाज और अध्यापक दोनों अपने मूल्यों, आदर्शों, लक्ष्यों को प्राप्त कर सकें। इस अवस्था में अध्यापक सबसे अच्छी तरह से स्वयं पर चिंतन–मनन कर पाने में सक्षम होते हैं। अपने मौलिक सोच के आधार पर अपने बारे में बता सकते हैं तथा अपने कार्यों का विश्लेषण कर सकते हैं। चूंकि उनका अपने प्रति एक नज़रिया होता है अतः वे यह बता पाने में सक्षम होते हैं कि उनके सामाजिक पृष्ठभूमि, जाति, संस्कृति, अतीत ने उनकी अस्मिता के निर्माण में कैसे भूमिका निभायी। वे अपने शिक्षण के प्रति स्वयं द्वारा निर्धारित कसौटियों के आधार पर आलोचनात्मक विश्लेषण में शामिल होते हैं न कि अन्य द्वारा बनाए गए कसौटियों के आधार पर।

केगन द्वारा प्रस्तुत किया गया यह सिद्धांत अध्यापक की अस्मिता सम्बंधी साहित्यों पर नया प्रकाश डालता है। इससे अध्यापक की किसी विशेष परिस्थिति में प्रतिक्रिया देने की क्षमता को समझने के विषय में भी एक नया दृष्टिकोण प्राप्त होता है। साथ–ही, यह सिद्धांत यह भी कहता है कि एक अध्यापक की अस्मिता का विकास अवस्थामूलक प्रक्रिया है जिसमें संदर्भ ही सिर्फ महत्वपूर्ण नहीं है। यह इस बात को समझने की कोशिश करता है कि

अलग–अलग अध्यापक किस प्रकार से एक ही परिस्थिति में अलग–अलग व्यवहार करते हैं। यह उनकी अवस्था पर भी निर्भर करता है कि वे अपनी आवाज और स्वायतता को किस प्रकार परिभाषित करते हैं तथा अपने अस्मिता में उनकी भूमिका को कैसे देखते हैं। अतः अध्यापक अपने कार्य के साथ अपने सम्बंध को किस प्रकार देखते हैं इसके लिए उनकी अस्मिता की विस्तृत समझ की अपेक्षा है।

शिक्षक अस्मिता और वृत्ति से सम्बंधित तनावों की समझ

विद्यालय की जटिल प्रक्रिया में कई ऐसे मुद्दे या प्रसंग आते हैं जिनके कारण शिक्षकों के मन में अंतर्द्वन्द या तनाव पैदा होता है। कई बार शिक्षक उनसे अकेले निपट लेते हैं लेकिन कई स्थितियों में उन तनावों का स्वरूप ऐसा होता है कि शिक्षक मिलकर ही उसका समाधान कर पाते हैं।

उपरोक्त सूची में जिस प्रकार के तनावों की चर्चा की गई है उनको केवल नाकारात्मक रूप से नहीं लिया जाना चाहिए। ये सभी स्थितियां शिक्षक के जीवन में आती रहती हैं और उनके समाधान के लिए शिक्षक जिस प्रकार के सकारात्मक उपायों को अपनाता है उससे उसकी अस्मिता का भी विकास होता है।

अतः कई बार, विद्यालय में तनाव की स्थिति से शिक्षक अपने अस्मिता का विकास कर सकते हैं।

मूल्यांकन के लिए प्रश्न

1. वर्तमान समय में शिक्षकों की भूमिका में बड़ा बदलाव आया है। कैसे?
2. सेवाकालीन प्रशिक्षण के माध्यम से शिक्षक वृत्तिक विकास में काफी सहायता मिलती है। कैसे?
3. शिक्षक वृत्तिक विकास शिक्षक की पेशागत दक्षता के संवर्धन में किस प्रकार सहायक है?
4. वृत्तिक विकास में सेवापूर्व प्रशिक्षण की भूमिका आप किस रूप में देखते हैं? वर्णन कीजिए।
5. शिक्षक की अस्मिता से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट करें।

6. शिक्षक की अस्मिता पर क्या उसके व्यक्तिगत पृष्ठभूमि का प्रभाव पड़ता है? कैसे?
7. शिक्षक के विद्यालयी संदर्भ में तनावों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है? क्या इनसे भी उसकी अस्मिता एवं वृत्ति का विकास होता है।

इकाई **5**

महत्वपूर्ण शैक्षणिक संस्थाएं, प्रशिक्षण केन्द्र व सरकारी योजनाओं की समीक्षात्मक समझ

परिचय

सीखने के उद्देश्य

शैक्षणिक संस्थाएं

- राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्
- राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्
- बिहार विद्यालय परीक्षा समिति (BSEB) बिहार, पटना
- केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (CBSE), नई दिल्ली
- बिहार राज्य मदरसा शिक्षा बोर्ड (BSMEB)
- बिहार मुक्त विद्यालयी शिक्षण एवं परीक्षा बोर्ड (Bihar Board of Open Schooling and Examination - BBOSE)
- राष्ट्रीय शैक्षणिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (NUEPA)
- राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (NCTE)
- यूनिसेफ
- यूनेस्को

शिक्षक–प्रशिक्षण केन्द्र

- जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (DIET) एवं प्राथमिक शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय (PTEC)
- जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान
- प्राथमिक शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय
- संस्थान का मिशन एवं भूमिका
- जिला संसाधन केन्द्र (DRC), प्रखण्ड संसाधन केन्द्र (BRC) एवं संकुल संसाधन केन्द्र (CRC)

शैक्षणिक योजनाएं

- सर्व शिक्षा अभियान (SSA)

- राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (Rashtriya Madhyamik Shiksha Abhiyan)
- समग्र शिक्षा अभियान
- बिहार शिक्षा परियोजना परिषद् (Bihar Education Project Council)

समेकन

मूल्यांकन के लिए प्रश्न

परिचय

देश भर में कई ऐसी शैक्षणिक संस्थाएँ हैं जो विद्यालयी शिक्षा को प्रभावित करने वाली नीतियां एवं मार्गदर्शक दस्तावेज तैयार करती हैं। इनके अतिरिक्त राज्यों में भी शिक्षा संबंधी नीतियों के निर्माण एवं क्रियान्वयन हेतु कई संस्थाएँ कार्यरत हैं। उपरोक्त संस्थाओं की नीतियाँ एवं दिशा निर्देश विद्यालयों के संचालन एवं प्रबंधन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विद्यालय की समस्त प्रक्रियाओं के माध्यम से नीतियों के समावेशी में शिक्षक की अहम भूमिका होती है।

सीखने के उद्देश्य

- केन्द्रीय, राज्यीय एवं स्थानीय स्तर के प्रमुख शैक्षणिक संस्थाओं से अवगत होना।
- उन संस्थाओं के प्रमुख कार्यों को विद्यालय एवं शिक्षक के संदर्भ में समझना।
- कुछ प्रमुख शैक्षणिक योजनाओं के विषय में समझ बनाना।

पूर्व अनुभव

इस इकाई में चर्चा की जानेवाली कुछ संस्थाओं, प्रशिक्षण केन्द्रों तथा योजनाओं से आप पहले से परिचित होंगे। राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT), राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद (SCERT), बिहार विद्यालय परीक्षा समिति (BSEB), केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (CBSE) इत्यादि

संस्थाओं का नाम आपने अपने अध्ययन के समय भी सुना होगा। जहाँ किताबों की बात आती होगी वहां आपने राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद **(NCERT),** राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद **(SCERT),** द्वारा निर्मित किताबों को पढ़ा होगा। दसवीं और बारहवीं की बोर्ड परीक्षा में आपने बिहार विद्यालय परीक्षा समिति (BSEB), केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड **(CBSE),** बिहार राज्य मदरसा बोर्ड, **(BSMEB),** बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड बिहार मुक्त विद्यालयी शिक्षण एवं परीक्षा बोर्ड **(BBOSE)NIOS**। यह सम्भव है कि आपका प्रमाणपत्र भी इनमें से किसी बोर्ड द्वारा जारी किया गया हो।

परिचय– किसी ऐसे संस्थान, जहाँ शिक्षाओं का आदान प्रदान किया जाता है, शैक्षिक संस्थान या शिक्षण संस्थान कहा जाता है। जहाँ हमें आँगनबाड़ी केंद्र प्राथमिक विद्यालय, माध्यमिक विद्यालय, महाविद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय तक का सफर करते है। जो विद्यालयी शिक्षा को प्रभावित करती है।

पूर्व का अनुभव– बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय शिक्षा संस्थान (NIOS)

शैक्षणिक संस्थाएँ–

- राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान, नई दिल्ली (NIE)
- केन्द्रीय शैक्षणिक प्रौधोगिकी संस्थान (CIET)
- पंडित सुन्दरलाल शर्मा केन्द्रीय व्यवसायिक शिक्षा संस्थान,(PSSCIVE) भोपाल
- क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान (RIE), अजमेर
- क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान (RIE), भोपाल
- क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान (RIE), भुवनेश्वर
- क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान (RIE), मैसूर
- अत्तर–पूर्व क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान (NERIE) शिलांग

बिहार विद्यालय परीक्षा समिति (BSEB)

BSEB की स्थापना 1952 ई0 में राज्य के शिक्षा विभाग के अन्तर्गत स्वायत संस्था के रूप किया गया

केन्द्रीय माघ्यमी शिक्षा बोर्ड (CBSE), नई दिल्ली।

इस संस्थान की स्थापना 1929 में हुई।

सैनिक स्कूल

बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड–

बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड की स्थापना 1981 ई0 में संस्कृत भाषा के उत्थान हेतु बोर्ड का गठन किया गया है। इसका मुख्यालय पटना है।

NIOS- (National Institute of Open Schooling)

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

NIOS पूर्व स्नातक स्तर तक शिक्षार्थियों के एक विषम समूह की जरूरतों को पूरा करने के लिए open school है। इसे 1979 में केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड **(CBSE)** द्वारा अंत निर्मित लचीलेपन के साथ एक परियोजना के रूप शुरू किया गया था।

इसका उद्येश्य–

- शिक्षा के सार्व भौमिकरण के लिए
- समाज में अधिक समता और न्याय के लिए और
- एक सीखनेक वाले समाज के विकास के लिए

विश्व बैंक (World Bank) –

अन्तराष्ट्रीय पुनर्निर्माण विकास बैंक (International Bank of Reconstruction and Development) जो विश्व बैंक के नाम से प्रसिद्ध है। इसका स्थापना संयुक्त राष्ट्र के भौतिक एवं वित्तीय सम्मेलन का परिणाम है। जो 1 जुलाई से 22 जुलाई, 1944 तक ब्रेटन वुड्स नामक स्थान पर (अमेरिका में) अन्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक से सम्बंधित अनुच्छेदों को अंतिम रू॰ देने के लिए हुआ। समझौते के अनुच्छेदों की बहुमत से स्वीकृति के बाद 25 दिसम्बर 1944 ई0 को विश्व बैंक का जन्म हुआ। यह अन्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की सह संस्था है। वर्तमान में इसके 188 सदस्य देय है।

BIET- BIET (ब्लाक शिक्षण एवं प्रशिक्षण संस्थान) की स्थापना वैसे प्रखण्डों में की गई है जहाँ की प्रारम्भिक शिक्षा शैक्षिक दृष्टिकोण से पिछड़े हैं। प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनिकरण के कार्यक्रम एवं व्यूह रचना के लिए प्राथमिक स्तर पर अकादमिक तथा सन्दर्भ व्यक्तियों को तैयार करना है। शिक्षा प्रशिक्षण केन्द्र के रूप में प्राथमिक शिक्षा का गुणात्मक सुधार करना तथा प्रखण्ड शिक्षा एवं

प्रशिक्षण संस्थान के रूप में शैक्षिक प्रशासन व शैक्षिक सुधारों के रूप में स्थापित किया गया है। जो DIET के निर्धारित उद्देश्यों को पूरा करने लिए सक्षम होंगे।

नई शिक्षा नीति 2020 में CRC के स्थान पर स्कूल कॉम्प्लेक्स / कलस्टर कर दिया गया है। स्कूल कॉम्प्लेक्स/कलस्टर में संसाधन के साझे उपयोग से दूसरे भी बहुत से लाभ होंगे । जैसे दिव्यांग बच्चों के लिए बेहतर सहयोग, ज्यादा विविध विषय पर आधरित विद्यार्थी क्लब और स्कूल परिसर में अकादिमक/खेल/कला/शिल्प आधारित कार्यक्रमों का आयोजन, कला संगीत भाषा और शारीरिक शिक्षा के साझे उपयोग से कक्षा में वर्चुअल कक्षाएँ आयोजित करने के लिए आई सी टी सी टूल्स के उपयोग सहित इन गतिविधियों का ज्यादा समावेश, सामाजिक कार्यकर्त्ता और सलाहकारों की मदद से विद्यार्थियों के लिए बेहतर सहयोग की उपलब्धता और बेहतर नामांकन, उपस्थिति और उपलब्धियों में सुधार और स्कूल कॉम्प्लेक्स प्रबंधन समितियों के माध्ययम से बेहतर और मजबूत गवर्नेंस, निरीक्षण निगरानी नवाचार और स्थानीय हितकारों द्वारा उठाये जाने वाले कदम। स्कूलों, स्कूल प्रमुखों, शिक्षकों, विद्यार्थियों, सहयोगी स्टाफ, माता–पिता और स्थानीय नागरिकों के बड़े और जीवंत समूहों के आधार पर से संसाधनों का कुशल उपयोग करते हुए पूरी शिक्षा व्यवस्था उर्जावान और समर्थ बनेगी।

स्कूल कलस्टर का उद्येश्य अधिक संसाधन दक्षता और कलस्टर में स्कूलों के अधिक प्रभावी कामकाज, समन्वय, नेतृत्व, शासन और प्रबंधन होगा।

ICDS (समेकित बाल विकास योजना)

समेकित बाल विकास योजना अन्तगर्त ग्रामीण क्षेत्रों में 1000 की जनसंख्या पर एक आंगनबाड़ी केंन्द्र की स्थापना की गई है। प्रत्येक आंगनबाड़ी केन्द्र पर एक सेविका तथा एक सहायिका की नियुक्ति की गई है। इन केन्द्रों द्वारा निम्न प्रकार से लक्षित समूह को सेवाएँ उपलब्ध कराई जाती है। जो इस प्रकार है–

1. 0–3 वर्ष के बच्चों के लिए (पोषाहार एवं स्वास्थ्य)
2. 3–6 वर्ष के बच्चों के लिए (स्कूल पूर्व शिक्षा)
3. गर्भवती एवं छात्री महिलाओं के लिए
4. किशोरी बालिकाओं के लिए
5. स्वास्थ्य जाँच
6. प्रूक पोषाहार
7. प्रतिरक्षण व टीकाकरण

शैक्षणिक संस्थाएं

किसी विद्यालय की शैक्षणिक प्रक्रिया में बहुत सारी संस्थाओं का परोक्ष योगदान स्कूली शिक्षा में होता है। विद्यालय के अकादमिक एवं प्रबंधात्मक कार्यों में उन संस्थाओं की भूमिका अहम होती है। उदाहरण के तौर पर जहाँ बिहार के विद्यालयों की पाठ्यचर्या को निर्मित करने में राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT), नई दिल्ली तथा राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद (SCERT) बिहार, पटना जैसी संस्थाओं की भूमिका है। वहीं, विद्यालयों को मान्यता देने तथा उनकी परीक्षाओं को लेने तथा प्रमाणित करने का दायित्व बिहार विद्यालय परीक्षा समिति (BSEB) बिहार, पटना या केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (CBSE), नई दिल्ली जैसी संस्थाओं को है। उसी तरह, जब विद्यालय के लिए शिक्षक तैयार करने की बात आती है तो उसमें राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (NCTE), नई दिल्ली जैसी संस्थाओं की भूमिका किसी–न–किसी रूप में अवश्य होती है। इसके साथ–ही, कई अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ भी विद्यालय और शिक्षक को प्रभावित करती हैं। इन सब के परिचयात्मक विवरण तथा कुछ प्रमुख कार्यों का विश्लेषण इस भाग में किया गया है ताकि प्रशिक्षु अपने संदर्भ में उन संस्थाओं की भूमिका को समझ सकें।

राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्

भारत सरकार ने 1961 में राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (National Council of Educational Research and Training) की एक स्वायत संगठन के रूप में स्थापित किया ताकि शिक्षा से संबंधित नीतियों को लागू करने विशेषतः स्कूली शिक्षा और शिक्षकों की तत्परता में गुणात्मक परिवर्तन लाने के लिए केन्द्र व राज्य सरकारों को परामर्श और सहायता प्रदान की जा सके। कालान्तर में परिषद् ने एक विशिष्ट

संगठन का रूप ले लिया है जिसकी निरन्तरशील गतिविधियों ने भारत में स्कूली शिक्षा को प्रभावित किया है। इस परिषद् का प्रमुख ध्येय विद्यालयी शिक्षा में गुणात्मक सुधार करना है। इसका मुख्यालय नई दिल्ली में है। विद्यालयी शिक्षा के सुधार के कार्यक्रमों तथा नीतियों को बनाने और उनका बेहतर कार्यान्वयन करने के संबंध में भारत सरकार के मानव संसाधन एवं विकास मंत्रालय के स्कूली शिक्षा विभाग को अकादमिक परामर्श देना इस परिषद् का प्रमुख कार्य है। स्कूली शिक्षा में शोध एवं प्रशिक्षण हेतु बेहतर समन्वय एवं कार्यान्वयन हेतु परिषद् की निम्न प्रमुख संघटक इकाईयाँ हैं।

- राष्ट्रीय शिक्षा संस्था (एन. आई. ई) NIE (National Institute of Education)
- केंद्रीय शैक्षणिक प्रौद्योगिकी संस्थान (सी. आई. ई. टी.)
- क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय

संस्था के प्रमुख कार्य–

संस्था द्वारा विद्यालयी शिक्षा के गुणात्मक विकास के संदर्भ में निम्न विषयों पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है–

- शिक्षा की सभी शाखाओं में अनुसंधान करने, उसे सहायता देने, बढ़ावा देने तथा उनमें समन्वय स्थापित करना।
- पूर्व–सेवा तथा सेवाकालीन शिक्षक–प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
- शैक्षणिक अनुसंधान, शिक्षक–प्रशिक्षण एवं विद्यालयों के लिए विस्तार सेवाओं में संलग्न संस्थाओं हेतु विस्तार सेवाएँ उपलब्ध करवाना।
- शैक्षणिक तकनीकों एवं शिक्षायी प्रक्रियाओं में नवाचारों को विकसित करना तथा उनका प्रसार करने का दायित्व।
- राज्य स्तर के शिक्षा विभागों विश्वविद्यालयों तथा अन्य शैक्षणिक संस्थानों को उनके उद्देश्यों को पूरा करने हेतु सहयोग देना। साथ–ही देश के विभिन्न हिस्सों में ऐसे संस्थान खोलना।
- राज्य सरकारों तथा अन्य शैक्षणिक संगठनों व संस्थाओं को विद्यालयी शिक्षा से संबंधित मुद्दों पर सलाह देना।
- औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा तंत्रों के बच्चों की शैक्षणिक आवश्यकताओं को पूरा करना।
- स्कूली शिक्षा हेतु पाठ्यक्रम का विकास करना, पाठ्यपुस्तकें तैयार करना, प्रकाशित करना एवं उनका मूल्यांकन करना।

- पुस्तकों के छात्र–संस्करण एवं अध्यापक संस्करण तैयार करना।
- विद्यालयी परीक्षाओं में सुधार करना।

बच्चों तथा शिक्षकों के लिए परिषद् राष्ट्रीय एकीकरण एवं सद्भावना विकास हेतु समय–समय पर एकता शिविर भी आयोजित करती है। विज्ञान के विकास हेतु 'पोर्टेबिल लेब', 'साईंस किट', 'मैथ किट', 'इलेक्ट्रोनिक किट' इत्यादि के विकास के अलावा परिषद् राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर विज्ञान प्रदर्शनी एवं राष्ट्रीय प्रतिभा खोज परीक्षा भी आयोजित करती है। बालिका, वंचित एवं गरीब बच्चों के लिए विभिन्न छात्रवृत्तियों की सुविधा भी परिषद द्वारा मुहैया कराई जाती है।

विद्यालयी शिक्षा में शोध को बढ़ावा देने के लिए अभी हाल ही में परिषद द्वारा शोध छात्रवृत्ति भी प्रदान की जा रही है। परिषद् द्वारा सन् 1973 में स्थापित शैक्षणिक प्रौद्योगिकी केंद्र, (वर्तमान में केंद्रीय शैक्षणिक प्रौद्योगिकी संस्थान) शिक्षा में प्रौद्योगिकी के विकास एवं उपयोग हेतु विभिन्न कार्यक्रम का आयोजन तथा प्रशिक्षण सामग्रियों का विकास किया जाता रहा है। उपग्रह – दूरदर्शन, रेडियो, कम्प्यूटर इत्यादि पर विभिन्न कार्यक्रम इसी केंद्र द्वारा संचालित होते हैं।

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् (State Council of Educational Research and Training) की स्थापना विभिन्न राज्यों में विद्यालयी शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने हेतु की गई थी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) व इसकी कार्य–योजना (1992) में राज्य स्तर के उत्कृष्ठ शैक्षणिक संगठनों की परिकल्पना की गई थी ताकि वे राज्य स्तर पर नोडल ऐजेंसी का काम करे।

हर शिक्षा विभाग की राज्य स्तरीय संस्थाएं शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने के लिए सतत् प्रयत्नशील हैं जिनमें अग्रणी है – राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्। शैक्षणिक विकास की दौड़ में राज्य को पुनः स्थापित करने, स्कूली शिक्षा को ठोस आधार एवं स्वरूप प्रदान करने और विद्यार्थियों के भविष्य को बेहतर बनाने हेतु क्रियाशीलनों एवं नवाचार गतिविधियों के माध्यम से बहुआयामी कार्यक्रमों का सम्पादन परिषद द्वारा सतत रूप से किया जाता है।

अनुसंधान और प्रशिक्षण निदेशालय, बिहार स्कूली शिक्षा में शैक्षणिक नेतृत्व प्रदान करने के उद्देश्य से काम कर रही है ताकि राज्य में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए हर संभव प्रयास किया जा सके। निदेशालय राज्य के सभी शिक्षक–प्रशिक्षण संस्थानों के समग्र प्रबंधन, पर्यवेक्षण और निगरानी के लिए जिम्मेदार है। यह निदेशालय राज्य में शिक्षक और

शैक्षणिक व्यावसायिकता प्रदान कराने वाले संस्थानों का नियंत्रण करता है जो सीधे बच्चों को गुणवत्तापूर्ण प्रशिक्षण और शिक्षा प्रदान करने के लिए जिम्मेदार है। वर्तमान में राज्य में 17 स्वायत्त अनुसंधान संस्थान हैं जो इस निदेशालय के अंतर्गत आते हैं।

पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तक में संशोधन, अनुसंधान और शिक्षक प्रशिक्षण, एडुसैट के माध्यम से शैक्षणिक प्रौद्योगिकी का अवतरण, मूल्यांकन तथा स्कूली व व्यावसायिक शिक्षा का मार्गदर्शन और परामर्श, प्रलेखन, प्रचार व प्रसार, सभी स्तरों के लिए संबंधित अध्ययन सामग्री का प्रकाशन इत्यादि सभी कार्य इस निदेशालय के दायरे में आते हैं।

शिक्षकों को शिक्षण की नवीनतम विधाओं से अवगत कराने, उनमें शिक्षण संबंधी दक्षता की वृद्धि और विकास के लिए समुचित शैक्षणिक सामग्री और विकास के अवसर इस परिषद् द्वारा उपलब्ध कराये जाते हैं। इन परिषदों द्वारा राज्य में संचालित सेवापूर्व व सेवारत शिक्षक–प्रशिक्षण के विभिन्न पाठ्यक्रमों का निर्माण तथा डायट्स/प्राथमिक शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय के माध्यम से शिक्षकों, प्राचार्यों एवं व्याख्याताओं के प्रशिक्षण भी आयोजित किए जाते हैं।

परिषद् के प्रमुख उद्देश्य एवं कार्य–

- विभिन्न प्रकार के शैक्षणिक अनुसंधान आयोजित करके शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाना।
- शिक्षक शिक्षा में सुधार करना।
- शैक्षणिक संस्थानों की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए शिक्षा पद्धति को अपग्रेड करना।
- शैक्षणिक नवाचारों के लिए प्रचार करना।

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् की मुख्य भूमिका तथा कार्य गुणवत्ता के सन्दर्भ में निम्न है

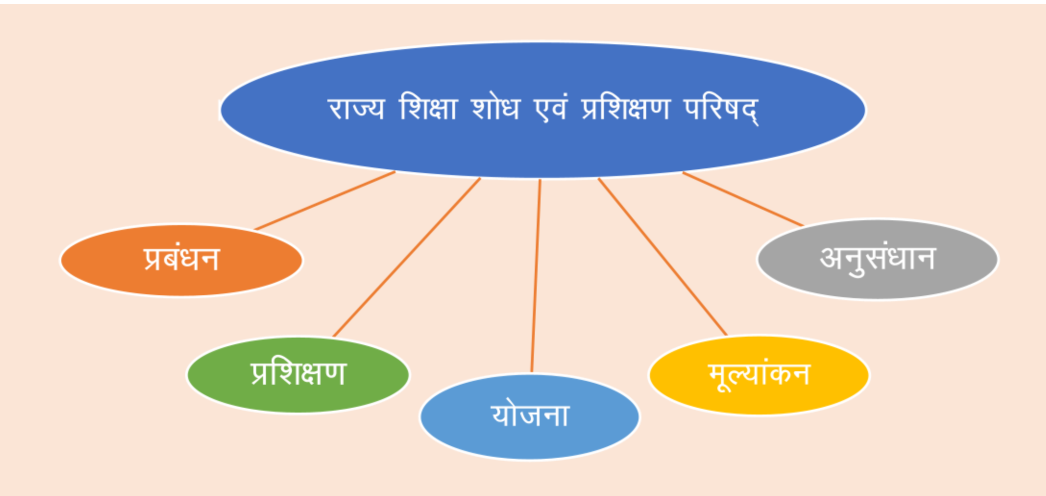

परिषद् के मुख्य कार्य निम्न हैं :

- स्कूल शिक्षा, सतत शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा और विशेष शिक्षा में सुधार करना।
- पूर्व–प्राथमिक शिक्षा से लेकर माध्यमिक शिक्षा में निरीक्षकों को प्रशिक्षण देना।
- पूर्व प्राथमिक शिक्षा से लेकर माध्यमिक शिक्षा में शिक्षकों को सेवा प्रशिक्षण प्रदान करना (पूर्व सेवा तथा सेवा कालीन प्रशिक्षण)
- शिक्षक–प्रशिक्षण संस्थानों को विस्तार सेवा प्रदान करना तथा उनमें तालमेल बनाए रखना।
- शैक्षणिक संस्थानों के लिए शिक्षण–सामग्री तैयार करना।
- शिक्षकों को विषय–वस्तु तथा शिक्षण–विधि में अनुसंधान करने हेतु प्रोत्साहित करना।

बिहार विद्यालय परीक्षा समिति (BSEB) बिहार, पटना

बिहार विद्यालय परीक्षा समिति एक ऐसी राज्य स्तरीय संस्था है जो राज्य के विद्यालयों को मान्यता प्रदान करती है तथा माध्मिक स्तर की परीक्षाओं का आयोजन करती है। परीक्षाओं के आधार पर आए नतीजों को वह प्रमाणित करती है। आपमें से कई प्रशिक्षु ने इस बोर्ड से ही अपनी दसवीं की परीक्षा पास की होगी। इसके साथ–ही, आप अभी जिस डी.एल.एड. कार्यक्रम को कर रहे हैं, उसकी परीक्षाओं को भी इस बोर्ड के माध्यम से ही कराया जा रहा है। साथ–ही यह बोर्ड ही आपको प्रमाणपत्र जारी करेगी। यह संस्था पटना में है और वहीं से पूरे बिहार में परीक्षा तंत्र को प्रबंधित करती है।

केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (CBSE), नई दिल्ली

यह एक राष्ट्रीय स्तर की संस्था है जिसका मुख्यालय दिल्ली में है। इस बोर्ड से मान्यता प्राप्त विद्यालय पूरे देश में फैले हुए हैं। यह उनकी दसवीं और बारहवीं की परीक्षा को आयोजित करती है तथा प्रमाण पत्र देती है। आप अपने आस–पास कुछ ऐसे विद्यालयों को देख सकते हैं जो इस बोर्ड से मान्यता प्राप्त होंगे। अधिकतर निजी विद्यालय इसी बोर्ड के अंतर्गत हैं। केन्द्र सरकार के द्वारा चलाए जानेवाले केन्द्रीय विद्यालय, नवोदय विद्यालय, सैनिक स्कूल आदि में भी इसी बोर्ड से परीक्षा ली जाती है।

बिहार राज्य मदरसा शिक्षा बोर्ड (BSMEB)

बिहार राज्य में मदरसा शिक्षा के विकास और बेहतर देख–रेख के लिए बिहार सरकार द्वारा निर्मित एक स्वायत बोर्ड का गठन 17 जनवरी 1981 को किया गया। इसके अन्तर्गत उर्दू अरबी, फारसी और इस्लामी अध्ययन की व्यवस्था की गयी। इसके अन्तर्गत एक प्रबंध समिति का गठन किया जाता है जिसका कार्य बोर्ड को सूचारू रूप से चलाने में किया जाता है। इसका मुख्यालय पटना है और इसका क्षेत्राधिकार पूरे राज्य में है। अरबी, फारसी, उर्दू के विकास के साथ–साथ राज्य स्तर पर विभिन्न स्तरों की परीक्षाएॅ भी आयोजित करती हैं जो निम्नलिखित है – तहतानियॉ, वस्तानियाँ, फोकानियाँ और मौलवी इत्यादि।

बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड–

बिहार मुक्त विद्यालयी शिक्षण एवं परीक्षा बोर्ड (Bihar Board of Open Schooling and Examination - BBOSE)

यह एक स्वायत संगठन के रूप में शिक्षा विभाग बिहार सरकार के द्वारा फरवरी 2011 ई0 में स्थापित किया गया है। इसे मानव संसाधन विकास मंत्रालय के तहत राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान की तर्ज पर स्थापित किया गया है। यह अन्य माध्यमिक बोर्ड, ICSE, CBSE की तरह ही X व XII की परीक्षा पाठ्यचर्या व मान्यताएँ संस्थानों को प्रदान करता है। इसके प्रमाण–पत्र अन्य बोर्ड के समकक्ष व तुलनीय है।

BBOSE, बिहार के सीमांत, आर्थिक रूप से कमजोर, शैक्षणिक रूप से पिछड़े बालक/बालिकाओं जो X व XII की परीक्षा से वंचित हो गये उन्हें सुअवसर प्रदान करता है। उन्हें हाशिए से मुख्यालय विश्व–विद्यालयी शिक्षा हेतु मार्ग उपलब्ध करता है। BBOSE गुणवत्तापूर्ण व मूल्यपरक कुशल मानव संसाधन तैयार करने में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है।

NIOS-राष्ट्रीय शैक्षणिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (NUEPA)

राष्ट्रीय शैक्षणिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (National University of Educational Planning and Administration) शैक्षणिक योजना और प्रशासन के क्षेत्र में मानव संसाधन एवं विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा स्थापित एक केंद्रीय संस्थान है जो भारत ही नहीं बल्कि दक्षिणी एशिया का प्रमुख संगठन है, जो शैक्षणिक योजना एवं प्रबंधन के क्षेत्र में क्षमता विकास और शोध कार्य में संलग्न है। शैक्षणिक योजना एवं प्रशासन के क्षेत्र में इसके द्वारा किए

जा रहे कार्यों को देखते हुए भारत सरकार ने अगस्त 2006 में इसका उन्नयन करके मानद् विश्वविद्यालय का दर्जा प्रदान किया ताकि यह स्वयं उपाधि प्रदान कर सके।

अन्य केन्द्रीय विश्वविद्यालयों के समान NUEPA भारत सरकार द्वारा पूर्णतः वित्तपोषित स्वायत्त संस्थान है। आरंभ में NUEPA की स्थापना 1962 में एशिया तथा प्रशांत क्षेत्र के शैक्षणिक योजनाकारों, प्रशिक्षकों एवं पर्यवेक्षकों के प्रशिक्षण हेतु एशिया क्षेत्र के UNESCO केन्द्र के रूप में की गई थी जिसे 1965 में एशियाई शैक्षणिक योजना एवं प्रशासन संस्थान बना दिया गया। इसके चार साल बाद भारत सरकार ने इसका अधिग्रहण कर लिया और इसका नाम राष्ट्रीय शैक्षणिक योजनाकार एवं प्रशासक कॉलेज रख दिया गया। राष्ट्रीय शैक्षणिक योजनाकार एवं प्रशासक कॉलेज की बढ़ती भूमिकाओं और कार्यकलापों विशेषकर क्षमता विकास, शोध और सरकार को दी जा रही व्यावसायिक समर्थनकारी सेवाओं को ध्यान में रखते हुए 1979 में पुनः इसका नाम बदलकर राष्ट्रीय शैक्षणिक योजना एवं प्रशासन संस्थान (नीपा) कर दिया गया।

संस्था के प्रमुख कार्य–

NUEPA निम्नलिखित प्रमुख प्रकार के कार्य करती हैः–

- प्रशिक्षण
- अनुसंधान
- नवाचार
- सुझाव/परामर्श सेवा
- प्रकाशन
- सहयोग

प्रशिक्षण

शैक्षणिक नियोजन एवं प्रबंधन/प्रशासन से संबंधित सेमिनार कार्यशाला तथा प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करना एशिया क्षेत्र के भारतीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तियों हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करना।

अनुसंधान

- शैक्षणिक नियोजन एवं प्रशासन में अनुसंधान करना।
- संस्थान के अनुसंधान परिणामों को प्रशिक्षण कार्यक्रमों के साथ जोड़ना (परिणामों का अनुप्रयोग करना)।

- नीति बनाने व नीति मूल्यांकन हेतु सर्वेक्षण, विश्लेषण अध्ययन व अनुसंधान परियोजनाएँ करवाना।

नवाचार

- शैक्षणिक नियोजन एवं प्रशासन के संदर्भ में नवीन प्रयोग करना व नवाचारी विधियों का प्रयोग करना जैसे 'School Complex', एवं स्कूल लीडरशिप इत्यादि।
- शैक्षणिक नियोजकों एवं प्रशासकों को नवाचारी मुद्दों एवं विधियों से अभिविन्यासित करना।
- विभिन्न राज्यों में शैक्षणिक भ्रमण आयोजित करना, जिससे उनमें अपनाई जाने वाले नवाचारी क्रियाकलापों से नियोजकों, प्रशासकों, विद्यालय मुख्याध्यापकों इत्यादि को अवगत करवाया जा सके।

परामर्श सेवा

- राज्यों व केन्द्र शासित प्रदेशों को विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर के नियोजन एवं प्रशासन संबंधी परामर्श सेवा प्रदान करना।
- केन्द्र सरकार को समय–समय पर विभिन्न मुद्दों जैसे नियोजन एवं प्रशासन का विकेन्द्रीकरण, प्रारंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण, वयस्क शिक्षा, शैक्षणिक कार्यक्रमों की जाँच एवं मूल्यांकन इत्यादि पर सलाह एवं मार्गदर्शन करना।

प्रकाशन

- शैक्षणिक नियोजन एवं प्रशासन संबंधी विभिन्न प्रकार के शैक्षणिक एवं अनुसंधानपरक प्रकाशन करना।
- विद्यालयी शिक्षा व उच्च शिक्षा से संबंधित विभिन्न जर्नल, शोध–पत्र, अध्ययन प्रतिवेदन, संदर्भ पत्र इत्यादि प्रकाशित करना।

सहयोग

- विभिन्न राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों जैसे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, भारतीय वैज्ञानिक अनुसंधान परिषद, UNESCO इत्यादि संगठनों के विषय–विशेषज्ञों एवं संसाधन व्यक्तियों का प्रशिक्षण एवं अनुसंधान में पूर्ण सहायता करना।

- शिक्षा में गुणात्मक एवं मात्रात्मक विकास हेतु NUEPA के शिक्षकों एवं अन्य संगठनों के शिक्षकों/सदस्यों के बीच अन्तर्क्रिया को बढ़ावा देना।

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (NCTE)

देश में अध्यापकों का प्रशिक्षण समुचित ढंग से हो सके इसकी जिम्मेदारी राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (National Council for Teacher Education) के ऊपर है। इस संबंध में सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक रूपरेखा तैयार करने की जिम्मेदारी भी इसी संस्थान का उत्तरदायित्व है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में यह निर्देशित है कि राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् शिक्षक–शिक्षा को प्रत्यापित करने, पाठ्यचर्या एवं पद्धतियों के बारे में दिशा–निर्देश प्रदान करने के लिए जरूरी संसाधन एवं क्षमता उपलब्ध करवाने का कार्य करेगी। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् शिक्षक–शिक्षा प्रणाली के मार्गदर्शन को सक्षम बनाने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति के कार्यान्वयन के लिए सन् 1986 में तैयार की गई कार्य–योजना (Plan of Action) में इसे संवैधानिक दर्जा प्रदान करने की परिकल्पना की गई। इस अनुपालन में संवैधानिक दर्जा प्रदान करने के लिए सन् 1993 में एक अधिनियम बनाया गया। यह अधिनियम राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् अधिनियम–1993 के नाम से पुकारा जाता है। इस परिषद् का मुख्यालय नई दिल्ली में स्थापित किया गया है। इस अधिनियम ने परिषद को यह भी अधिकार प्रदान किया कि यह अपना क्षेत्रीय कार्यालय स्थापित कर सकती है। फिलहाल परिषद के 4 क्षेत्रीय कार्यालय हैं।

परिषद् के कार्यः–

अधिनियम द्वारा परिषद् के निम्नलिखित प्रमुख कार्य निर्धारित किए गए हैं :–

- देश में अध्यापक–शिक्षा का विकास, नियंत्रण एवं समन्वय करना।
- स्वीकृत संस्थाओं की जवाबदेही के लिए मानदण्ड तथा मूल्यांकन पद्धति का निर्धारण करना।
- अध्यापक–शिक्षा के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित सर्वेक्षण तथा अध्ययन करना। शिक्षकों की माँग एवं आपूर्ति के बीच के अंतर को कम करना।
- शिक्षक की नियुक्ति, ट्यूशन, फीस इत्यादि के सम्बन्ध में मार्ग–निर्देश प्रदान करना।

- अध्यापक–शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न उपयुक्त कार्यक्रमों की केन्द्र एवं राज्य सरकारों, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं स्वीकृत संस्थाओं को संस्तुति करना।
- अध्यापक–शिक्षा के बाजारीकरण/व्यावसायीकरण (Commercialisation) को रोकने के लिए जरूरी कदम उठाना।
- शिक्षक विकास कार्यक्रमों के लिए नवीन संस्थाओं की स्थापना करना।
- अध्यापक शिक्षा के विभिन्न पाठ्यक्रमों के लिए प्रवेश नियमों, अभ्यार्थियों की चयन–प्रक्रिया, पाठ्यक्रम की अवधि का निर्धारण, पाठ्यक्रम की विषय–वस्तु इत्यादि का निर्धारण करना।
- अध्यापक–शिक्षा संस्थाओं की स्वीकृति एवं संबंधीकरण से संबंधित नियमों का निर्धारण करना।
- अध्यापक शिक्षा की प्राथमिकताओं, नीतियों, योजनाओं एवं कार्यक्रमों से संबंधित मामलों में केन्द्र सरकार, राज्य सरकार, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और अन्य एजेंसियों को सलाह देना।

वैश्विक स्तर पर इस बात को महसूस किया गया कि 'सबके लिए शिक्षा' तथा प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वभौमिक के उद्देश्यों को निश्चित समयावधि में कोई भी राज्य अकेले पूरा नहीं कर सकता। अतः यह महसूस किया गया कि स्वयंसेवी संस्थाओं, गैर–सरकारी संगठनों तथा समुदायों का सहयोग आवश्यक है।

वर्तमान में भारत में अनेक स्वैच्छिक संस्थाएँ विभिन्न शैक्षणिक कार्यों में सरकार का सहयोग कर रहे है। आगे हम कुछ संगठनों के बारे में संक्षिप्त अध्ययन करेंगे।

यूनिसेफ

संयुक्त राष्ट्र बाल कोष (United Nations International Children's Emergency Fund) की स्थापना का आंरभिक उद्देश्य द्वितीय विश्व युद्ध में नष्ट हुए राष्ट्रों के बच्चों को खाना और स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराना था। इसकी स्थापना संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने 11 दिसंबर, 1946 में की थी। सन् 1953 में यूनीसेफ, संयुक्त राष्ट्र का स्थाई सदस्य बन गया। उस समय इसका नाम 'यूनाइटेड नेशंस इंटरनेशनल चिल्ड्रेस फंड' की जगह 'यूनाइटेड नेशन्स चिन्ड्रेस फंड' कर दिया गया। इसका मुख्यालय न्यूयॉर्क में है। यूनीसेफ को सन् 1965 में उसके बेहतर कार्य के लिए शांति के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया

था। सन् 1989 में संगठन को इंदिरा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय शांति पुरस्कार भी प्रदान किया गया था।

वर्तमान में इसके 120 से अधिक शहरों में कार्यालय हैं और 190 से अधिक स्थानों पर इसके कर्मचारी कार्यरत हैं। वर्तमान में यूनीसेफ फंड एकत्रित करने के लिए विश्व स्तरीय एथलीट और टीमों की सहायता लेता है। यूनीसेफ का आपूर्ति प्रभाग कार्यालय कोपनहेगन, (डेनमार्क) में है। यह कुछ महत्वपूर्ण सामान जैसे जीवन रक्षक टीके, एचआईवी पीड़ित बच्चों व उनकी माताओं के लिए दवा, कुपोषण के उपचार के लिए दवाइयाँ, आकस्मिक आश्रय इत्यादि के वितरण को प्राथमिकता देता है। 36 सदस्यों का कार्यकारी दल यूनीसेफ के कार्यों की देखरेख करता है। यह नीतियाँ बनाता है और साथ–ही यह वित्तीय और प्रशासनिक योजनाओं से जुड़े कार्यक्रमों को स्वीकृति प्रदान करता है। वर्तमान में यूनीसेफ मुख्यतः पांच प्राथमिकताओं पर केन्द्रित है। बच्चों का विकास, बुनियादी शिक्षा, लिंग के आधार पर समानता (इसमें लड़कियों की शिक्षा शामिल है), बच्चों का हिंसा से बचाव, शोषण एवं बाल–श्रम के विरोध में, बच्चों के अधिकारों के वैधानिक संघर्ष के लिए काम करता है।

बिहार प्रांत में भी यूनीसेफ की मदद से विभिन्न सरकारी एवं गैर–सरकारी योजनाएँ शिक्षा, स्वास्थ्य एवं पोषण के क्षेत्र में ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्रों में संचालित हो रही है।

यूनेस्को

संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन (United Nations Educational, Scientific and Cultural Organisaton) संयुक्त राष्ट्र का एक घटक निकाय है। इसका कार्य शिक्षा, प्रकृति तथा समाज विज्ञान, संस्कृति तथा संचार के माध्यम से अंतराष्ट्रीय शांति को बढ़ावा देना है। संयुक्त राष्ट्र की इस विशेष संस्था का गठन 16 नवंबर, 1945 को हुआ था। इसका उद्देश्य शिक्षा एवं संस्कृति के अंतराष्ट्रीय सहयोग से शांति एवं सुरक्षा की स्थापना करना है ताकि संयुक्त राष्ट्र के चार्टर मौलिक स्वतंत्रता हेतु वैश्विक सहमति बन पाए। इसका मुख्यालय पैरिस (फ्रांस) में स्थित है। यूनेस्को मुख्यतः शिक्षा, प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक एवं मानव विज्ञान, संस्कृति एवं सूचना व संचार के जरिये अपनी गतिविधियां संचालित करता है। वह साक्षरता बढ़ानेवाले कार्यक्रमों को प्रायोजित करता है और वैश्विक धरोहर की इमारतों और उद्यानों के संरक्षण में भी सहयोग प्रदान करता है। भारत में विभिन्न संगठनों के साथ यूनेस्को के कार्यात्मक संबंध

हैं। सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्य तथा गरीबी उन्मूलन हेतु बदलते समय एवम् पर्यावरण में यूनेस्को उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर नीति निर्माण का काम करती है। यह संगठन शिक्षा तथा रोजगार की बदलती आवश्यकताओं के अनुसार उच्च शिक्षा में नवाचार तथा वंचित और कमजोर वर्गों के विद्यार्थियों की उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भागीदारी को बढ़ावा देने का काम भी करता है। यूनेस्को भविष्य हेतु ऐसे शिक्षक तैयार करने पर जोर देता है जो बेहतर नागरिक तैयार करेंगे, जो बच्चों के प्रति संवेदनशील होंगे तथा उनमें समझ और निर्णयन की क्षमता विकसित कर सकेंगे।

शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में यूनेस्को निम्न योगदान कर रहा है –

- शिक्षकों को वैश्विक स्तर का नेतृत्व प्रदान करना।
- उनको व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करना।
- राष्ट्रीय विकास में शिक्षक की भूमिका को रेखांकित करना।
- खुली व दूरस्थ शिक्षा, ई–लर्निंग, शिक्षक शिक्षा में सूचना तकनीक का प्रयोग इत्यादि से सम्बन्धित विभिन्न नीतियों का निर्माण एवं प्रसार।
- विभिन्न देशों में विकसित एवं नवाचारी प्रक्रियाओं का आदान–प्रदान करना, उनके प्रबंधन, प्रशासन और प्रमुख नीतिगत मुद्दों पर काम करना।
- यूनेस्को/ आईएलओ को शिक्षकों की स्थिति से संबंधित सिफारिश करना तथा उसी के लिए रूपरेखा प्रदान करना

- विश्व बैंक (World Bank)

शिक्षक–प्रशिक्षण केन्द्र

शिक्षकों को विद्यालय के लिए तैयार करने में शिक्षक–प्रशिक्षण केन्द्रों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। साथ–ही कई ऐसे केन्द्र भी होते हैं जहां पर शिक्षकों को अपने सेवाकाल के दौरान सतत प्रशिक्षण का अवसर मिलता है। उन्हीं में से कुछ संस्थानों की चर्चा यहां की जा रही है जो आपके संदर्भ में विशेष महत्व के हैं।

जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (DIET) एवं प्राथमिक शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय (PTEC)

जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान

देश में शिक्षक शिक्षा एवं प्रशिक्षण व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन लाने हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 के पश्चात् निर्मित कार्ययोजना (1992), में देश के प्रत्येक जिले में जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (District Institute of Education and Training) खोले जाने की परिकल्पना की गई। इसमें शिक्षक शिक्षा संस्थानों की अकादमिक, प्रशासनिक तथा वित्तीय संदर्भ में कार्यात्मक स्वायत्तता की भी परिकल्पना की गई थी। यह अपेक्षा की गई थी कि ये संस्थान देशभर में विभिन्न जिलों में कार्यरत शिक्षकों को बेहतर गुणात्मक अकादमिक सहयोग प्रदान करेंगे और पूर्व निर्धारित उद्देश्यों एवं नियमों के प्रति उत्तरदायी होंगे। सन् 1987 में यह योजना पूर्णतः 'केन्द्रीय स्तर की योजना (Central Sector Scheme) के रूप में अभिकल्पित की गई थी। जिसके तहत सन् 1989 तक देशभर में 216 जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान खोले गए।

प्राथमिक शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय (PTEC)

स्वतंत्रता के पूर्व भी प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षण हेतु शिक्षकों को पृथक प्रशिक्षण दिया जाता रहा है। उच्च प्राथमिक (मिडिल) कक्षा उत्तीर्ण व्यक्तियों को इन पाठ्यक्रमों में प्रवेश मिलता था। इन संस्थाओं में प्रशिक्षण की अवधि दो वर्ष थी। स्वतंत्रता प्राप्ति (सन् 1947) तक भारत में 51 पी.टी.ई.सी. और 528 नार्मल स्कूल थे। इनमें 339 नार्मल स्कूल पुरूषों के लिए और 189 नार्मल स्कूल महिलाओं के लिए थे।

राज्य में अध्यापक शिक्षा को बल प्रदान करने के उद्देश्य से शोध एवं प्रशिक्षण निदेशालय को सुदृढ़ किया गया है। इसके अन्तर्गत राज्य के प्रत्येक जिला में एक जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, कम–से–कम प्रत्येक तीन जिला पर एक अध्यापक शिक्षा महाविद्यालय तथा राज्य के अनुसूचित जाति तथा अल्पसंख्यक बाहुल्य प्रत्येक जिला में एक प्रखण्ड अध्यापक शिक्षा संस्थान स्थापित करने का प्रावधान किया गया है।

संस्थान का मिशन एवं भूमिका

डायट का प्रमुख ध्येय, निम्न उद्देश्यों के सन्दर्भ में आरंभिक शिक्षा व वयस्क शिक्षा के क्षेत्र में जमीनी स्तर पर विभिन्न कार्यक्रमों एवं प्रयासों की सफलता हेतु अकादमिक एवं संसाधनों के स्तर पर सहायता प्रदान करना है।

- प्रारंभिक शिक्षा का विश्वव्यापीकरण
- वयस्क शिक्षा – राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के उद्देश्यों के संदर्भ में 15–30 वर्ष आयु वर्ग में कार्यात्मक साक्षरता।

उपरोक्त मिशन वाक्य सामान्य प्रकृति है जिसमें विभिन्न राज्यों एवं जिलों की आवश्यकता विशेष को ध्यान में रखते हुए संदर्भगत परिवर्तन किया जा सकता है।

जि. शि. प्र. संस्थानों से अपेक्षित है कि वे राज्य के अन्य संस्थानों जैसे ब्लॉक संसाधन केन्द्रों (BRCs), संकुल संसाधन केन्द्रों (CRCs) व विद्यालयों के साथ संगति बिठाते हुए व्यापक स्तर पर शिक्षकों के विकास कार्य, पाठ्यचर्या एवं शिक्षण–अधिगम सामग्री विकसित करे। जहाँ तक पाठ्यचर्या को संचालित करने का प्रश्न है तो यह अपेक्षित है कि ये संस्थान ऐसे शिक्षण कार्यक्रम बनाएंगे जो प्रतिभागियों की आवश्यकताओं के अनुरूप एवं बाल–केन्द्रित उपागम पर आधारित होंगे। प्रतिभागियों में परीक्षण करने, खोजने, सीखने, अभ्यास, सुधार एवं नवाचार करने तथा, अपने स्थानीय वातावरण का शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में उपयोग करने की सक्षमता विकसित की जाएगी।

इन संस्थानों के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं–

- स्थानीय स्तर पर प्राथमिक शिक्षा की जरूरतों एवं समस्याओं का सर्वेक्षण करना।
- प्राथमिक शिक्षकों हेतु सेवापूर्ण तथा सेवाकालीन शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों का संचालन करना। इसके अन्तर्गत विद्यालयी शिक्षक, मुख्याध्यापक, ब्लॉक एवं संकुल स्तर के शिक्षा अधिकारियों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों को शामिल किया जाता है।
- अनौपचारिक शिक्षा एवं वयस्क शिक्षा से जुड़े व्यक्तियों हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रमों का संचालन करना।
- ग्राम शिक्षा समिति के सदस्यों तथा उन इच्छुक नौजवानों/स्वयं सेवकों को प्रशिक्षण देना जो शिक्षा में सेवा देना चाहते है।
- शिक्षकों की उनके 'विषयों' एवं शिक्षण पद्धतियों में सुधार लाने हेतु प्रयास करना।
- कार्यात्मक अनुसंधान संचालित करने तथा शिक्षकों को कार्यात्मक अनुसंधान करने हेतु तैयार करने संबंधी प्रशिक्षण देने का कार्य भी जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण सस्थानों का है।
- विद्यालयों में शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाना।

अधिकतर राज्यों में ये संस्थान पहले से उपस्थित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों (Teacher Training Institutions) को क्रमोन्नत करके खोले गये हैं। इन संस्थानों से संबंधित निम्न मुद्दे विचारणीय है :–

- देशभर में डायट का असमान विकास (यह असमान विकास अन्तर्राजीय (राज्यों के स्तर पर) भी है तथा अन्तःराजीय (एक ही राज्य में विभिन्न जिलों के संदर्भ में) भी है।)
- अभी भी कुछ राज्यों में डायट, ब्लॉक एवं संकुल संसाधन केंद्रों को सांविधिक दर्जा नहीं दिया गया है। इसके चलते यह शिक्षकों पर नवाचारी विद्यार्थी मूल्यांकन एवं अधिगम परिणामों के संदर्भ में जवाबदेही निर्धारित करने में प्रभावी नहीं रह पाते।
- अनेक राज्यों में प्रशिक्षित शिक्षक–प्रशिक्षकों की कमी के चलते इन संस्थानों में 'शिक्षा सेवा अधिकारियों' को ही भर्ती कर लिया गया है।
- अधिकतर संस्थानों में स्टाफ की कमी तथा अन्य प्रशासनिक बाधाओं (जैसे राज्यों द्वारा इन संस्थानों को प्राथमिकता न देना, भर्ती प्रक्रिया की कठोरता, संकुल/ब्लॉक एवं राज्य स्तर के अन्य संस्थानों के साथ समुचित समन्वयन न होना इत्यादि) के चलते ये संस्थान अधिक कुशलतापूर्वक कार्य नहीं कर पाते हैं।
- केवल कुछ ही राज्यों में अनुसंधान एवं प्रशिक्षण हेतु भिन्न संवर्ग (कैडर) बनाए गए हैं। अतः स्कूली शिक्षा अनुसंधानों के संदर्भ में इन संस्थानों का योगदान बहुत ही कम है।

BIET

विभिन्न मूल्यांकन अध्ययनों से इन संस्थानों के बारे में निम्न बात उभर कर आयी है।

- जिन उद्देश्यों को लेकर ये संस्थान खोले गए थे, वे पूरे नहीं हुए है।
- अनेक राज्य इसे 'केन्द्रीय सरकार की योजना' मानते हैं। अतः उन्हे इसके स्वामित्व का अहसास ही नहीं है और वे इस पर ध्यान भी नहीं देते।
- ये संस्थान शैक्षणिक उत्कृष्टता के केन्द्र के रूप में स्थापित नहीं हो पाए है।
- ये संस्थान अन्य शिक्षक शिक्षा संगठनों एवं संस्थानों के साथ भी बेहतर संबंध स्थापित नहीं कर पाए है।

जिला संसाधन केन्द्र (DRC), प्रखण्ड संसाधन केन्द्र (BRC) एवं संकुल संसाधन केन्द्र (CRC)

जिला संसाधन केन्द्र (DRC) एवं प्रखण्ड संसाधन केंद्र (Block Resource Centre) को प्राथमिक शिक्षकों व अन्य प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण एवं अन्य वृतिक विकास के प्रबन्धन हेतु स्थापित किया गया था। जिला संसाधन केन्द्र (DRC) के माध्यम से पूरे जिले के विद्यालयों को कई प्रकार के संसाधनों को उपलब्ध कराया जाता है। प्रत्येक शिक्षायी ब्लॉक स्तर पर शिक्षा संसाधकों का समूह स्थापित करने का कार्य किया। चूंकि ये सक्रिय प्रतिभागी होते है, अतः डायट के निर्देशों के अनुसार मुख्य अध्यापकों, शिक्षकों, संकुल समन्वयकों, विद्यालय प्रबंधन

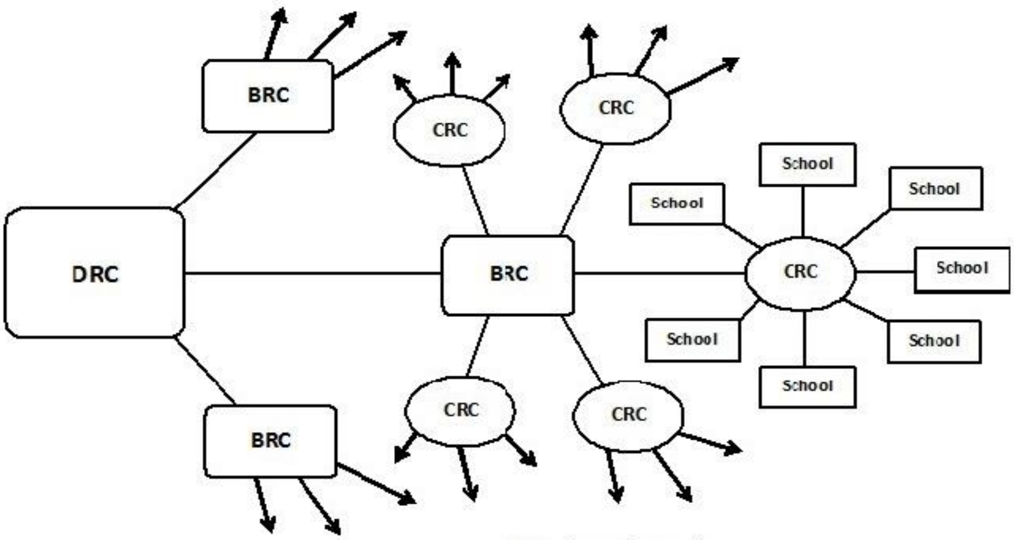

DRC: जिला संसाधन केन्द्र
BRC: प्रखण्ड संसाधन केन्द्र
CRC: संकुल संसाधन केन्द्र

समिति के सदस्यों तथा गैर–सरकारी संगठनों के साथ विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन भी करवाते हैं। कई ब्लॉक संसाधन केन्द्र, डायट तथा शिक्षकों के बीच समन्वय एवं सेतु का काम भी करते हैं।

संकुल संसाधन केन्द्रों (Cluster Resource Centre) को संकुल विशेष के अन्तर्गत आने वाले विद्यालयों के शिक्षकों को प्रत्यक्ष अकादमिक संसाधन सहायता प्रदान करने के लिए स्थापित किया गया था। सामान्यतः प्रत्येक संकुल में 10–15 विद्यालय तथा 40–50 शिक्षक होते है। संकुल संसाधन केन्द्र इस बारे में भी सूचना उपलब्ध करवाते हैं कि किस हद तक विभागीय कार्यक्रमों को विद्यालयों में लागू किया गया है तथा इन कार्यक्रमों को लागू करने एवं विस्तारित करने में कौन–कौन सी बुनियादी एवं व्यावहारिक समस्याएँ आयीं।

लगभग सभी राज्यों में प्रखण्ड (ब्लॉक) संसाधन केन्द्रों का निर्धारण राजस्व ब्लॉक के आधार पर किया गया है न कि शिक्षायी ब्लॉक के आधार पर। अतः देश में अधिकतर ब्लॉक संसाधन केन्द्रों पर अधिक कार्यभार है। इन केन्द्रों पर विद्यालय संबंधी सूचना एकत्रण एवं अन्य प्रबंधन संबंधी अतिरिक्त कार्यभार भी डाल दिया गया। इसका विपरीत असर इन केन्द्रों द्वारा प्रदान किए जा रहे शिक्षक प्रशिक्षण हेतु सहायता एवं शैक्षणिक–अकादमिक संरचना की कार्यकुशलता पर पड़ रहा है।

वर्तमान में शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009 लागू होने से भी इन संस्थानों का महत्त्व बढ़ गया है क्योंकि शिक्षा का अधिकार 'गुणवत्ता शिक्षा' के प्रावधान को सुनिश्चित करता है जिसमें सभी बच्चों को अपनी–अपनी क्षमताओं के अनुसार उपलब्धि स्तर प्राप्त हो सके। मौजूदा असमान शिक्षा प्रणाली में यह आवश्यक है कि ब्लाक संसाधन केन्द्र तथा संकुल/क्लस्टर संसाधन केन्द्र विद्यालयों में गुणवत्ता सुधार की प्रक्रियाओं में अधिक सक्रिय एवं सकारात्मक भूमिका निभायें ताकि शिक्षा का मौलिक अधिकर सही मायने में व्यवहार्य हो सके।

शैक्षणिक योजनाएं

विद्यालयों में कई प्रकार की शैक्षणिक योजनाएं सदैव चलती रहती हैं जिसका विद्यालय पर गहरा प्रभाव पड़ता है और शिक्षकों की भागीदारी भी उनके संचालन में होती है। इस खण्ड में वैसे ही कुछ शैक्षणिक योजनाओं का परिचयात्मक विवरण आगे दिया जा रहा है।

सर्व शिक्षा अभियान (SSA)

सर्व शिक्षा अभियान भारत सरकार का एक ऐसा कार्यक्रम है। जो आरम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण (Universalisation of Elementary Education) पर समयबद्ध तरीके से बल देता है। यह प्रतिबद्धता संविधान के 86वें संशोधन से और अधिक बढ़ गई है। यह संशोधन 6–14 वर्ष तक के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार देता है।

सर्व शिक्षा अभियान राज्यों के सहयोग से चलने वाला शिक्षा में गुणवत्तापूर्ण सार्वजनीकरण का एक महत्वाकांक्षी कार्यक्रम है जिसके अन्तर्गत विद्यालय के शैक्षणिक वातवरण को सुखद एवं सुविधायुक्त बनाना भी है। बिहार भी एक ऐसा ही राज्य है जिसमें यह कार्यक्रम बहुत ही महत्वकांक्षी तरीके से चल रहा है। इसी योजना के तहत, विद्यालय की आधारभूत संरचना को मजबूत करने के साथ–साथ बिहार में शिक्षकों को नियोजन करने का अभियान भी चल रहा है।

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (Rashtriya Madhyamik Shiksha Abhiyan)

इस योजना को मार्च 2009 में लागू किया गया है जिसका मुख्य लक्ष्य है माध्यमिक स्तर की शिक्षा तक बच्चों की पहुंच को बढ़ाना तथा इसके गुणवत्ता में सुधार करना। इसके अंतर्गत यह प्रावधान किया जा रहा है कि हर बच्चे के उचित पहुँच के अंदर एक माध्यमिक स्तर का विद्यालय अवश्य हो। साथ–ही उस विद्यालय में शिक्षा संबंधी विभिन्न संसाधनों की उपलब्धता पर भी इस कार्यक्रम के माध्यम से काम किया जा रहा है ताकि विद्यालय में अपेक्षित कक्षाकक्षों की संख्या, प्रयोगशालाएं, पुस्तकालय, कला कक्षा, शौचालय, जल की व्यवस्था, छात्रावास इत्यादि का प्रबंध किया जा सके।

समग्र शिक्षा अभियान (Samagra Shiksha Abhiyan)

समग्र शिक्षा अभियान (SSA) विद्यार्थियों के लिए समावेशी शिक्षा और गुणवत्ता की शिक्षा व्यवस्था सुनिश्चित करने के लिए भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने 2018–19 के केन्द्रीय बजट में समग्र शिक्षा अभियान कार्यक्रम की शुरूआत की।

समग्र शिक्षा अभियान के अन्तर्गत प्री स्कूल से बारहवीं वर्ग के सभी विद्यालयी शिक्षा के अन्तर्गत शिक्षण, प्रशिक्षण पाठ्यक्रम, भवन, पोषण इत्यादि की गुणवत्ता व संचालन सुनिश्चित करना है। समग्र शिक्षा के अंतर्गत सर्व शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान तथा शिक्षक–शिक्षा को समाहित किया गया है।

इसके अन्तर्गत RTE Act 2009 के मुक्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करना, SCERT, DIET के शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाना, विद्यालय के छीजन (Drop-out) एवं लिग अंतराल को कम करना, सीखने व सिखाने के बेहतर अवसर उपलब्ध करना व उद्देश्यों को प्राप्त करना लक्ष्य रखा गया है।

बिहार शिक्षा परियोजना परिषद् (Bihar Education Project Council)

इस परियोजना की शुरूआत सन् 1991 में बिहार में प्रांरभिक शिक्षा में गुणात्मक एवं मात्रात्मक सुधार लाने हेतु की गई थी। बिहार शिक्षा परियोजना परिषद् (Bihar Education Project Council) राज्य में बालिकाओं, अल्पसंख्यक समुदायों, समाज के वंचित व दलित एवं पिछड़ें वर्गों की सार्वभौमिक शिक्षा पर जोर देती है।

बिहार शिक्षा परियोजना परिषद के उद्देश्य निम्न हैं –

- प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण को संयुक्त रूप से सार्वजनिक पहुँच, सार्वजनिक नामांकन, सार्वजनिक ठहराव एवं सार्वजनिक उपलब्धि हेतु कार्यक्रम के तौर पर कार्य करना।
- निरक्षरता में भारी कमी लाना।
- शिक्षा व्यवस्था में संशोधन लाना ताकि महिलाओं की समानता और उनके सशक्तिकरण के उद्देश्य को पूरा किया जा सके।
- शैक्षणिक प्रयासों में 'समता' एवं 'सामाजिक न्याय' पैदा करना।
- शिक्षा को लोगों के कार्य एवं रहन–सहन के वातावरण के साथ जोड़ना।
- विज्ञान एवं पर्यावरण संबंधी शैक्षणिक गतिविधियों पर विशेष ज़ोर देना।
- शिक्षा की भागीदारी में विद्यार्थी एवं बालिकाओं के बीच अंतराल को कम करना।

बिहार में यह शिक्षा परियोजना अपने निरंतर प्रयास से ग्रामीण और अर्द्ध–शहरी क्षेत्रों में शिक्षा के प्रचार–प्रसार के लिए विशेषतः बालिकाओं, विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों और समाज के वंचित एवं दलित समुदायों के लिए निम्न कार्यक्रम संचालित करती हैः–

- सर्व शिक्षा अभियान (अब समग्र शिक्षा अभियान)
- प्राथमिक स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम
- कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय
- जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम
- विद्यालय स्वच्छता और स्वास्थ्य शिक्षा
- हुनरः मुस्लिम बालिका सशक्तीकरण कार्यक्रम

समग्र शिक्षा अभियान के लागू हो जाने से अब बिहार शिक्षा परियोजना परिषद् प्राथमिक शिक्षा के साथ–साथ माध्यमिक शिक्षा के भी कार्यक्रमों को क्रियान्वित करती है।

समेकन

इस प्रकार हम पाते हैं कि विभिन्न संस्थाएं अपने–अपने कार्यों के माध्यम से शैक्षणिक प्रशासन में भूमिका निभाते हैं। जहां विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के द्वारा उच्च शिक्षा के विकास पर ध्यान दिया जाता है, वहीं राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् द्वारा विद्यालयी शिक्षा एवं अध्यापक शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता है। आपने राष्ट्रीय शैक्षणिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय के विषय में भी पढ़ा जो शैक्षणिक योजना एवं प्रबंधन के क्षेत्र में क्षमता–विकास और शोध कार्य में संलग्न है। देश में शिक्षकों का प्रशिक्षण समुचित ढंग से हो सके इसकी जिम्मेदारी राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् को दी गयी है। राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् भी राज्यों में विद्यालयी शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने में अहम भूमिका निभाते हैं। साथ–ही, जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (डायट) भी शैक्षणिक प्रशासन व प्रबंधन में कई रूपों मे जुड़े हुए हैं। शिक्षकों के प्रशिक्षण में ब्लॉक संसाधन केन्द्रों (BRCs), तथा संकुल संसाधन केन्द्रों (CRCs) की भूमिका को प्रोत्साहित किया जा रहा है।

मूल्यांकन के लिए प्रश्न

1. इस इकाई में चर्चित विभिन्न संस्थाओं के कार्यों का तुलनात्मक विश्लेषण करें।
2. विभिन्न संस्थाओं द्वारा किये जानेवाले कार्यों का आलोचनात्मक विश्लेषण करें।
3. राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT), नई दिल्ली उन कार्यों का उल्लेख करें जो विद्यालय से जुड़े हुए हैं।
4. राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (NCTE), नई दिल्ली के प्रमुख कार्य क्या हैं? यह शिक्षकों को किस प्रकार से प्रभावित करता है?
5. जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (DIET) एवं प्राथमिक शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय (PTEC) के माध्यम से किन–किन प्रशिक्षण कार्यक्रमों को चलाया जाता है।
6. संकुल संसाधन केन्द्र का अपने वृतिक विकास के संदर्भ में मूल्यांकन करें।

7. विद्यालय से संबंधित कुछ योजनाओं का नाम बताएं तथा उनके प्रमुख लक्ष्यों की चर्चा करें।
8. समग्र शिक्षा अभियान के मुख्य उद्देश्य क्या हैं?
9. SCERT के क्या कार्य हैं?
10. CBSE क्या है?
11. BSEB के क्या कार्य हैं?

संदर्भ सूचीः

- सी. बी. एस. ई. (2009). सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन शिक्षक निर्देशिका 2009. नई दिल्ली : केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड.
- Aggarwal, J.C. (2008). School Administration. Delhi: Arya Book Depot.
- NCERT, Education Statistics of India, New Delhi (issues of the last decade).
- Shrivastava, Chandan (2014). Teacher Education for Rural Teachers: Exploring the Perceptions and Experiences of the Panchayat Teachers of Bihar. London: International Journal of Rural Studies (IJRS).
- Singh, Amarjit (Ed.) (2001). Classroom management: A reflective perspective. New Delhi Knishka Publishing.

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् (एस.सी.ई.आर.टी.),
महेन्द्रू, पटना, बिहार – 800006